भारतीय अनुवाद परिषद् की प्रथम भेंट

अनुवाद कला : कुछ विचार

सम्पादक
आनन्दप्रकाश खेमाणी
तथा
वेद प्रकाश

१९६४
एस० चन्द एण्ड कम्पनी
दिल्ली — नई दिल्ली — जालन्धर
लखनऊ—बम्बई

एस० चन्द एण्ड कम्पनी
रामनगर नई दिल्ली
फव्वारा "दिल्ली
माई हीरां गेट जालन्धर
हज़रतगंज लखनऊ
लैमिंगटन रोड बम्बई

मूल्य : ५·०० रु०

उनके नाम

जो अनुवादक को

प्रवंचक मानते हैं ।

भूमिका

किसी भी साहित्य की समृद्धि में अनुवाद का स्थान निर्विवाद रूप से बड़े महत्त्व का रहा है। जब-जब हमारा सम्पर्क बाह्य सभ्यताओं, संस्कृतियों तथा विभिन्न भाषा-भाषियों से हुआ, हम उन्हें अनुवाद के माध्यम से ही जानते और समझते रहे हैं। वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में सारे संसार की प्रगति की जानकारी अत्यन्त आवश्यक हो गई है और यह जानकारी अनुवाद के ज़रिए ही शीघ्रता से प्राप्त हो सकती है।

आज अनुवाद-कार्य बहुत बड़ी मात्रा में हो रहा है और हम अनुवाद का संबल लेकर ही विज्ञान तथा टैक्नोलोजी की दौड़ में अपनी गति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इतना होते हुए भी अनुवाद के सैद्धान्तिक पक्ष का जैसा विवेचन अरब, स्पेन और इंग्लैण्ड में किया गया वैसा हमारे देश में नहीं हुआ। प्रस्तुत संकलन इस दिशा में एक अच्छा प्रयास है।

इस संकलन में अनुवाद के विभिन्न पक्षों पर सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टि से विचार प्रस्तुत करने वाले निबन्ध सम्मिलित किये गये हैं और यथा-सम्भव सभी उपलब्ध स्रोतों में निहित विचारधारा को ध्यान में रखते हुए उचित समीक्षा के साथ संतुलित हल खोजने की चेष्टा की गयी है। साहित्य के विभिन्न अंगों के अनुवादकी समस्याएँ, विधि के अनुवाद का प्रश्न, तकनीकी शब्दावली और तकनीकी अनुवाद की कठिनाइयाँ, समाचारपत्रों के क्षेत्र का अनुवाद-कार्य आदि अनेक पहलुओं पर प्रामाणिक रूप से विचार प्रस्तुत किये गये हैं और प्रस्तुत संकलन को सभी दृष्टियों से पूर्ण बनाने की चेष्टा की गयी है।

दिल्ली, पंजाब और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयों में अनुवाद के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों की शिक्षा दी जा रही है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का अभाव है जो अनुवाद के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराती हों अथवा जिनमें उसकी समस्याओं की चर्चा की गई हो। आशा है कि यह संकलन इस अभाव की पूर्ति करेगा तथा अनुवादकों और अनुवाद-साहित्य के अध्येताओं के लिए लाभ-दायक सिद्ध होगा।

—रमाप्रसन्न नायक

प्राक्कथन

भारत की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में अनुवाद का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। भारतीय संविधान मे राष्ट्रभाषा हिन्दी को एक विशिष्ट स्थिति प्राप्त है। हमारे सारे प्रयत्न हिन्दी को राजकाज की भाषा तथा उच्च शिक्षा का उपयुक्त माध्यम बना देने के हैं। यों साहित्यिक भाषा के रूप में, हिन्दी भाषा की क्षमता संभवत: संसार की किसी भाषा से पीछे नहीं है तथापि प्रशासनिक एवं प्राविधिक विषयों की शिक्षा की दृष्टि से हिन्दी को अभी तक पर्याप्त और उपयुक्त अवसर न मिलने के कारण उसमें अंग्रेजी आदि भाषाओं जैसी क्षमता एवं शक्ति अभी नहीं है। हिन्दी के क्षेत्र में कार्य करने वाली सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी संस्थायें तथा व्यक्ति इस दिशा में अहर्निश प्रयत्नशील हैं। हिन्दी में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं से धड़ाधड़ अनुवाद छप रहे हैं। प्रयत्न यह है कि हिन्दी के पाठक को, किसी भी विषय में अद्यतन सामग्री मूल के से रूप में उपलब्ध हो ताकि वह उस विषय में अब तक हुए विकास की जानकारी प्राप्त कर आगे बढ़ सके और कुछ मौलिक चिन्तन कर संसार को उस विषय में कुछ नया दे सके। इस दृष्टि से अनुवाद का बहुत महत्त्व है।

परन्तु अनुवाद करना एक बात है और अनुवाद की समस्याओं पर वैज्ञानिक रीति से विचार करना, अनुवाद के सिद्धान्तों को स्थिर करना, तथा अनुवाद के गुणों की छानबीन करना और बात है। योरोप में जब कभी किसी विषय में उन्नति हुई, वहाँ के विचारकों ने उस विषय के हर पहलू पर सर्वांगीण विचार किया और उन्होंने न केवल उस कार्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया, अपितु उस कार्य को करने के साधनों आदि के सम्बन्ध में भी अपने अनुभवों को लिपिबद्ध किया और इस प्रकार उस क्षेत्र में आने वाले सज्जनों को अपने अनुभवों से लाभ पहुँचाया। वहाँ अनुवाद के सम्बन्ध में भी यही दुहरी परम्परा रही है। वहाँ न केवल उत्कृष्ट अनुवाद हुए हैं, अपितु अनुवाद कला के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर भी विशद एवं वैज्ञानिक विवेचन हुआ है।

भारत में अनुवाद की पुरातन परम्परा होने के बावजूद, उसके सैद्धान्तिक पक्ष के विश्लेषण की ओर आज से पहले किसी का ध्यान नहीं गया। आज भारतीय अनुवादक के सामने जो कुछ थोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध है, वह फुटकर लेखों अथवा अनूदित ग्रंथों की संक्षिप्ततम भूमिकाओं में है। यह सामग्री इतनी कम है कि उससे अनुवादकों का मार्ग-निर्देशन नहीं हो सकता। निःसन्देह, अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन, इटालियन आदि विदेशी भाषाओं में इस विषय पर अनेक ग्रन्थ हैं, जिनसे भारतीय अनुवादक लाभान्वित हो सकता है। किन्तु प्रथम तो इन भाषाओं की प्रकृति हमारी भाषाओं से भिन्न है, दूसरे अनुवाद की ओर प्रवृत्त होने वाले सब लोग इन भाषाओं से अवगत भी नहीं हैं। इसलिये बहुत कम अनुवादक उनसे लाभ उठा सकते हैं। हमारा विचार है कि जब तक अनुवाद के विविध सैद्धान्तिक पक्षों का ऐतिहासिक तथा विश्लेषणात्मक विवेचन करने वाली पुस्तकों का अभाव रहेगा तब तक अनुवादक अनुवाद के प्रति अपने गुरु दायित्व का भली भान्ति निर्वाह नहीं कर सकेगा। वस्तुतः हमारे यहाँ बहुत पहले से ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी जिसमें भारतीय भाषाओं की, विशेष रूप से हिन्दी की, प्रवृत्तिगत विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए, अनुवाद के विविध पक्षों की विवेचना की गई हो। हमारा प्रस्तुत प्रयास इसी दिशा में एक कदम है। और हम आशा करते हैं कि यह ग्रन्थ अनुवादकों, अनुवाद कला के विद्यार्थियों एवं अनुवाद के शास्त्रीय पक्ष में रुचि रखने वाले सामान्य पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

यह योजना क्रियान्वित न हो पाती यदि हमें सहयोगी लेखकों, सर्वश्री रामरत्न भारद्वाज, श्यामसुन्दर जोशी तथा श्रीपाल जैन, विद्यासागर नन्दा व प्रकाशक महोदय का सहयोग प्राप्त न होता। अतः हम इनके प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं। हम डा० गोपाल शर्मा तथा श्री राजेन्द्र द्विवेदी के विशेष सहकार के लिये उनके आभारी हैं।

हम भारत सरकार में शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री रमाप्रसन्न नायक के विशेष रूप से आभारी हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर हमें उत्साहित किया है।

अन्त में, दिल्ली विश्वविद्यालय के अनुवाद विभाग की प्राध्यापिका डा० गार्गी गुप्त के प्रति हम किन शब्दों में आभार प्रदर्शन करें, हमें समझ में नहीं आता। वे पग-पग पर हमारी प्रेरणास्रोत, पथ-प्रदर्शिका एवं सहायिका रही हैं।

आनन्दप्रकाश खेमाणी
वेद प्रकाश

नई दिल्ली

विषय-सूची

सामान्य

१.	सृजनात्मक प्रतिभा और अनुवाद	डॉ० प्रभाकर माचवे	१
२.	अनुवाद : एक विचार	श्री जैनेन्द्रकुमार	१२
३.	अनुवाद की कठिनाइयाँ	डॉ० वी० एस० नरवणे	१९
४.	अनुवाद का भाषा-वैज्ञानिक पक्ष	श्री सत्यनारायण	२९
५.	अनुवाद : एक कला	श्री तीर्थ बसन्त	४८
६.	अनुवाद और शैली	श्री आनन्दप्रकाश खेमाणी	६१

इतिहास

७.	हिन्दी साहित्य में अनुवाद की परम्परा	श्री विश्वेश्वर चोपड़ा	७०
८.	हिन्दी में पाश्चात्य नाटकों के अनुवाद	डॉ० गार्गी गुप्त	९५
९.	श्रेण्य ग्रन्थों का अनुवाद	श्री राजेन्द्र द्विवेदी	१०५

विशिष्ट समस्याएँ

१०.	काव्यानुवाद : कठिनाइयाँ एवं सम्भावनाएँ	प्रो० नगीनचन्द सहगल	१३१
११.	विधिक अनुवाद	प्रो० बालकृष्ण	१३९
१२.	वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य का अनुवाद	श्री वेदप्रकाश	१४५
१३.	शैक्षणिक अनुवाद	श्री चन्द्र मौद्गल्य	१६२
१४.	सूचना साहित्य का अनुवाद	श्री अशोक जी	१६९
१५.	अखबारी अनुवाद	श्री उग्रसेन गोस्वामी	१७३
१६.	सरकारी अनुवाद	श्री विश्वदेव शर्मा	१७९

पारिभाषिक शब्दावली

१७.	पारिभाषिक शब्द और उनकी रचना तथा हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली	श्री गोपाल शर्मा	१९१
१८.	मशीनों से संबंधित पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी अनुवाद	श्री विद्यासागर नन्दा	२१०

सृजनात्मक प्रतिभा और अनुवाद

—डॉ० प्रभाकर माचवे

'सृजनात्मक प्रतिभा' की ऐसी परिभाषा जो सार्वकालिक और सार्वदेशिक हो या जो सर्वसम्मत हो, प्रायः असम्भव है। 'अपूर्व वातु निर्माणक्षमा' और 'नियतिकृतनियमरहिता' प्रतिभा को हमारे आचार्यो ने माना है। पश्चिम के चिन्तक और सौन्दर्यशास्त्री उसे 'परमात्मा के प्रश्वास' से लगाकर 'नब्बे प्रतिशत केवल स्वेद या परिश्रम' तक मानते हैं। जो प्रतिभा की उत्पत्ति को एक दैवी व्यापार मानते हैं उन्हें साहित्य-समीक्षा की अपेक्षा योग-साधना के क्षेत्र में अनुसन्धान करना चाहिये। पुरुषार्थ को जो दैवायत्त नहीं मानते उनके मत से भी प्रतिभा की सर्वसामान्य व्याख्या कठिन है। कुछ लोग प्रतिभा की महत्ता उपलब्धि से नापते है, कुछ काव्य-हेतु से। शब्द-सामर्थ्य या ध्वनि-शक्ति कहीं प्रतिभा की परिचायिका है तो कहीं अभूतपूर्व परिकल्पना, ऊहा या अन्तर्दृष्टि। यहाँ हम सृजनात्मक प्रतिभा की परिभाषा का प्रयत्न छोड़कर केवल यह देखेंगे कि प्रतिभाशाली महाकवियों, नाटककारों और कथा-उपन्यासकारों ने अनुवाद के प्रति अपनी प्रवृत्ति क्या रखी है, और उस प्रक्रिया के द्वारा उनकी प्रतिभा और अधिक चमकी है अथवा नहीं। हमारे मत से अनुवाद-कार्य एक प्रकार का बौद्धिक व्यायाम भी है और वह लेखकों के लिए आवश्यक है। यह व्यायाम प्रतिभाशाली लेखक भी करते हैं और अन्य प्रकार के साधारण लेखक भी। प्रतिभाशाली लेखक अधिक संवेदनशील, सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि वाले और उदात्त के उद्भावन में कुशल होने के कारण उनके रस-निर्माण में अनुवाद का भी पर्याप्त योग-दान रहा है। साधारण लेखकों के पास मूलतः कुछ न होने से अनुवाद भी उनके लिए निरा यांत्रिक व्यापार रह जाता है; और उससे न वे स्वयं लाभान्वित हैं और न पाठकों को कोई नई दृष्टि या सृष्टि दे पाते हैं। रूप की भाँति

प्रतिभा भी एक जन्मना अभिजात शक्ति है, व्युत्पन्नता के प्रसाधन से वह और सक्षम बनाई जा सकती है।

अनुवाद के भी कई प्रकार हैं : छायानुवाद, रूपान्तर, शब्दानुवाद, भाषान्तर, तर्जुमा, मूल की हू-ब-हू प्रतिकृति, मूल के कुछ अंशों के आधार पर नई रचना, मूल का सम्पूर्ण भावानुकरण, मूल की शैली का अनुकरण, मूल में कुछ जोड़कर नव्य-रूप निर्माण इत्यादि। उन सब प्रकार के अनुवाद के वर्गीकरण का भी उद्देश्य इस लेख के लेखक के सम्मुख नहीं है। नाट्याभिनय में जिस प्रकार मूल भूमिका से सम्पूर्ण तादृशीकरण या साद्धर्म्य चाहा जाता है; फिर भी मूल 'राम' या 'रावण' बहुत कुछ कल्पना से प्रसूत व्यक्तित्व हैं और नाटककार, नट तथा प्रेक्षक-विशेष या प्रेक्षक-सामान्य की तत्सम्बन्धी धारणाएँ अलग-अलग हो सकती हैं, और रस-निर्मिति में इन विभिन्न धारणाओं के बीच संघर्ष भी उत्पन्न हो सकता है। पर भावात्मक संतुलन पर नाटक की सफलता-असफलता निर्भर करती है— संभव है समीक्षक के मन और संस्कारों में 'राम' या 'रावण' की धारणा और ही हो। वही बात अनुवाद के सम्बन्ध में भी अधिकांश सच होती है। कई बार मूल भाषा का अज्ञान रस-हानि या रसाभास के लिए बहुत कारणीभूत होता है। मैंने एक बार अमरीकन विश्वविद्यालय में 'क्लासिक्स' विभाग में अॅरिस्टो-फेनीस के 'फ्रॉग्ज़' नाटक पर एक भाषण सुना। वक्ता मूल ग्रीक भाषा के पण्डित ही नहीं थे, ग्रीस में जाकर उन्होंने पुरातत्व की नई खोज भी की थी। उन्होंने सोदाहरण सिद्ध किया कि अंग्रेजी, फ्रेन्च और जर्मन अनुवादों में कैसी भूलें हैं; और नई पुरातत्व-विषयक सामग्री हमें 'फ्रॉग्ज़' की कैसी नयी व्याख्या के लिए प्रवृत्त करती है। भारत में विदेशी भाषाओं के बहुत से अनुवाद, बहुत थोड़े से अपवाद छोड़कर, अंग्रेजी की मारफ़त होते हैं। और अंग्रेजी में ही एक ही सार्त्र की कहानी के या गोएटे के 'फाउस्ट' के तीन-तीन अनुवाद, जो एक दूसरे से काफी भिन्न हैं, उपलब्ध हैं। रूसियों की आम शिकायत है कि अंग्रेजी भाषा में उनके ग्रन्थकारों के अनुवाद प्रामाणिक नहीं होते। हाल में ही एक हिन्दी के जापानी विद्यार्थी से मैंने सुना कि अंग्रेजी अनुवाद में मूल का बहुत सा रस नष्ट हो गया है। और हम हैं कि मूल स्रोत की ओर जाने के बजाय अनुवाद

के अनुवाद से, उच्छिष्ट के उच्छिष्ट से सन्तुष्ट हो जाते हैं। हमारे विद्वान् मूल को छोड़ शाखाओं पर ही छलाँगें मारते रहते है, और उसी पर दाँत किटकिटा कर लड़ते हैं। भारतीय भाषाओं के मामले में भी यही दृश्य दिखाई देता है : रवीन्द्रनाथ के ग्रन्थों के अनुवाद मूल बंगला से करने के बजाय अंग्रेज़ी की मारफत किये जाते हैं, या हिन्दी-उर्दू-पंजाबी जैसी सन्निकट भाषाओं के परस्पर अध्ययन या ज्ञान में भी अंग्रेज़ी के माध्यम को स्वीकारा और प्रतिष्ठित माना जाता है। जिन दक्षिण की भाषाओं को हिन्दी में पढ़ाने वाले या हिन्दी के माध्यम से पढ़ाने वाले सहज उपलब्ध हो सकते थे या हैं, उन्हें हिन्दी विद्यापीठों में और विश्वविद्यालयों में जहाँ हिन्दी-माध्यम पर आग्रह हो, अंग्रेज़ी की मारफ़त पढ़ाया जाता है। इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति के कारण भारतीय विद्यार्थी या अध्येता और लेखक का भी मस्तिष्क निरन्तर एक द्वैभाषिक—कहीं-कहीं त्रैभाषिक (चूँकि घर में तो बोलते हैं भोजपुरी या अवधी या ब्रज या राजस्थानी या मैथिली, पढ़ते हैं अंग्रेजी में और अनुवाद करते हैं साहित्यिक कृत्रिम हिन्दी में)—वातावरण में निरन्तर अनुवाद के स्तर में रहता है। और अपनी-अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार अंग्रेज़ी के भाववाचक शब्दों के अपनी-अपनी इच्छानुसार अर्थ लगा लिये जाते हैं। दर्शन के क्षेत्र में इसी कारण से बड़ा धुँधलका अनुवाद में पाया जाता है : शास्त्रीय समीक्षा के क्षेत्र में भी ऐसी ही अराजकता है। विशेषतः कई शीघ्र-यशकामी अनुवादकों का मूल भाषा संस्कृत पर भी पर्याप्त अधिकार नही होता। यह भयावह स्थिति कोरी आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्येताओं में बहुत पायी जाती है। इसका भी कुप्रभाव सृजनात्मक प्रतिभा के निर्माण, अभिव्यंजना या प्रभाव में बाधारूप पड़ रहा है। इसलिए यह इंगित मात्र मैंने किया है।

प्रस्तुत निबन्ध में काव्य, नाटक, उपन्यास तथा अन्य सृजनात्मक गद्य विधाओं ('रम्य रचना', 'ललित निबन्ध' या 'बेले लेत्र') की चर्चा मुख्यतः की जायगी। हिन्दी और हिन्दीतर सृजनात्मक प्रतिभाओं से कुछ उदाहरण भी दिये जायेंगे। पर विस्तार-भय से केवल संकेत से ही काम लिया जायगा। सन्दर्भों को स्पष्ट करने का यहाँ उद्देश्य नहीं है।

काव्यानुवाद :—

उमर खैयाम की 'रुबाइयात' के भारतीय भाषाओं में सत्तर से ऊपर अनुवाद मिलते हैं। अक्सर ये अनुवाद मूल फारसी से कम, फिट्ज़जेराल्ड के अंग्रेज़ी अनुवाद के आधार पर ही हैं। हिन्दी में यदि चार बड़े कवियों द्वारा किये हुए अनुवाद एक साथ मिलाकर पढ़ें तो पता नहीं चलेगा कि बेचारा खैयाम मूल में क्या चाहता था। मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, बच्चन, 'हितैषी' के अलावा भी हिन्दी में कई अनुवाद हैं। मेरा दुर्भाग्य यह है कि अंग्रेज़ी के चार अनुवादों के अलावा मैंने मूल फ़ारसी से मराठी में किये 'माधव जूलियन' के 'द्राक्ष-कन्या' और फिट्ज़जेराल्ड के अनुवाद से उसी कवि ने समच्छन्द किये अनुवाद को भी पढ़ा है। कुछ और भारतीय भाषाओं में से अनुवाद पढ़ने का भी यत्न किया है। और सब जगह यह खटकता रहा है कि मूल की संक्षिप्ति, सीधा सचोट व्यंग करने की शक्ति, संयम और संकेतपूर्णता अनुवादों में कितनी कम हो जाती रही है: कहीं कवियों ने अपने मन से कुछ जोड़ दिया है (तुक के मोह में या छन्द-चरणपूर्ति के लिए 'चवैतुहि, चवैतुहि')। कहीं मूल ही उनके पल्ले नहीं पड़ा है। आखिर ईरान के सूफी और भारत के वैष्णव या नास्तिक की सांस्कृतिक विचार-पृष्ठभूमि में भी तो अन्तर है। समानधर्मा अधिक अच्छा अनुवाद कर पाते हैं। कम-से-कम मूल भाषा-परिवेश के अधिक सन्निकट ज्ञाता-भोक्ता अधिक सफल होते हैं।

जो भाग्य या दुर्भाग्य खैयाम का रहा है वही कमोबेश कालिदास या रवीन्द्रनाथ का रहा है। 'मेघदूत' के कई अनुवाद मैंने पढ़े हैं: राजा लक्ष्मणसिंह से चिं० द्वा० देशमुख तक—समश्लोकी, विषमश्लोकी (यथा 'नागार्जुन' का), गीतात्मक (यथा राजा बढ़े का) या आधुनिक (बुद्धदेव बसु का) पर मूल के आनन्द का समाधान इन में से किसी अनुवाद से कभी नहीं हुआ। अनुवाद से—गुरुदेव द्वारा किये गये अपने ही अंग्रेज़ी अनुवाद से भी—असंतुष्ट होकर या घबरा कर मैंने मूल बंगला पढ़ी और 'उर्वशी' का संगीत या 'शाजहान' की उठान या 'सोनार तरी' की चित्रोपमता न 'निराला' के 'रवीन्द्र-कविता कानन' में मिली न रामनरेश त्रिपाठी के कविता-कौमुदी (भाग ७) में, न अनेक पद्यानुवादों में—यद्यपि हंसकुमार तिवारी, रघुवीरशरण गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र, भारतभूषण

अग्रवाल आदि अनुवादकों ने मूल से बहुत सटकर अनुवाद करने का पूरा प्रामाणिक यत्न अपनी मति से किया है।

काव्यानुवाद में चैपमैन का होमर हो या एज़रा पाउंड की चीनी कविताओं के अनुवाद; रवीन्द्र नाथ के कबीर के सौ पद या 'निराला' के विवेकानन्द की कविताओं के अनुवाद; या महादेवी के 'ऋग्वेद', अश्वघोष या रघुवंश के आंशिक या वल्लत्तोल का सम्पूर्ण ऋग्वेद का अनुवाद; पन्त के शैले के अनुवाद या बच्चन के पुश्किन के; 'दिनकर' या धर्मवीर भारती के अनेक आधुनिक विदेशी कवियों के अनुवाद—सर्वत्र यह दिखाई देता है कि अनुवाद वहीं सफल हुए हैं जहाँ अनुवादक ने मूल कवि की भावना + कल्पना + अभिव्यंजना के रसायन को ठीक तरह से ग्रहण किया है और उसे उतारने का यत्न किया है। यह छोटी कविताओं में अधिक सफल हुआ है। बालकृष्ण राव के 'विक्रान्त सैम्सन' या भारतभूषण के 'बन्दी प्रमथ' में लम्बी रचनाओं के भी सफल पद्यानुवाद के दर्शन मिलते हैं। भारतीय भाषाओं से लम्बी रचनाओं के हिन्दी में अनुवाद कम हुए हैं: मेघनाद-वध या पलासी के युद्ध जैसे। साहित्य अकादमी ने 'भग्नमूर्ति' और 'चिलिका' नामक दो लम्बी कविताओं का क्रमशः मराठी और उड़िया से अनुवाद प्रकाशित किया है, जो मूल के बहुत निकट हैं। राजेन्द्र द्विवेदी के 'शेक्सपीयर के सानेट' और शमशेरबहादुरसिंह की कुछ फ्रांसीसी कविताओं के (अरागां के) अनुवाद काफी सफल हैं। 'अज्ञेय' के जापानी 'हाइकू' हिन्दी में आकर बहुत गद्यात्मक लगते हैं। रांगेय राघव के माइकौव्स्की के अनुवाद काफी सप्राण थे। काव्य का अनुवाद अत्यन्त कठिन कार्य है और वह सफल कवि ही कर सकता है। उसमें न केवल मूल की आत्मा में पैठने की शक्ति होनी चाहिए बल्कि अपनी ओर से कुछ जोड़ने का मोह भी टालना चाहिए। काव्य का अनुवाद प्रतिभा की परीक्षा है।

नाट्यानुवाद :—

हिन्दी में भारतेन्दु के 'दुर्लभ बन्धु' (मर्चेण्ट आफ वेनिस) से लगाकर बच्चन के 'मैकबेथ' और रांगेय राघव के कई क्षिप्रतां-दूषित अनुवादों तक शेक्सपीयर के साथ न्याय-अन्याय होता रहा है। इब्सेन और ग्रीक नाटकों के भी अनुवाद

हिन्दी में हुए। लक्ष्मीनारायण मिश्र का कार्य उल्लेखनीय है। चेखव और रोमोनोफ़, शॉ और गाल्सवर्दी (प्रेमचन्द के अनुवाद उल्लेखनीय हैं), बैकेट और गेदूं तक कई नाटककारों की रचनाएँ हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं। कई तो निरे स्टेज-एडाप्टेशन्स हैं; कहीं-कहीं अनुवाद की सफलता स्टेज पर नहीं आज़माई गई है। द्विजेन्द्रलाल राय के प्रायः सभी नाटक बंगला से हिन्दी में अनूदित हुए और खेले भी गये, मामा वरेरकर के कई नाटक अनूदित हुए और खेले नही गये। अतः नाटकों के अनुवाद की सफलता-असफलता केवल 'पाठ्य' तक सीमित नहीं है। 'अभिनेयता' भी आवश्यक होती है। कालिदास के 'शाकुन्तल' के कई अच्छे-बुरे अनुवाद हिन्दी-हिन्दुस्तानी में हैं। और कालिदास की मूल आत्मा जैसी राजा लक्ष्मणसिंह के अनुवाद में परिस्फुट हुई—शायद ब्रजभाषा की मधुरता भी उसका एक कारण हो—वैसी अन्यत्र कम ही दृष्टिगोचर हुई। यद्यपि उदयशंकर भट्ट और सागर निज़ामी के अनुवाद आकाशवाणी पर सफलता से खेले गये, फिर भी संस्कृत नाटकों के उत्तम अभिनेय अनुवाद अब भी एक बड़ी आवश्यकता है। मैंने भारतीय भाषाओं में कालिदास के सफल अनुवाद, यथा उमाशंकर जोशी का 'शाकुन्तल' (गुजराती) पढ़े हैं। और वहाँ मूल से अधिक सन्निकटता दिखाई दी। 'इंटरप्रिटेशन' भी वहाँ बहुत अच्छा है।

आधुनिक कविता की भाँति आधुनिक नाटक के अनुवाद में बड़ी भारी कठिनाई मूल सांस्कृतिक पीठिका के विशेषीकृत होने से पराई भाषा द्वारा वे सब बातें जो मूल में संकेत से सुझाई जाती हैं व्यक्त हो पाना है। बेकेट के 'वेटिंग फार गोड्डो' का अनुवाद कैसे संभव है? टेनेसी विलियम्स के 'ग्लास मेनेजेरी' का मराठी अनुवाद इसीलिये स्टेज पर सफल नहीं हो पाया। बंगाली में रूसी और फ्रेंच नाटकों के आधार पर नाटक लिखे गये, कई एकांकियों के भी सफल अनुवाद लिखे और खेले गये हैं। मलयालम और कन्नड़ में भी ऐसा ही हुआ है। पर हिन्दी में आधुनिक यूरोपीय नाटकों के अनुवाद कम हैं। शायद इसका कारण यह भी है कि नाटक के अनुवाद के लिये विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। जैसे काव्य का अनुवाद सफल कवि ही अच्छी तरह कर सकता है, उत्तम नाटककार ही नाट्यानुवाद में यशस्वी हो सकता है। हिन्दी के नाटककार

यथा सेठ गोविन्ददास या जगदीशचन्द्र माथुर या उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने बहुत कम अनुवाद किये हैं।

जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है, वहाँ की नाट्य-परम्पराओं का भी असर पड़े बिना नहीं रहता। जून, १९६१ में मैं स्टाकहोम में इब्सेन थियेटर में बर्नार्ड शॉ के सुविख्यात नाटक 'कैंडिडा' का स्वीडी अनुवाद देख रहा था। मूल नाटक में अंग्रेज़ी में कवि मार्चबैंक्स का और उसकी रोमांटिक पौगंड-सुलभता का खूब मज़ाक उड़ाया गया था। इस अनुवाद में कवि के प्रति दर्शकों की सहानुभूति उमड़ रही थी और पादरी मोरेल को देखकर लोग हँस रहे थे। मैंने, पास बैठी अपनी दुभाषिया तरुणी से पूछा और उसने बताया कि यह दोष भाषान्तर के कारण है। भारतीय भाषाओं में भी बंगला की भावुकता, महाराष्ट्र या पंजाब की भावुकता-हीनता से मेल नहीं खाती; और अनुवाद में इसी कारण से काफी उलटा-सीधा चित्रण हो जाता है। दक्षिण भारत के लेखक मुद्दूकृष्ण का अशोकवन सन् '३८ में हिन्दी में अनुवादित हुआ, पर बहुत कम वह खेला या पढ़ा गया।

कुल मिलाकर भारत में नाट्य साहित्य अविकसित अवस्था में है। हिन्दी में तो वह और भी कम विकसित है, चूँकि नाटक का निकष मंच हिन्दी क्षेत्रों में विकसित नहीं। वहाँ अनुवाद द्वारा इस क्षेत्र को और उर्वर बनाने की बहुत बड़ी संभावना हमारे नाटककारों के सामने है। परन्तु साधारण कोटि के नाटककारों की सामान्य रचनाओं को शेक्सपीयर और कालिदास की कृतियों के समतुल्य बताने वाले आलोचकों ने ग़लत कृतियों और मूल्यों को उछालकर इस क्षेत्र को और बौना बना दिया है। दर्शक और श्रोता अधिक चौकन्ने हो गये और उनकी कलात्मक संवेदना विकसित हो गई है, पर हमारे नाटक और फिल्म वाले अभी किसी पुरानी दुनिया में ही भटक रहे हैं। विदेशी मुद्रा के अभाव में विदेशी नवीनतम कृतियों का कापीराइट का सवाल हल कर पाना सरकारी-प्रकाशन-प्रसारण क्षेत्रों में संभव नहीं। और 'क्लासिकों' के अनुवाद के लिए आवश्यक अध्यवसाय, बहुज्ञता और परिश्रमशीलता आज के व्यावसायिक युग में सस्ते अनुवादकों से कैसे अपेक्षित की जा सकती है?

कथा-उपन्यास का अनुवाद :—

इस क्षेत्र में सबसे अधिक हलचल सभी भारतीय भाषाओं में मिलती है। हिन्दी में तो विपुल परिमाण में मासिक, साप्ताहिक (क्रमशः) रूप में और अब पाकेट बुकों में भी विदेशी और अन्य भारतीय भाषाओं के अनुवाद बराबर छपते रहते हैं और हजारों पाठकों तक पहुँचते हैं। शरत्चन्द्र और बंकिमचन्द्र के कितने अनुवाद हिन्दी में हैं। और अब बंगाली का शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण लेखक हो जिसकी कृति हिन्दी में उपलब्ध न हुई हो : ताराशंकर बैनर्जी, माणिक बैनर्जी, विभूतिभूषण बंदोपाध्याय, विमल मित्र, प्रबोधकुमार सान्याल सब हिन्दी में उपलब्ध हैं। मराठी से साने गुरुजी, खांडेकर, फड़के, वरेरकर की रचनाएँ प्राप्य हैं और गुजराती से धूमकेतु, मुंशी, पन्नालाल पटेल आदि की कृतियाँ हिन्दी में सहज पढ़ने को मिलती हैं। उर्दू और पंजाबी के कई लेखक तो अनुवाद के सहारे हिन्दी लेखक हो गये हैं : कृशनचन्दर, बेदी, अमृता प्रीतम, करतारसिंह दुग्गल, नानकसिंह, हिन्दी लिखना नहीं जानते, यह कोई कहे तो किसी को भरोसा नहीं होगा। ऐसी स्थिति में साहित्यिक कृतियों से अधिक जनप्रिय, सस्ती, सेक्सी या वर्ग-विद्वेष फैलाने वाली प्रचार-साहित्य वाली वस्तुएँ बहुत छपती और बिकती हैं।

यहाँ भी प्रतिभाशाली लेखकों ने अपना योग-दान अच्छी कृतियों के अनुवाद से दिया है : प्रेमचन्द और जैनेन्द्र ने टालसटाय की रचनाओं के; 'अज्ञेय' ने आरवेल के; गणेशशंकर विद्यार्थी ने विक्टर ह्यूगो के; राजेन्द्र यादव ने चेखव और ज्वाइग के; मनोहर श्याम जोशी ने ओसाई दाजोमू के; शिवदानसिंह चौहान ने दौस्तांएव्स्की के; राहुल सांकृत्यायन ने सद्रुद्दीन ऐनी के; अमृतराय ने ओस्त्रोमोव के; महावीर अधिकारी ने हेरमान हेस्से के, कई अनुवाद हिन्दी को दिये हैं और उनमें कई सफल कृतियाँ हैं। रूसी, फ्रान्सीसी, अंग्रेज़ी के उत्तमोत्तम कथा-साहित्य की बानगी केवल हिन्दी पाठक को मिल सकती है। पर भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद का कार्य प्रतिभाशाली गद्य-लेखकों ने कम किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक हिन्दी, अंग्रेज़ी (और कुछ बंगला) के अलावा अन्य भारतीय भाषाएँ बहुत कम जानते हैं। इसलिए यह कार्य दूसरे प्रकार के अनुवादकों को करना पड़ता है जो स्वयं सृजनात्मक प्रतिभा वाले व्यक्ति नहीं होते।

इस क्षेत्र में अक्सर प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न चोरी-उठाइगीरी की चर्चाएँ होती हैं। 'रंगभूमि' थैकरे के वैनिटी फेअर से प्रभावित थी या नहीं यह अवध उपाध्याय जानें, पर भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' में अनातौल (फ्रांस) की छाया का ऋण कबूल किया। ऐसा ही ऋण रोम्या रोलाँ, डॉ० एच० लारेन्स वाइल्ड जिब्रान, हार्डी और तुर्गनेव का कई हिन्दी के नये लेखकों पर है। यह बात दूसरी है कि लेखकों ने उसे कबूल नहीं किया हो। सृजनात्मक प्रतिभा वाले कथाकार अनुवाद में शक्ति कम खर्च करना चाहते हैं, चूँकि उसमें समय अधिक लगता है। मूल रचना पढ़कर बहुत लोग यह भी चाहते हैं कि उस आनन्द का सह-भावन अन्य भाषा के पाठकों के साथ भी करे। यह समभागी बनाने का कार्य बहुत कम लोग कर पाते हैं। कहानी या उपन्यास में केवल कथानक, चरित्र-चित्रण, वार्तालाप का अनुवाद ही काफी नहीं होता, मूल लेखक की शैली भी तो प्रधान वस्तु है। और उसके लिए मूल साहित्य की कथा-प्रवृत्तियों का अध्ययन भी अनुवादक के लिए आवश्यक होता है।

हिन्दी के कथानुवाद में अब नये लेखक कुछ सावधानी बरतने लगे हैं, वर्ना पहले तो चाहे जैसे अनुवाद केवल कथानक की महत्ता या सामाजिक-राजनैतिक और असाहित्यिक कारणों से बहुत-कुछ प्रचलित हो गये थे। मूल से पूरी प्रामाणिकता अब नये अनुवादक अधिक बरतने लगे हैं, जिन्हें मूल साहित्यकृति का साहित्य-रस पाठकों तक पहुँचाने की भी इच्छा होती है। शरद देवड़ा के कथान्तर में ऐसे सफल अनुवादों के नमूने पाये जाते हैं। कामू और काफ्का के कुछ अच्छे अनुवाद इधर हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं।

कथा और उपन्यास के अनुवाद में मूल का प्रवाह भी उतना ही सहज-सुपाठ्य रख पाना एक कठिन कार्य है। विशेषतः आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक, वातावरणप्रधान और प्रतीकात्मक या अध्यात्मगंधी उपन्यासों में। जेम्स जौयस या ग्रैहेम ग्रीन या फॉकनेर के अनुवाद का कार्य साधारण व्युत्पन्नता वाला व्यक्ति सहज रूप से नहीं कर सकता। कई बार हिन्दी अनुवादों में मूल विदेशी रचना का निरा कंकाल हाथ लगता है, कभी-कभी कुछ रक्त-मज्जा या चर्म का आभास भी मिल जाता है, पर पूरी ऊष्मा या मूल जैसा पूरा आस्वाद बहुत ही कम कृतियों में पाया जाता है। हिन्दी प्रकाशक सस्ते में ये अनूवाद कराना

चाहता है, और अनुवादक की योग्यता की पूरी परीक्षा किये बिना यह कार्य चाहे जिसे सौंप देता है, और बेचारा हिन्दी पाठक तो अभी अच्छे-बुरे की समीक्षा करने की स्थिति में पहुँचा नहीं है—साक्षरता का प्रमाण यहाँ बहुत धीरे-धीरे बढ़ रहा है। ऐसे समय समालोचकों को बहुत सजग होना चाहिए। क्या वे हैं?

अन्य गद्य-विधाओं के अनुवाद :

लघुनिबन्ध, वैयक्तिक निबन्ध, डायरी, रिपोर्ताज, 'जूर्नाल', प्रवास-वर्णन आदि रचनाओं के अनुवाद विदेशी दूतावासों की आवश्यकतानुसार कभी-कभी जो किये जाते हैं उन्हें छोड़, बहुत कम विदेशी भाषाओं से हिन्दी में मिलते हैं। भारतीय भाषाओं में से भी धार्मिक महत्त्व वाले यथा 'मानसरोवर की यात्रा' (बंगला से) या अनन्त काणेकर के लघु-निबन्धों का रा० र० सर्वटे ने या पु० ल० देशपांडे के हास्य लेखों का दिनकर सोनवलकर से किया हुआ अनुवाद छोड़ दें तो बहुत कम ऐसी कृतियों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होते हैं। विदेशी भाषाओं में जो हास्यव्यंग, व्यक्तिगत संस्मरण, रेखाचित्र आदि प्रकाशित हुए हैं उनमें बहुत से हिन्दी में अनुवाद योग्य हैं : बनारसीदास चतुर्वेदी ने कुछ ऐसी चीजें छुटपुट अपने लेखों में दी हैं। बच्चन ने माइकेल ब्रेचर की नेहरूजी की जीवनी का अनुवाद प्रस्तुत किया है। पर बहुत सा कार्य इस दिशा में होना शेष है। सृजनात्मक प्रतिभा के लिए यह क्षेत्र अछूता पड़ा है। बहुत से अनुवाद जब होते हैं तब भाषाएँ समृद्ध बनती हैं। टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट में अनुवाद की आलोचनाएँ नित्य पढ़ते रहने वाले को पता होगा कि छोटे से द्वीप इंग्लैण्ड में इस दिशा में कितना काम यूरोपीय भाषाओं से नित्य होता रहता है। और यूरोप के छोटे-छोटे देशों में छोटी-छोटी भाषाओं में भी प्रकाशक और साहित्य-सस्थाएँ कितनी तेजी से इस कार्य में लगी हैं। पता नहीं हम कब यह सब करेंगे?

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद-कार्य बढ़ा है। उसकी गुणवत्ता कहाँ तक है और उसमें वृद्धि होने के क्या उपाय हुए हैं यह सब सर्वेक्षण करने का यह स्थान नहीं है। वैसे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, प्रादेशिक सरकारें और अकादेमियां उत्तम अनुवादों को पुरस्कारादि देती हैं। साहित्य

अकादेमी ने इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। हिन्दी में पहली बार कई भारतीय भाषाओं से सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद एक केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत प्रकाशित करने का यत्न इस संस्था ने किया है: उड़िया और असमिया, तेलुगु और कन्नड़, पंजाबी और गुजराती, मराठी और मलयालम, बंगाली और उर्दू किताबों के अनुवाद हिन्दी में अकादेमी ने प्रकाशित किये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि अधिकाधिक सृजनात्मक प्रतिभाएँ (जो भी उसका अर्थ हो) इस ओर मुड़ें और अनुवाद की महत्ता को स्वीकार करें; और स्वयं सक्रिय सहयोग दें।

अनुवाद : एक विचार

—जैनेन्द्र कुमार

अनुवाद का मतलब है बात को एक से दूसरी भाषा में उतार कर कहना। आवश्यक है कि वह बात दूसरी भाषा वाले के पास पहुँच जाये। बात का भाव सही-सही पहुँचे और बीच में कहीं वह अपना प्रभाव भी न खोये। जिस मात्रा में यह परिणाम आता हो, उसी मात्रा में अनुवाद सफल कहा जा सकता है।

भाषा सिर्फ शब्दों का समूह नहीं है। शब्द का अर्थ बँधा और स्थिर होता है। लेकिन शब्दों से वाक्य तब बनता है जब उसमें क्रिया शामिल होती है। अर्थात् भाषा में अर्थ-भर नहीं होता बल्कि सक्रिय अर्थ होता है। संज्ञा तो मूर्त अथवा वाचक हुआ करती है, लेकिन क्रिया अमूर्त होती है। इसलिए अनुवाद का काम सहज नहीं रह जाता। केवल अर्थ की बात होती तो कठिनाई थी ही नहीं, कोश से वह काम चल सकता था। लेकिन भाषा में शब्द अपना-अपना अर्थ लेकर इस तरह समाए रहते हैं कि मानों अपने में स्वयं खो ही गये हों। उनकी परस्पर पृथक्ता वहाँ समाप्त हो जाती है। सब मिलकर मानों वे एक भाव को प्रकट करने लग जाते हैं। इस तरह के अनेकानेक वाक्यों को लेकर भाषा बनती है और वह अमुक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसलिए अधिकांश यह होता है कि जब हम शब्दों का अर्थ देते हैं और शब्दों के बीच में एकता डालने वाला भाव अनुवाद में से बच जाता है तो वह अनुवाद बेजान रह जाता है। इसी को यों कहिए कि भाषा में जान होती है। उस चैतन्य की ही धड़कन है जो कहने वाले को सुनने वाले से और लिखने वाले को पढ़ने वाले से जोड़ती है। भाषा इसी तरह व्यक्तियों और समूहों के बीच में आदान-प्रदान का माध्यम होती है और मानव समाज में क्रमशः बढ़ती हुई एकता के विस्तार का साधन बनती है। भाषा में जान अगर निकल जाने दी जाती है तो अनुवाद कलेवर मात्र रह जाता है और वह जीवनोपयोगी नहीं हो पाता।

अनुवाद के काम के तटों पर स्पष्ट है कि दो भाषाएँ हैं। मूल की भाषा एक है और अनिवार्य है कि उसका मुहावरा वहाँ के लोगों की रीति-नीति के अनुसार अलग हो। अनुवाद जिस में किया जाना है वह भाषा बिल्कुल दूसरी होती है और उसके रंग-ढंग में, लहज़े-मुहावरे में भी फर्क हो सकता है। जरूरी है कि अनुवादक दोनों भाषाओं से परिचित हो। लेकिन जो उससे भी ज्यादा जरूरी है वह यह कि जिस भाषा में अनुवाद होना हो, अनुवादक उस भाषा को जानता-बूझता ही न हो, बल्कि उसमें रहता-सहता भी हो। मूल भाषा के अच्छे परिचय से भी काम चल सकता है; लेकिन उल्थे में काम आने वाली भाषा तो जीवन की ही होनी चाहिए।

अब कठिनाई यह है कि एक से अधिक भाषाओं के जानकार यों विरल नहीं हैं बल्कि काफी सुलभ हैं; लेकिन ऐसे बहुत ही विरले हैं जिनके लिए एक से अधिक भाषाएँ मातृभाषा के समान हों। अधिकांश मातृभाषा एक होती है। अधिकांश इसलिए कहना पड़ता है कि घर में दो भाषाएँ हो सकती हैं। पिता की एक, माता की दूसरी। बालक इस तरह दोनों भाषाओं में समान अभ्यस्त हो सकता है। फिर भी बालक में पितृभाषा से मातृभाषा सहज रूप से अधिक गहरी उतरी हुई होती है।

जो लेखन मौलिक है, वह गढ़ा हुआ और कृत्रिम नहीं होता। वह सहज और प्रवाही होता है। व्याकरण के अधीन नहीं हुआ करता हो तो व्याकरण उसमें गर्भित रहता है। इसलिए वह परस्परता को अनायास घनिष्ठ कर जाता है। ऐसा साहित्य लिखने और पढ़ने वाले के बीच ऐसी अन्तरंगता पैदा कर देता है कि मानों व्यवधान ही न बचता हो जहाँ भाषा की चेतना बैठ सके। अनुवाद की सफलता इसमें है कि मूल लेखक और अनुवाद के पाठक में उसी प्रकार की संवेदना और सहानुभूति की घनिष्ठता और आत्मीयता पैदा की जा सके।

इस सफलता के लिए पहली आवश्यकता यह है कि अनुवाद में मूल कृति के साथ अभिन्नता हो। वह उस रस में भीग-डूब जाए। अनुवाद उसके लिए प्रीति का काम हो, निरे परिश्रम का न हो। वह अपनी इच्छा से कृति का चुनाव करे और अपने में अनुवाद की स्वतः-प्रेरणा अनुभव करे। पारिश्रमिक की खातिर किये गये परिश्रम का अनुवाद उतना अकृत्रिम न हो सकेगा। मूल के प्रेम के

साथ ही अनुवाद में उस भाषा-भाषी के प्रति भी प्रीति की आकुलता होनी चाहिए जिसमें अनुवाद किया जाना है। अनुवाद की पूरी सफलता के लिए यह दोहरी प्रीति आवश्यक है। अतः अनुवाद के काम को मैं बहुत अधिक महत्त्व देता हूँ। मौलिक लेखन में इकहरी प्रीति से भी चल सकता है। बल्कि अहम् प्रीति में भी वह काम किया जा सकता है। अनुवाद में स्व-रति से तो चल ही नहीं सकता। बल्कि स्व से शून्य होने की प्रक्रिया उसके लिए आवश्यक होगी। इसे एक तरह का योग-साधन ही कहना चाहिये। अनुवादक को मूल के व्यक्तित्व में पहले अपने को खो देना होता है, फिर उसी में आत्मभाव पैदा करके अपनी भाषा के माध्यम द्वारा उस भाषा-भाषी के प्रति अपने को भावार्पित करना पड़ता है। यह साधना हल्की नहीं है और मुझे प्रतीत होता है कि मस्तिष्क को सही अनुशासन में साधने के लिए अनुवाद का कार्य बहुत उपयोगी अभ्यास बन सकता है।

आज की परिस्थिति यह है कि विज्ञान के विकास से कोई भी दो देश परस्पर दूर नहीं रह गए हैं, बल्कि आसपास आ गये हैं। हर प्रधान नगर में आप विश्व-मानव के दर्शन पा लीजिए। हजारों मील दूर जो समझा जाता था और इसलिए जिसकी रहन-सहन की पद्धति एकदम बिछुड़ी और विलग थी, वह भी अब विशेष दूर तक पराया नहीं रह गया है। वहाँ के लोग आपके सामने आते हैं और उनकी बोली आपके कानों में पड़ती है। धीरे-धीरे जरूरी हो जाता है कि आप वहां के साहित्य और संस्कृति के बारे में अधिक जानना चाहें। पास-पड़ौस की भाषाओं में तो बहुत कुछ सादृश्य और हेल-मेल आप ही बना रहता है। काफी शब्द दोनों में सम-समान हो रहते हैं और तौर-तरीके भी एक दूसरे के आपस में इतनी दूरी के नहीं रह जाते। यही जैसे कि हिन्दी और उर्दू को लीजिए। मानने को उन्हें दो भाषा माना जा सकता है, लेकिन उनके आपस के अनुवाद में जरा भी कठिनाई नहीं है। अधिकतर तो लिपि भर बदल देने से काम चल जाता है। इसी तरह दक्षिण की चार भाषाओं को छोड़ दें तो भारत की अन्यान्य भाषाएँ बहुत मिलती-जुलती हैं और अनुवाद में कठिनाई नहीं पैदा करतीं। दक्षिण की भाषाओं में भी संस्कृत के इतने तत्सम् और तद्भव शब्द हैं, तिस पर संस्कारों की इतनी समानता है, कि वहाँ भी कठिनाई को लाँघने में

जोर नहीं पड़ता। लेकिन स्वदेश से आगे जिन्हें विदेश कहते है, वहाँ की भाषाओं का मानव बिलकुल ही दूसरा होता है। और जो प्रश्न पैदा करता है वह अनुवाद विदेशी भाषाओं का हुआ करता है।

वहाँ संगत विचार यह है कि अनुवाद की जाने वाली पुस्तक की प्रकृति क्या है। जिसको सृजनात्मक साहित्य कहा जा सकता है, वहाँ अभिधा से अधिक व्यंजना होती है। अर्थात् शब्दार्थ से अधिक वहाँ भावार्थ पर ध्यान रखना होता है। व्यंजना और व्यंग्य के कारण यह भी संभव है कि शब्दार्थ तो एक हो, भावार्थ बिलकुल ही दूसरा, यहाँ तक कि उल्टा हो। वहाँ शब्द और वाक्य रचना पर ही ध्यान रहने से अनुवाद में अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इस प्रकार के साहित्य के अनुवाद के लिए अनुवादक वह सफल होगा जिसकी अनुभूति सूक्ष्म है और अभव्यक्ति सक्षम है, फिर चाहे मूल भाषा का ज्ञान उसका अपेक्षाकृत कम भी क्यों न हो। मैंने ऐसे अनुवाद देखे हैं जो जानकारों द्वारा किए गए हैं, लेकिन बेहद निकृष्ट बन पड़े है। कारण, मूल भाषा के शब्दों से उन्हें परिचय अवश्य था, लेकिन भाव-भंगिमाओं को पकड़ने की क्षमता न थी, न फिर अभिव्यंजना की शक्ति थी। और वहाँ जो अपेक्षित है वह भावचित्र को पहले मानस में लेना और उतारना है, फिर उसे अपने शब्दों में स्वरूप पहनाना हैं। इस प्रक्रिया में मूल के शब्दों के पर्यायवाची देने का अर्थ ही कुछ नहीं रह जाता, वह काम सर्वथा असंगत तक बन जाता है। मानों वहाँ भाव-चित्र को इतर भाषा-भाषी के प्रति सम्प्रेषणीय बनाना आवश्यक होता है। सब शब्दों के अर्थों के अर्थो का ज्यों का त्यों जमघट बनाकर उपस्थित करने से भाव की अन्विति खतम हो जाती है और पढ़ने वाले तक प्रभाव के नाम पर कुछ भी नहीं पहुँच पाता। कई बार आग्रह रखा गया है कि अनुवाद वही करे जो मूल की भाषा, जैसे कि रूसी भाषा भी जानता हो। केवल रूस में कुछ वर्ष रहने और भाषा के शब्दों को जान लेने मात्र से तालस्ताय के अनुवाद की क्षमता आ जाती है, यह नहीं मानना चाहिए। तब क्या यह नहीं किया जा सकता कि यदि अंग्रेजी में तालस्ताय का प्रामाणिक और सही अनुवाद मिलता है तो उस अनुवाद से अनुवाद कर लिया जाए ? आज भी अनुवाद के अनुवाद ऐसे मौजूद हैं जो कहीं सुन्दर और शुद्ध हैं, जबकि सीधे मूल से किए गए अनुवाद जड़ और फूहड़ हैं।

पर साहित्य के दो प्रकार हैं। एक तो जीवंत साहित्य, जिसे शक्ति का साहित्य भी कहा जाता है। दूसरा बोध-साहित्य। कविता, कहानी, नाटक इत्यादि की भाषा चित्रमय और चिन्मय होती है। उक्ति वहाँ सीधी नहीं होती, बल्कि वक्रोक्ति हुआ करती है। किन्तु वाङ्मय जिसको कहते हैं अधिकांश शब्द वहाँ अपना सीधा प्रयोजन देता है और वह ज्ञानात्मक साहित्य हुआ करता है। उस स्तर पर भी यदि सहानुभूति नहीं तो ज्ञानानुभूति आवश्यक होनी चाहिये। ज्ञान एक तो वह होता है जो दिमाग में अलग धरा सा रहता है, अनुभूति में नहीं उघर पाता। वह पुस्तकीय ज्ञान है और उसके भरोसे किये गये अनुवाद कठिन और जटिल बन जाते हैं। बोध और ज्ञान जब रच-पच जाता है, जीवन व्यवहार का अंग बन जाता है, तब मानो वह परिज्ञान हो जाता है। अनुवाद के लिए ज्ञान से अधिक यह परिज्ञान आवश्यक है।

अनुवाद के काम को, जैसा आजकल चल रहा है, तीसरे-चौथे दर्जे का घटिया काम समझ लिया जाता है। ऊँचे लोग उस काम में हाथ नहीं लगाते और पढ़े-लिखे बेकार लोगों पर उजरत की दर पर अनुवाद का बोझ डाल दिया जाता है। यह भारी भूल है। इस भूल के कारण जीवन-शक्ति का अमित अपव्यय, यहाँ तक कि स्वयं विद्या-विज्ञान का भारी अहित हो सकता है। आजकल स्कूल-कालेज से परीक्षाएँ पास करके आए हुए बहुत से लोग तनिक सूक्ष्म होने पर बात को सही तौर पर शीघ्र पकड़ नहीं पाते, न व्यक्त कर पाते हैं। कारण यह है कि जिन पुस्तकों के आधार पर उन्होंने ज्ञान पाया होता है, वे शब्द-बहुल होती हैं, सजीव सक्षम उतनी नहीं होतीं। जीवन-चैतन्य के बजाय ऊपरी जानकारी में से निकले हुए पाठ्य-ग्रन्थों से भला और क्या परिणाम आने वाला है? ऐसा नहीं मालूम होना चाहिए कि जीवन-संदर्भ लुप्त हो गया है और पुस्तक अथवा अनुवाद द्वारा विच्छिन्न और बिखरी हुई जानकारी दी जा रही है। प्राणों में पचाए हुए ज्ञान में से ही विषयवस्तु इस तरह आ सकती है कि लेने वाले को उसे समझने और पाने में प्रयास न पड़े।

किन्तु यहाँ मतभेद संभव है। मैंने स्वयं तालस्ताय का कुछ अनुवाद किया है जो बहुत लोकप्रिय हुआ है। एक पुस्तक के अनेकानेक संस्करण हो गए हैं। उन कहानियों को मौलिक के से चाव से पढ़ा गया है, वे ऐसी सीधी मन

में उतरती चली जाती हैं। अनुवाद जैसी वे लगती ही नहीं। एक रूसी विज्ञ बन्धु ने कहा कि मैंने अनधिकृत काम किया है यह कि कहीं नाम बदल दिए हैं। मैं उनसे सहमत नहीं हो सका। मैंने कहा कि शायद तालस्ताय की रचना में मानवपन अधिक अभीष्ट है आपके चित्त को रूस देश अधिक इष्ट हो सकता है। आप मुझसे सहमत न होंगे। तालस्ताय कदाचित् प्रसन्नता से सहमत होते। उनके नैतिकता के सन्देश को, जानता हूँ, मैं आगे बढ़ा रहा हूँ। प्रतीत होता है कि मूल की आत्मा के प्रति अनुवादक को अपना प्रथम दायित्व मानना चाहिए। यदि कलेवर की ज्यों-की-त्यों रक्षा करनी होती तो अनुवाद ही ज़रूरी न था। 'गाड' को परमात्मा कहने से चित्र में थोड़ा अन्तर तो पड़ जाता ही होगा, लेकिन उसको सही मानना होगा। आशय कि मूल लेखक के साथ भाव की अभिन्नता स्थापित करने पर अनुवादक को कलेवर के प्रति तनिक स्वतन्त्रता लेने में भय नहीं मानना चाहिए। शब्दानुवाद सदा ही भयंकर होता है।

आवश्यक है कि दुनिया के प्रामाण्य ग्रन्थों को, जिन्हें क्लासिक कहा जाता है, हर भाषा में प्राप्य बनाया जाए। इस काम में योग्य से योग्य व्यक्तियों का योग होना चाहिए। धनोपार्जन की प्रेरणा ऊपरी होती है और यह काम आन्तरिक और आत्मिक है। सरकारों का यदि इधर ध्यान हो तो इस दिशा में उन्हें वदान्यता दिखानी चाहिए।

ध्यान रखना चाहिए कि शब्द यद्यपि छपने में अलग-अलग दीखते हैं, लेकिन भाषा और भाव में उस तरह अलग-अलग होते नहीं हैं; उनके बीच जो अवकाश दीखता है वहाँ एक वातावरण की उपस्थिति और संगति हुआ करती है। अर्थात् शब्दों में जितना आता है, उनके बीच में और आस-पास में उससे कुछ अधिक ही हुआ करता है। उसको पकड़े और उतारे बिना अनुवाद परिपूर्ण और प्रभावक नहीं हो सकता। शब्द के पीछे के मानस को ही गहने और देने की बात है। नहीं तो आशय अधूरा आता है और शायद असल छूट जा सकता है। उत्कृष्ट भाषा सांकेतिक हुआ करती है। जितना कहती है, उससे अधिक वह सुझाती है। सीमित के द्वारा वह असीम को झलका आती है। यह खूबी अगर अनुवाद द्वारा उतरने में रह गई तो वह अनुवाद फीका कहलाएगा, पूरा आनन्द नहीं दे पाएगा।

मेरे साथ हुई एक घटना का मुझे ध्यान आता है। अनुवाद अंग्रेजी में हो रहा था और भारतीय-बन्धु के साथ एक अंग्रेज सज्जन भी सहायक थे। दोनों ने कहा कि पुस्तक का अमुक परिच्छेद तो अनुवाद में उतरता ही नहीं, क्या किया जाए ? उस प्रसंग में भावाकुलता थी और था तज्जनित वातावरण। अतिरिक्त अर्थ-प्रयोजन प्रसंगोपात्त उस भाषा में उतना न था। दोनों अनुवादक काफी यत्न करके हार चुके थे। मैंने उन्हें सलाह दी कि आप दो-तीन बार लगातार उस परिच्छेद को पढ़ते जाइये, फिर किताब अलग बन्द करके रख दीजिए। और बस जो मन में चित्र बना रह गया हो अपने शब्दों में वही उतार दीजिए। वैसा ही किया गया और वह अनुवाद जानकारों द्वारा अब भी अच्छा माना जाता है।

सच यह है कि ज्ञानी अथवा अनुभवी जन भाषा के सहारे, आत्मशोध, अथवा जीवन-शोध की ओर बढ़ रहे होते हैं। यह स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना है। यहाँ अनुभूति से हीन होकर एक पग भी रखना कठिन हो जाता है। अनुवादक को इस बारे में सावधान रहना चाहिए और जब तक मूल का अर्थ ऐसा हृदयंगम न हो जाए कि अनुभूति में ध्वनित होता जान पड़े, तब तक क़लम को रोके रखना ही अच्छा है। मूल की आत्मा के साथ जब अपना भाव चल निकले तभी साथ-साथ कलम को भी चलना चाहिए। अन्यथा हठात् परिश्रम के बल से अनुवादक सफल नहीं हो सकेगा।

अनुवाद का भाषा-वैज्ञानिक पक्ष

—सत्यनारायण

भाषा संस्कृति का एक अंग है। संस्कृति का जिस प्रकार का स्वरूप होगा तथा उसमें जिस प्रकार की मान्यतायें होंगी उसका प्रतिबिम्ब निश्चय ही उसकी भाषा में दिखाई पड़ेगा। भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान रही है अतः यहाँ की प्राचीन भाषा संस्कृत में उसके अनुरूप अनेक शब्द भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ, समाधि, योग, संन्यासी, कर्म, निर्वाण, इन्द्रिय आदि। इसके प्रतिकूल पश्चिमी संस्कृति में भौतिकता का प्राधान्य रहा है और वहाँ विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा है अतः उनकी भाषाओं में ऐसे अनेक शब्द भरे पड़े हैं जिनके पर्यायवाची शब्द भारतीय भाषाओं में नहीं मिलते, जैसे राकेट, स्पुतनिक, टैंक, बम इत्यादि। जिस देश में आम पैदा ही नहीं होता और कोई यह भी नहीं जानता कि वह फल है या पशु तो वहाँ आम शब्द से कोई अर्थ-बोध नहीं हो सकता। इसी प्रकार से जिस देश में ठंड पड़ती ही न हो तो उस देश की भाषा में हिम के लिए कोई पर्यायवाची शब्द मिलना कठिन है और 'हिम जैसा श्वेत' पद का अनुवाद करते समय हमें हिम जैसे किसी ऐसे अन्य पदार्थ का सादृश्य दिखाना होगा जो उस देश में प्राप्त हो। ऐसी दशा में अनुवादक को एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय स्वभावतः अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसे किसी विशिष्ट शब्द का बोध कराने के लिये व्याख्यात्मक ढंग से कहना पड़ता है अथवा उस शब्द के समान, उससे मिलते-जुलते किसी ऐसे शब्द का प्रयोग करके उस भाव को स्पष्ट करना होता है जिस शब्द से अनुवाद की भाषा के पाठक परिचित हों। उदाहरणार्थ 'संन्यासी' शब्द का अंग्रेजी में One who has renounced the world कह कर अर्थ-बोध कराया जा सकता है। इसी प्रकार से अन्य भाषा-भाषी कोई भी व्यक्ति हिन्दी के 'पेड़ा' शब्द का तब तक अर्थ नहीं समझ सकेगा जब तक कि वह हिन्दी शब्द-

कोश में दिये गये उसके अर्थ को न जानता हो। 'पेड़ा' रहित संस्कृति से संबंधित व्यक्ति उसका अर्थ केवल तभी समझ सकता है जब उसे यह पता हो कि इस भाषा में दूध के खोये और शक्कर से मिलकर बनी वस्तु को 'पेड़ा' कहते हैं और 'खोये' शब्द का अर्थ उसे पता हो।

इसी प्रकार से कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो एक विशिष्ट प्रणाली के प्रचलन के कारण किसी संस्कृति विशेष की भाषा में ही पाये जाते हैं। भारत में संयुक्त परिवार की प्रणाली होने के कारण यहाँ परिवार से संबंधित ऐसे अनेक शब्द हैं जिनके पर्यायवाची शब्द अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं उदाहरणार्थ, ज्येष्ठ, देवर, साला, बहनोई, फूफा, मौसा, इत्यादि। अंग्रेजी में ज्येष्ठ, देवर, साला, बहनोई सभी के लिये केवल एक ही शब्द brother-in-law का प्रयोग होता है। फूफा के लिये व्याख्यात्मक ढंग से father's sister's husband कहकर काम चला लिया जाता है। जबकि हिन्दी में उन सबके लिये भिन्न-भिन्न शब्द हैं। इसी प्रकार से चाचा तथा ताऊ दोनों के लिये ही अंग्रेजी मे 'uncle' शब्द से ही काम चला लिया जाता है। अतः, अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करते समय अनुवादक को इस बात का ध्यान रखना होता है कि brother-in-law शब्द का साले से अर्थ है अथवा बहनोई, ज्येष्ठ या देवर से।

अनुवाद प्रक्रिया में जितनी समस्यायें दो भाषाओं की विभिन्न सांस्कृतिक, राजनैतिक अथवा भौगोलिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण उत्पन्न होती हैं, उससे कही अधिक समस्यायें दो भाषाओं के गठन की विशेषताओं के कारण उत्पन्न होती हैं। ये समस्यायें प्रत्येक भाषा के साथ जुड़ी हुई हैं और अनुवाद प्रक्रिया के हर मोड़ पर आती हैं। भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इन समस्याओं को चार शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है: (१) ध्वनि विज्ञान, (२) रूप विज्ञान, (३) वाक्य रचना, और (४) शब्दार्थ।

ध्वनि विज्ञान

व्यक्तिवाचक नामों का मूल भाषा से अन्य भाषा में लिप्यंतर करने में दोनों भाषाओं की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं की समानता का प्रश्न उठता है। दो भाषाओं में कभी भी समान ध्वनियां उपलब्ध नहीं होती हैं। जब कोई अनुवादक

किसी दूसरी भाषा से अनुवाद करता है तो यदि उस विदेशी भाषा में कुछ ऐसी ध्वनियां रहती हैं जो उसकी अपनी भाषा में नहीं रहतीं तो प्रायः वह उधार लिये गये शब्दों में उन ध्वनियों के स्थान पर अपनी भाषा की उनसे मिलती-जुलती या निकटतम ध्वनियों का प्रयोग करता है और इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। भारतीय भाषाओं में समय-समय पर यूनानी, जापानी, चीनी, तुर्की, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, पुर्तगाली इत्यादि भाषाओं के बहुत से शब्द ग्रहण किये गये हैं और इन सभी में ऐसा हुआ है। अंग्रेजी में 'ट' और 'ड' ध्वनि हिन्दी के 'ट', 'ड' के समान न तो मूर्द्धन्य या तालव्य हैं और न 'त' 'द' के समान दन्त्य। अतः स्वभावतः उन अंग्रेजी शब्दों में जो हिन्दी में आये हैं ये ध्वनियां या तो मूर्द्धन्य अथवा तालव्य में परिवर्तित हो गई हैं जैसे 'डेस्क' से 'डेक्स', या दन्त्य में जैसे—'आगस्ट' से 'अगस्त', 'सेप्टेम्बर' से 'सितम्बर'। इसी प्रकार से रूसी भाषा का 'स्तालिन' तथा 'बेने दिक्तोव' अंग्रेजी में Stalin (स्टालिन) और Bendictov (बेनेडिक्टोव) लिखा जाता है।

अतः एक भाषा के व्यक्तिवाचक नामों को दूसरी भाषा में बिना कोई रूप-भेद किये स्थानान्तरित करना असंभव है। एक भाषा से दूसरी भाषा में नाम को स्थानान्तरित करने के बाद वह बहुधा बिल्कुल ही बदल जाता है जैसे ग्रीक Alexandar संस्कृत में 'अलक्षेन्द्र' और हिन्दी में सिकन्दर हो जाता है। इसमें कुछ-न-कुछ रूपभेद तो करना ही पड़ता है। ऐसे शब्दों को स्थानान्तरित करने के दो साधन हैं (१) अनुलेखन (Transcription) तथा (२) लिप्यंतरण (Transliteration)। अनुलेखन में किसी भाषा के कतिपय अक्षरों को दूसरी भाषा के कतिपय अक्षरों में परिवर्तित किया जाता है जैसे अंग्रेजी के 'आगस्ट' को 'अगस्त' इत्यादि। लिप्यंतरण में ध्वनि के अनुरूप अपनी भाषा में ढाला जाता है। इसमें हिज्जे का प्रश्न नहीं ध्वनि का प्रश्न होता है। लिप्यंतर करते समय 'आर ए आई एल' न कह कर रेल कहा जाता है।

कभी-कभी अनुवादक सब शब्दों का लिप्यंतरण न करके कुछ का ही लिप्यंतरण करना उचित समझते हैं। ऐसा बहुधा उस दशा में होता है जहां व्यक्तिवाचक नामों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के 'Alexandar the Great' को हिन्दी में 'सिकन्दर महान्' कहा

जाता है और 'अलेक्जेंडर' न लिख कर सिकन्दर ही लिखा जाता है जो हिन्दी में प्रचलित हो चुका है। लिप्यंतरण मे अनुवाद की भाषा में शब्द को पूरी तरह ध्वनि के अनुसार ग्रहण किया जाता है। उसमें ध्वनि का महत्त्व होता है, वर्तनी (spelling) का नहीं।

रूप विज्ञान

किसी भाषा में अनुवाद करते समय मूल भाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के प्रत्येक पहलू पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। अंग्रेजी के एक वाक्य 'I employed a worker' का रूसी भाषा में अनुवाद करते समय रूसी अनुवादक को कुछ अन्य अनुपूरक सूचनाओं की आवश्यकता होगी : क्या कार्य पूर्ण हो चुका था अथवा वह अपूर्ण था, क्या श्रमिक पुरुष था अथवा महिला, क्योंकि उसे पूर्ण अथवा अपूर्ण स्वरूप (aspect) की क्रिया के बीच और स्त्री-वाचक तथा पुरुषवाचक संज्ञा के बीच निश्चय ही चयन करना होगा। अंग्रेजी में ऐसा पूछना असंगत समझा जायेगा जबकि रूसी भाषा में इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना अनिवार्य है। दूसरी ओर रूसी अनुवाद में इस बात का कोई पता नहीं चल सकेगा कि मैंने 'काम पर लगाया' या 'काम पर लगाया है' और न इस बात का ही पता चल सकेगा कि वह एक अनिर्दिष्ट (indefinite) श्रमिक था/थी या निर्दिष्ट (definite) जिसका अंग्रेजी में क्रमश: 'a' और 'the' लगाने से बोध हो जाता है। अतः अंग्रेजी तथा रूसी भाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के असमान होने के कारण अनुवादक को उसके मूल आशय को व्यक्त करने के लिये अन्य अनुपूरक सूचनायें प्राप्त करनी होंगी।

हर भाषा के शब्दों के रूप भी अलग-अलग रीति से बनते हैं। जो शब्द अंग्रेजी में संज्ञा हैं वे अन्य किसी भाषा में क्रिया हो सकते हैं तथा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित करने की रीतियाँ भी हर भाषा की अलग-अलग होती हैं। अनुवादक के लिए रूप विज्ञान में भिन्नता के कारण दो मुख्य समस्यायें उत्पन्न होती हैं : (१) शब्द रूप (word classes) का अन्तर तथा (२) शब्द वर्ग (categories) का अन्तर।

शब्द वर्ग(word classes) **का अन्तर :** कुछ लोग यह मान कर चलते हैं कि सभी भाषाओं में संज्ञा, क्रिया, विशेषण, सम्बन्ध-वाचक और कृदन्त होते हैं। अनुवादक को यह जान कर आश्चर्य हो सकता है कि कुछ भाषाओं में कुछ अन्य भाषाओं के संज्ञा इत्यादि नहीं होते हैं और उनको व्यक्त करने के लिये उसे क्रियावाची शब्दों का निश्चय ही प्रयोग करना पड़ता है। मेज़ाटेक भाषा में 'love' संज्ञा के रूप में वर्तमान नहीं है। वहाँ 'love' क्रिया है। इसी प्रकार ताराहूमरा भाषाओं में 'लम्बा', 'छोटा', 'लाल', 'बुरा' शब्द विशेषण न होकर क्रियायें हैं। अतः यहां अनुवाद में ऐसे शब्दों की अभिव्यक्ति क्रियावाची शब्दों के माध्यम से ही होगी। यदि अनुवादक ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जो उस भाषा के ज्ञाता जानते हैं तो वे उसे पढ़ और समझ सकेंगे परन्तु यदि उन्हें अस्वाभाविक रूप से जोड़-जाड़ कर रख दिया जायेगा तो वे उसे उठाकर एक ओर रख देंगे। अनुवाद में निश्चय ही अर्थ का बोध होना चाहिए और यदि अनुवादक ने शब्द के स्थान पर शब्द ही रख दिया तो वह अनुवाद कतई समझ में नहीं आयेगा। अनुवाद में हमारा उद्देश्य यथासंभव मूल पाठ की भावना को व्यक्त करना होता है परन्तु शब्दों को इस प्रकार से इकट्ठा कर देने मात्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, जिसे पाठक समझ न सके। उदाहरणार्थ, यदि अंग्रेजी शब्द 'third reading' का हिन्दी में अनुवाद 'तीसरी बार पढ़ना' करेंगे तो पाठक को वह अटपटा लगेगा और वह उसका अर्थ समझ न पायेगा, क्योंकि संसदीय प्रणाली में 'reading' शब्द का एक विशेष अर्थ होता है 'वाचन'। अतः जब तक हम 'third reading' का अनुवाद 'तृतीय वाचन' न करेंगे तब तक हिन्दी का पाठक उसके आशय को समझने में असमर्थ रहेगा।

कुछ भाषाओं में सम्बन्ध वाचक शब्दों की कमी होने के कारण अनुवाद कार्य में बहुत कठिनाई होती है। ग्रीक, अंग्रेजी और हिन्दी में इनकी बहुलता है परन्तु अनेक अन्य भाषाओं में इनकी बहुत कमी है। उन भाषाओं में एक सम्बन्ध-वाचक शब्द का ही भिन्न-भिन्न अर्थ रहता है और उनमें पूरी तरह से परिशुद्धता नहीं रहती है। अनुवादक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि यदि वह अभिव्यक्ति के तरीकों को ढूँढने का प्रयास करे और वह उसको उन नवीन भाषायी ढाँचों में रखने का इच्छुक है तो किसी भी शब्द

तथा विषय का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है। प्रत्येक भाषा में साहित्यिक सौन्दर्य रहता है, अभिव्यक्ति के माध्यम का प्रश्न नहीं होता, वहां तो अनुवादक की योग्यता कसौटी पर होती है। अनुवादक की अनभिज्ञता ही बुरे अनुवाद के लिये उत्तरदायी होती है।

शब्द वर्ग (categories) **का अन्तर** : विविध भाषाओं के शब्दभेद (parts of speech), शब्दों के विशेष रूपों से कुछ प्रकार की विशिष्टताओं का बोध करा देते हैं। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी में संज्ञा से ही उसके वचन के बारे में ज्ञात हो जाता है कि वह शब्द एकवचन है या बहुवचन। इसी प्रकार से हिन्दी में भी प्रगट हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हम 'कुत्ता' कहेंगे तो उससे एकवचन का बोध होता है परन्तु 'कुत्ते' कहने पर उसके बहुवचन का बोध होता है। कुछ क्रियावाची शब्दों से भी कुछ सीमा तक एकवचन और बहुवचन के बीच भेद व्यक्त होता है। कतिपय विशेषणों और सर्वनामों से भी वचन के बारे में पता चल जाता है। जैसे 'वह' कहने से एकवचन का बोध होता है जब कि 'वे' कहने से बहुवचन का बोध होता है। इसी प्रकार से अंग्रेजी में 'He' और 'They' कहने से क्रमशः एकवचन और बहुवचन का बोध होता है। परन्तु कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो दोनों वचनों में समान रहते हैं जैसे अंग्रेजी का 'information' शब्द दोनों वचनों में समान रहता है जबकि हिन्दी में अनुवाद करने पर उसका एकवचन तो 'सूचना' होगा परन्तु बहुवचन बनाने पर वह 'सूचनायें' या 'सूचनाओं' हो जायेगा।

वचन प्रमुख रूप से दो ही होते हैं एकवचन और बहुवचन। परन्तु संस्कृत और लिथुयेनियन आदि कुछ भाषाओं में द्विवचन तथा कुछ अफ्रीकी भाषाओं में त्रिवचन का प्रयोग भी मिलता है। जबकि कुछ भाषाओं में, जैसे सामान्यतः चीनी भाषा में, केवल सन्दर्भ से ही पता चलता है कि शब्द एकवचन है या बहुवचन। ताराहूमरा भाषा में 'लड़का' और 'लड़कों' शब्द के लिए एक ही शब्द का प्रयोग किया जाता है। हाँ, यदि कोई 'अनेक लड़के'; 'कुछ लड़के' कहना चाहेगा तो उपयुक्त विशेषण जोड़ा जा सकता है। तथापि उस भाषा में संज्ञा में एकवचन तथा बहुवचन में कोई अन्तर नहीं किया जाता है।

वचन के भावों को व्यक्त करने के लिये प्रायः एकवचन के रूप में प्रत्यय लगाते हैं जैसे हिन्दी में 'ओं' या 'यों' आदि; अंग्रेजी में 's' या 'es' आदि। कभी-कभी अपवादस्वरूप स्वतंत्रशब्द भी जोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी में 'member' का बहुवचन 'members' और 'minister' का बहुवचन 'ministers' होता है परन्तु हिन्दी में 'सदस्य' का बहुवचन 'सदस्यों' तथा 'सदस्यगण' और 'मंत्री' का बहुवचन 'मंत्रियों' या 'मंत्रिगण' है। क्रिया में और भी कई प्रकार की पद्धतियों से वचन के भाव व्यक्त किये जाते हैं जैसे अंग्रेजी के 'is' और 'was' बहुवचन में 'are' और 'were' हो जाते हैं। इसी प्रकार से हिन्दी में भी 'है' और 'था' क्रमशः 'हैं' और 'थे' हो जाते हैं। कभी-कभी हिन्दी में आदर व्यक्त करने के लिये एकवचन के साथ क्रिया के बहुवचन रूप को रखना अनिवार्य हो जाता है जैसे 'मंत्री महोदय जा रहे थे।' यहां हम 'मंत्री-जा रहा था' नहीं कहेंगे यद्यपि अंग्रेजी में उसका एकवचन वाला रूप ही बना रहेगा। 'The hon'ble minister was going।' वहाँ 'was' के स्थान पर 'were' नहीं होता। अतः यदि कोई हिन्दी से अंग्रेजी में 'The hon'ble minister were going' अनुवाद करेगा तो वह बिल्कुल गलत होगा। किसी भाषा का मूल्यांकन इस बात से नहीं किया जाना चाहिये कि उसमे एकवचन और बहुवचन का अन्तर है या नहीं। दोनों ही प्रणालियों के समर्थक हैं। अनुवादक को तो उस भाषा का उसी सिद्धहस्तता से प्रयोग करना चाहिये ज़िस सिद्धहस्तता से उसके प्रयोक्ता करते हैं। यदि वह वैसा कर पाता है तो वह जो कुछ कहना चाहता है उसके लिये वह पद्धति पूर्ण समर्थ प्रतीत होगी।

काल : अंग्रेजी में क्रियावाची शब्दों का मुख्यतः काल के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। हिन्दी में काल के वर्तमान, भूत और भविष्य तीन भेद हैं और फिर इन कालों की क्रियाओं के पूर्णता, अपूर्णता तथा भाव या अर्थ आदि के आधार पर बहुत से उपभेद है। क्रिया में विभिन्न प्रकार के संबंध तत्त्व जोड़ कर ही काल के इन भेदों और उपभेदों की सूक्ष्मताओं को प्रगट करते हैं, इसमें अनेक प्रकार के संबंध तत्त्वों से काम लेना पड़ता है। हम केवल काल को ही व्यक्त नहीं करते हैं अपितु कार्य के स्वरूप को भी व्यक्त करते हैं। हम कहते हैं 'वह भागा' और 'वह भाग रहा था', पहले में तो भूतकाल में किसी

कार्य का संकेत है परन्तु उसकी अवधि का नहीं। हो सकता है वह दस कदम भागा हो और यह भी हो सकता है वह दो मील भागा हो। परन्तु भाषायी दृष्टि से वह समस्त प्रक्रिया एक कार्य के रूप में बताई गई है। दूसरे पद 'वह भाग रहा था' से यह संकेत मिलता है कि कार्य कुछ समय से हो रहा था। समय में अन्तर को अर्थात् वर्तमान, भूत, भविष्य, पूर्ण को हम काल कहते हैं जबकि क्रिया के स्वरूप के अन्तर को हम कार्य का स्वरूप (aspect) कह सकते हैं। कुछ भाषाओं में कार्य का स्वरूप मूलभूत बात होती है; काल गौण हो सकता है। उदाहरणार्थ, हम अंग्रेजी में हो रहे कार्य का न हो रहे(non-progressive) कार्य के साथ विभेद करते हैं। अन्य भाषाओं में अन्य विभेद किये जाते हैं। जैसे ताराहूमरा भाषा में क्रिया का पूर्ण रूप (completive form) चाहे जिस काल के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है चाहे वह भूत, वर्तमान या भविष्य के बारे में ही क्यों न हो। उस भाषा में बोलने वाला क्रिया को बदले बिना ही 'कल', 'आज' या 'परसों' जैसे शब्दों का प्रयोग कर सकता है। मुख्य बात तो यह है कि कार्य समाप्त हुआ या नहीं। कालसूचक (temporal) विषय तो गौण बात है।

कार्य के स्वरूप (aspect) संबंधी समस्याओं के कारण उत्पन्न हुई अनुवाद की जटिलताओं को सुलझाना कभी-कभी बहुत ही कठिन हो जाता है। काल के संबंध में यह कठिनाई नहीं है। तथापि हमें यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि विश्व की किन्हीं भी दो भाषाओं में समान स्थितियों में काल समान रूप से प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। अंग्रेजी का एक वाक्य है 'I will hit him, when I see him' इसमें 'when' शब्द भविष्यत् काल की ओर इंगित करता है परन्तु उसका रूप वर्तमान काल का है। ऐसे रूप तर्कसंगत भले ही न हों किन्तु ये भाषायी विशेषताओं को बतलाते हैं।

भाषाओं में प्रायः तीन पुरुष होते है प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष; किन्तु कुछ भाषायें ऐसी भी हैं जहाँ चतुर्थ पुरुष भी होता है। वहाँ इसके अभाव में अर्थ की स्पष्टता केवल चतुर्थ पुरुष से ही आती है। अलगों की भाषाओं में यह स्पष्टता केवल चतुर्थ पुरुष से ही आती है। इस भाषा में यदि यह वाक्य इसी रूप में कहा जाये कि 'मोहन ने बताया कि उसने उसे देखा' तो वहां

चतुर्थ पुरुष की व्यवस्था किये बिना इसके तीन अर्थ निकलेंगे : (१) किसी दूसरे ने मोहन को देखा, (२) मोहन ने उसे देखा और (३) किसी अन्य व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति को देखा।

कभी-कभी अनुवादक को प्रथम पुरुष बहुवचन में विभेद करने में अत्यधिक कठिनाई उपस्थित होती है। अंग्रेजी और हिन्दी में इसका प्रयोग बड़ा ही अस्पष्ट रहता है। 'हम' का आशय 'मैं' तथा मुझसे संबंधित सम्बद्ध व्यक्तियों परन्तु आप नहीं अथवा 'मैं और तुम' से हो सकता है। उदाहरणार्थ 'हमने यह किया' वाक्य का आशय यह हो सकता है कि 'मैंने और मेरे भाई ने यह किया और मैं इस बारे में आपसे कह रहा हूँ'। अथवा इसका आशय यह हो सकता है कि 'मैंने और आप ने यह किया'। पहले रूप को हम अपवर्जी (exclusive) 'प्रथम पुरुष कहते हैं क्योंकि उसमें श्रोता सम्मिलित नहीं है जब कि दूसरे को समावेशित (inclusive) प्रथम पुरुष कहा जाता है क्योंकि उसमें श्रोता भी सम्मिलित है।

पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन करना होता है। परन्तु यह बात संसार की सभी भाषाओं में नहीं पाई जाती है। एक ओर अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत आदि में यह है तो दूसरी ओर चीनी आदि भाषाओं में यह नहीं है। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन करने के लिये कभी तो कुछ स्वरों, व्यंजनों या अक्षरों के बदलने से काम चल जाता है जैसे हिन्दी में 'मैं जाऊँगा', 'तू जायेगा' और कभी-कभी विभक्ति परिवर्तन करना पड़ता है। अंग्रेजी में कभी तो एक ही रूप कई में काम देता है जैसे 'I go, you go, और कभी नये शब्द रख कर 'he is going, you are going, और कभी प्रत्यय जोड़ कर काम चलाते हैं जैसे 'I go', 'He goes'।

लिंग की दृष्टि से अनुवादक को एक बात पर ध्यान रखना आवश्यक है। लिंग दो हैं—स्त्रीलिंग और पुँल्लिग। बेजान चीजों को नपुंसक की श्रेणी में रख सकते हैं। परन्तु भाषा में यह स्पष्टता नहीं मिलती है। संस्कृत का ही उदाहरण लें। उसमें दारा—स्त्री, प्राकृतिक रूप से स्त्रीलिंग होते हुए भी पुँल्लिग शब्द है ; और कलत्र—स्त्री, प्राकृतिक रूप से स्त्रीलिंग होते हुए भी नपुंसक लिंग का शब्द है। हिन्दी में मक्खी, चींटी आदि सर्वदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं यद्यपि इनमें प्राकृतिक रूप से पुँल्लिग या पुरुष भी होते हैं। इस प्रकार से स्वाभाविक लिंग से

भाषा के लिंग का संबंध बहुत कम है जिस बात पर प्रत्येक अनुवादक को ध्यान रखना पड़ता है।

लिंग का भाव व्यक्त करने के लिये भाषा में मुख्य रूप से दो तरीके अपनाये जाते हैं (१) प्रत्यय जोड़कर जैसे बाघ से बाघिन, बकरा से बकरी। अंग्रेजी में भी ऐसे शब्द हैं जैसे 'prince' से 'princess', 'lion' से 'lioness' और (२) स्वतंत्र शब्द साथ में रखकर जैसे अंग्रेजी में 'he-goat' और 'she-goat'। ऐसा भी होता है कि एक लिंग में तो एक शब्द हो और दूसरे में उससे बिल्कुल भिन्न, जिसका पहले शब्द से कोई संबंध नहीं होता हो, जैसे अंग्रेजी में girl-boy, horse-mare, यद्यपि हिन्दी से अनुवाद करने पर केवल प्रत्यय लगाने से ही लिंग भेद स्पष्ट हो जाता है जैसे 'लड़का' से 'लड़की'; 'घोड़ा' से 'घोड़ी'।

ऐसा भी देखा जाता है कि कुछ भाषाओं में एक ही शब्द दोनों 'लिंग' का बोधक होता है, जैसे अंग्रेजी में 'Chairman', 'Member' इत्यादि, परन्तु इन शब्दों का हिन्दी अनुवाद करने पर हम को लिंग भेद करना आवश्यक हो जाता है जो अनुवादक सन्दर्भ को देखते हुए करता है। जैसे यदि 'Chairman' कोई महिला हुई तो अनुवादक उसका अनुवाद 'अध्यक्षा' करेगा, 'अध्यक्ष' नहीं। इसी प्रकार से 'Member' महिला होने की स्थिति में 'सदस्या' लिखेगा 'सदस्य' नहीं। कहीं-कहीं 'महिला सदस्य' भी लिखा जा सकता है।

इसी प्रकार से कुछ शब्द ऐसे हैं जो एक भाषा में तो पुंल्लिग के रूप में लिखे जाते हैं जबकि किसी अन्य भाषा में उनका रूप स्त्रीलिंग होता है। यदि अनुवादक इस बात का ध्यान न रख कर ज्यों-का-त्यों अनुवाद कर बैठेगा तो हो सकता है कि उस अनुवाद को पढ़ने वाले अनुवादक की बुद्धि पर हँस पड़ें। उदाहरणार्थ मृत्यु जर्मन भाषा में पुलिंग है, यदि उसका हिन्दी में अनुवाद करते समय उसे पुल्लिग मानकर चला गया तो वह हिन्दी की दृष्टि से उचित न होगा क्योंकि हिन्दी में वह स्त्रीलिंग है और उसी रूप में उसका व्यवहार होता है जैसे 'मृत्यु नृत्य करती है' यदि मृत्यु को हिन्दी में पुलिंग मानकर चला जायेगा तो उसमें 'मृत्यु नृत्य करता है' हो जायेगा, जो बहुत अटपटा तथा हिन्दी भाषा की दृष्टि से दोषपूर्ण होगा।

इसी प्रकार से ग्रीक भाषा में 'river' और 'star' पुँल्लिग माने जाते हैं जब कि स्लाव तथा कुछ अन्य भाषाओं में इनको स्त्रीलिंग माना जाता है और हिन्दी में भी 'नदी' और 'तारिका' के रूप में स्त्रीलिंग माना जाता है। 'star' शब्द का 'तारा' अनुवाद करने पर अवश्य ही वह पुँल्लिग हो जाता है। इस संबंध में मुख्य कठिनाई उस समय उपस्थित होती है जब किसी ऐसी कविता का अनुवाद करना हो जिसमें 'नदी' को राक्षस का प्रतीक और 'तारिका' को देवदूत का प्रतीक माना गया हो। उस दशा में हमें स्वयं शब्दों पर ध्यान न देकर उसमें व्यक्त भाव पर ही ध्यान रखते हुए अनुवाद करना होगा। और क्रमशः 'भयंकरता' और 'शांति तथा दया' का भाव प्रदर्शित करने वाले शब्दों का प्रयोग करते हुए ही अनुवाद करना होगा। अतः अनुवादक को अनुवाद के इस पक्ष पर भी ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है।

लिंग के अनुसार संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम तथा क्रिया के रूप बदलते हैं परन्तु यह बात सभी भाषाओं पर लागू नहीं होती है। अंग्रेजी के विशेषणों में लिंग के कारण प्रायः परिवर्तन नहीं होता है, जैसे 'good-girl', 'good-boy'। हिन्दी में कहीं तो परिवर्तन हो जाता है जैसे 'मोटा लड़का,' 'मोटी लड़की,' पर कहीं-कहीं यह परिवर्तन भी नहीं होता जैसे 'सुन्दर लड़का', 'सुन्दर लड़की'। सर्वनाम में हिन्दी में तो कोई परिवर्तन नहीं होता जैसे 'वह' शब्द दोनों का बोधक है परन्तु अंग्रेजी में 'he' 'she' हो जाता है। इस के विपरीत क्रिया में लिंग के आधार पर हिन्दी में परिवर्तन होता है जैसे 'लड़का जाता है,' 'लड़की जाती है,' परन्तु अंग्रेजी में 'The boy goes,' 'The girl goes', तथा संस्कृत आदि भाषाओं में यह परिवर्तन नहीं होता है।

इसी प्रकार की समस्यायें अनुवाद कार्य में वाच्य, क्रियाओं के प्रकार (mood), संबंध (possession), विशेषणों की तुलना (degrees of com-(parison), आदरसूचक शब्दों इत्यादि के संबध में उत्पन्न होती हैं। कुछ भाषाओं में कर्मवाच्य का बाहुल्य होता है तो किसी में कर्तृवाच्य का और किसी किसी भाषा में तो कर्मवाच्य होता ही नहीं है। वह केवल कर्तृवाच्य से ही काम चला लेते हैं। अनेक उदाहरणों में अनुवादक तो यह पता चलेगा कि दो विभिन्न भाषाओं में सकर्मक क्रियायें एक-सी नहीं होती हैं। एक भाषा में क्रिया का

कर्म (object) हो सकता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि दूसरी भाषा में भी वैसा ही हो। उदाहरणार्थ, पूर्वी अज़टेक भाषा में 'Our fore-fathers worshiped in this temple' का शब्दश: अनुवाद नहीं हो सकता क्योंकि उस भाषा में 'to worship' क्रिया सदैव सकर्मक है अर्थात् उसका कर्म (object) अवश्य ही होना चाहिए। अतएव, उसमें क्रिया के लिये कर्म (object) निश्चय ही रखा जाना चाहिये। अत: उसका अनुवाद होगा 'Our fore-fathers worshiped God in this temple.'

आदर की विभिन्न अवस्थाओं को इंगित करने वाली भाषायी पद्धतियाँ अत्यन्त ही जटिलतापूर्ण हैं। जापानी, कोरियाई या थाई भाषा में कुछ विभेद किये जाते हैं जो इस बात पर निर्भर होते हैं कि किससे अथवा किसके बारे में कहा जा रहा है। इनका विनिश्चय बहुधा उस व्यक्ति के धन, ऐश्वर्य, आयु, शिक्षा इत्यादि को ध्यान में रख कर किया जाता है जिस व्यक्ति से या जिसके बारे में कहा जा रहा हो। अंग्रेजी में 'You' शब्द उन सबके लिये प्रयुक्त किया जाता है जो चाहे हमसे बड़े हों अथवा छोटे या बराबर के, परन्तु हिन्दी में उन सब के लिये अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे आप, तू और तुम। अंग्रेजी में ईश्वर के लिये केवल 'Thou' शब्द का प्रयोग किया जाता है जब कि हिन्दी में हम उसे 'तू' और 'तुम' दोनों से ही संबोधित करते हैं जैसे 'तू बड़ा दयालु है,' 'तुम बड़े दयालु हो'।

वाक्य-रचना

वाक्य रचना का संबंध वाक्य में शब्दों के क्रम से होता है। दो भाषाओं की वाक्य-रचना अथवा वाक्य में शब्दों का क्रम एक-सा नहीं होता है। अत:, किसी भाषा से अनुवाद करते समय शब्द के स्थान पर शब्द रखा जायेगा तो वह अनुवाद न होकर अव्यवस्थावाद मात्र हो जायेगा। प्रत्येक शब्द रूप में ठीक हो सकता है परन्तु समस्त पद अर्थहीन होगा। अनुवाद के लिये सही शब्दों, सही रूपों के साथ-साथ भाषा में प्रयुक्त होने वाला मुहावरेदार सही क्रम भी होना चाहिए। वही भाषा की वाक्य रचना है। यथा अंग्रेजी के सामान्य वाक्य में पहले कर्त्ता, फिर क्रिया और बाद में कर्म रखा जाता है; किन्तु हिन्दी में

सामान्यतः पहले कर्त्ता, फिर कर्म और अन्त में क्रिया आती है जैसे अंग्रेजी में 'I drink water' है तो हिन्दी में 'मैं पानी पीता हूँ' है।

किसी अनुवादक के लिये स्वाभाविक शब्द-क्रम रखना अत्यंत कठिन है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय बहुत कुछ मूल पाठ के क्रम को रखने की बड़ी तीव्र प्रवृत्ति रहती है। ऐसा हम बहुत कुछ अनजाने में ही कर जाते हैं। अनेक बार अनुवादक को क्रम को ठीक करने का तरीका पता नहीं होता जिससे वह स्वाभाविक प्रतीत हो सके। अनुवादक वैकल्पिक क्रम सुझाने की स्थिति में निश्चय ही होना चाहिये जिसके लिये उसे मूल के अनेकों पृष्ठों का ही विश्लेषण करना चाहिये। वह सभी संभव शब्द-क्रमों की एक तालिका बनाना चाहेगा। उदाहरणार्थ, यदि उसे यह पता चले कि कर्त्ता, क्रिया और कर्म का क्रम सदैव एक-सा नहीं है; कुछ में वह कर्म, कर्त्ता, कर्म और क्रिया का हो और कुछ में, कर्म, कर्त्ता और क्रिया का हो तो उसे उस विभेद के कारण का पता लगाना चाहिये। यह हो सकता है कि यदि वह सर्वनाम हो तो वह कर्त्ता के बाद आये और यदि संज्ञा हो तो वह कर्त्ता के पूर्व आये। अनुवादक को इन क्रमों का पता लगा कर उनका प्रयोग करना चाहिये।

भाषा में सर्वनाम के समान अन्य कोई उपयोगी वर्ग नहीं है क्योंकि इनका अन्य शब्दों के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। सर्वनामों के बारे में दो बातें प्रमुख होती हैं: (१) वे शब्द जिनका स्थान वे लेते है तथा (२) वे वाक्य रचनायें जिनमें उनको बैठाया जाता है। जिस शब्द के स्थान पर सर्वनाम रखा जा सकता है उसे सर्वनाम का वर्ग-अर्थ (class meaning) कहा जा सकता है। जिन वाक्य रचनाओं में इन शब्दों के स्थान पर किसी सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है उन्हें स्थानापन्न (substitute type) कह सकते हैं। अन्य प्रकार के शब्दों के समान सर्वनामों का भी एक अर्थ क्षेत्र होता है। अंग्रेजी में 'she' शब्द केवल 'स्त्री' वाचक के लिये ही प्रयुक्त नहीं होता अपितु वह किसी देश, मोटर जलयान के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। कुछ अनुवादकों को यह भली भाँति ज्ञात होता है कि विभिन्न भाषाओं में सर्वनामों का विभिन्न अर्थ होता है अर्थात् वे विभिन्न शब्द-वर्गों के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। सर्वनामों के प्रयोग करने के तरीकों में विभिन्नता होने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों

का बहुत थोड़े अनुवादकों को पता होता है। वे यह मान कर चलते हैं कि अंग्रेजी या ग्रीक में जहां भी सर्वनाम का प्रयोग हुआ है, अनुवाद की भाषा में भी उसके स्थान पर सर्वनाम रखा जा सकता है। इससे अधिक गलत बात और कोई नहीं हो सकती है। अंग्रेजी और ग्रीक भाषाओं में एक बार संज्ञा का प्रयोग करने के बाद सामान्यतः सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। अनेक आदिम जातियों की (aboriginal) भाषाओं में ऐसा नहीं होता। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जब मूल पाठ के सर्वनामों को अनुवाद के समय संज्ञा में निश्चय ही बदलना होगा जिससे सही प्रयोग के अनुसार वाक्य-रचना हो सके।

कुछ भाषाओं में विशेषण जैसा शब्द भेद (part of speech) नहीं होता। 'अच्छा' के अर्थ में कोई शब्द क्रिया के रूप में हो सकता है परन्तु विशेषण के रूप में नहीं। विशेषण शब्दों के स्थान पर क्रियावाची शब्दों को रखने की आवश्यकता से अनुवाद का स्वरूप ही बहुत कुछ बदल सकता है। ग्रीक या अंग्रेजी के कुछ विशेषणों के अनुरूप अनुवाद की भाषा में कोई भी विशेषण नहीं होता है। उदाहरणार्थ पूर्वी अजटेक भाषा में 'faithless generation' को निश्चय ही 'ऐसे व्यक्ति जो विश्वास नहीं करते' के रूप में अनुवादित किया जायेगा। यदि अनुवादक अनुवाद की भाषा के प्रयोगों को ध्यान में रखे और अस्वाभाविक रूपों का प्रयोग करने का प्रयत्न न करे तो इन समस्याओं से उसे कोई कठिनाई न होगी।

अनुवादक को वाक्य के आशय को स्पष्ट करने की दृष्टि से पदों और वाक्य खण्डों (clauses) के कृत्रिम समुच्चय (combinations) से बचना चाहिए। ग्रीक वाक्य बहुत लम्बा हो सकता है। तथापि, अधिकांश भाषाओं में इतने लम्बे वाक्य नहीं होते। सामान्यतः ऐसी भाषाओं में संबंधवाचक शब्द रखकर दो तीन वाक्य खण्ड (clause) मिलाकर एक वाक्य बन जाता है। अनुवादक को शैली के इस पक्ष को ध्यान में रखते हुए अनुवाद करना चाहिये।

वाक्य रचना संबंधी मुख्य समस्या अनावश्यक रूप से उसकी लम्बाई की नहीं अपितु उसकी जटिलता की है। मूल भाषा का एक छोटा-सा वाक्य भी अत्यन्त जटिल हो सकता है और उसमें ऐसे पद हो सकते हैं जो अनुवाद की भाषा में एक वाक्य में ही सम्मिलित रूप से न रखे जा सकते हों। वाक्यों

को अनुवादक के अपने निर्वचन के अनुसार नहीं बदला जाना चाहिये। वाक्यों को केवल अनुवाद की भाषा के शब्द-कोश, शब्द-रूप और वाक्य-रचना को ध्यान में रखते हुए ही बदला जाना चाहिये। इन भाषाओं की व्याकरण संबंधी विशेषताओं के अनुसार कुछ समायोजन करने की आवश्यकता का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि उस पदावली का केवल सार (gist) ही दिया जाये। अनुवादक को यथासंभव संबंधित भाषाओं के भाषायी ढाँचों के अधिक से अधिक अनुरूप अनुवाद करना चाहिये।

शब्दकोश

हर भाषा के अपने-अपने विशिष्ट प्रयोग होते हैं जिनके पर्याय शब्दकोशों में नहीं मिलेंगे। मुहावरों आदि की समस्या इसी के अन्तर्गत आती है। अंग्रेजी में जब 'foot of the mountain' कहा जाये तो इसका अनुवाद 'पर्वत का चरण' न होकर 'पर्वत का आंचल' होना चाहिये, 'lip-sympathy' का अनुवाद 'ओष्ठ की सहानुभूति' न होकर केवल 'मौखिक सहानुभूति' अथवा 'दिखावटी सहानुभूति' ही किया जायेगा। इसी प्रकार से 'come to a pass shall not taste of death' आदि का शब्दकोश की दृष्टि से अनुवाद अच्छा नहीं लगेगा। वह हमारी भाषा के अनुकूल न होगा।

कुछ शब्दों का कुछ भाषाओं में एक विशिष्ट अर्थ हुआ करता है, जबकि कुछ अन्य भाषाओं में उसी शब्द का एक भिन्न ही अर्थ होता है। अनुवादक को इस पर अत्यन्त सावधानी से विचार करके ही अनुवाद करना चाहिये। उदाहरणार्थ अंग्रेजी का 'Billions' शब्द लीजिये। अंग्रेजी में इसका आशय दस खरब की संख्या से है परन्तु यदि कोई अनुवादक अमेरिका या फ्राँस की किसी पुस्तक से अनुवाद करेगा तो उसे उसका अनुवाद दस खरब न करके एक अरब करना होगा क्योंकि वहाँ उसका वही अर्थ होता है। इसी प्रकार से भारत में हम जिसे करेंसी नोट (currency note) कहते हैं अमेरिका में उसे बिल (Bill) कहा जाता है और जिसे भारत में बिल (Bill) कहते हैं उसे अमेरिका में चैक कहा जाता है। अतः जब तक अनुवादक को देश विशेष में प्रचलित इन शब्दों के इन विशिष्ट अर्थों का ज्ञान नही होगा तब तक अनुवाद करते समय अर्थ का अनर्थ

होने की बहुत संभावना रहेगी। अनुवादक को शब्दार्थों के इस पक्ष पर भी ध्यान देना अत्यावश्यक है।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जिनका एक संदर्भ में एक अर्थ होता है और दूसरे संदर्भ में कुछ भिन्न ही। जैसे अंग्रेजी का 'brother' शब्द है। यदि कोई श्रमिक किसी अन्य श्रमिक को एक ही वर्ग का होने के नाते 'brother' कहता है तो वास्तव में वह उसका भाई नहीं होता परन्तु वह ऐसा कह कर उससे भाईचारा प्रगट करना चाहता है। परन्तु यदि कोई यह कहे कि 'John is his elder brother' तो वहाँ उसका आशय सहोदर से होगा। अतः यदि अनुवादक श्रमिक के सम्बन्ध में इस 'सहोदर' शब्द का प्रयोग करे तो उसका वह प्रयोग गलत होगा जबकि दूसरे वाक्य के अनुवाद में वह सर्वथा उपयुक्त होगा। अतः भाई और सहोदर दोनों शब्दों का एक ही अर्थ होते हुए भी वे भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किये जाते हैं; 'सहोदर' का प्रयोग तो केवल वहीं किया जायेगा जहां माँ-जाये भाई से आशय होगा और 'भाई' शब्द का प्रयोग मां-जाये भाई के लिए भी हो सकता है और एक वर्ग विशेष के द्योतक के रूप में भी हो सकता है।

कुछ शब्द संस्कृति विशेष की देन होते हैं जिनका उस संस्कृति से संबंधित भाषाओं में ही प्रयोग किया जा सकता है। उससे भिन्न संस्कृति के भाषा-भाषियों के लिए उसका तब तक कोई अर्थ नहीं होगा जब तक उसका अनुवाद उनकी संस्कृति से मेल खाने वाले किसी शब्द में न किया जाये। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी का शब्द 'Gospel truth' है, यदि इसका अनुवाद हिन्दी में 'गोस्पल में वर्णित सत्य' किया जाये तो ईसाई धर्म से अनभिज्ञ व्यक्ति उसका कुछ भी अर्थ नहीं समझ सकेगा। यदि इसका ही अनुवाद हम 'वेद वाक्य' करें तो हिंदू धर्म का प्रत्येक अनुयायी उसका आशय भली प्रकार से समझ जायेगा। क्योंकि वह वेद में वर्णित सत्य के बारे में जानता है कि पश्चिम में जो स्थान 'गोस्पल' का है, वही भारत में वेद का स्थान है। अतः 'गोस्पल' के स्थान पर 'वेद' को रख कर उस भाव को पूर्णतः व्यक्त किया जा सकता है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका दूसरी भाषा में कोई पर्यायवाची शब्द नहीं होता और उनको ज्यों-का-त्यों ही रखना उचित रहता है और अनुवाद की भाषा के पाठक को उसका अर्थ समझाने के लिये उसे कोष्ठक में स्पष्ट कर

देना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, 'संन्यासी' शब्द का अंग्रेजी भाषा में उसके भाव के उपयुक्त कोई शब्द नहीं है। अत: उसको 'Sámnyasi' लिखकर ही काम चलाना होता है। हाँ, पाठकों को अर्थबोध कराने के लिए हम कोष्ठक में उसका अर्थ One who has renounced the world लिख सकते हैं।

कभी-कभी प्रसंग का पूर्ण ज्ञान न होने पर अनुवादक कठिनाई में पड़ जाता है और वह भारी गलती कर सकता है। कुछ भाषाओं में ऐसे शब्द होते हैं जिनका एक विशिष्ट प्रसंग में प्रयोग किये जाने पर उनके सामान्य अर्थ से बिल्कुल ही भिन्न अर्थ होता है। यदि अनुवादक को उस प्रसंग के बारे में पूर्ण ज्ञान न होगा तो वह चाहे कितना भी बड़ा भाषाविद् क्यों न हो, भारी भूल कर सकता है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी का एक शब्द 'Clerk' है जिसका बहुत ही सामान्य अर्थ है और उसको प्रत्येक अनुवादक समझता है। हिंदी में उसके लिये क्लर्क या लिपिक में से कोई-सा भी शब्द प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु इंग्लैंड में 'Clerk' एक ऐसे विशिष्ट व्यक्ति को भी कहा जाता है जो 'हाउस आफ कामन्स' का सर्वोच्च अधिकारी होता है। यदि कोई अनुवादक 'हाउस आफ कामन्स' की कार्यवाही का अनुवाद करते समय 'Clerk' का अनुवाद 'लिपिक' कर बैठे तो उससे अधिक भयंकर भूल नहीं हो सकती है। उसे इस बात का ध्यान रखना होगा कि वहां 'Clerk' शब्द एक साधारण लिपिक का बोधक नहीं है अपितु वह 'हाउस आफ कामन्स' का सर्वोच्च अधिकारी होता है जिसका वहां वही स्थान है जो भारत में लोक सभा या राज्य सभा के सचिव का।

यह बात निश्चित करने का कोई तरीका नहीं है कि किस अलंकार का अनुवाद भी भाषा में शब्दश: किया जा सकता है और किसका नहीं, उदाहरणार्थ यदि अंग्रेजी के 'Be wise as an owl' का हिंदी अनुवाद 'उल्लू के सामान् बुद्धिमान बनो' करें तो वह बहुत ही अटपटा होगा और उसका अर्थ हिंदी की दृष्टि से गलत होगा क्योंकि अग्रेजी में 'उल्लू' मूर्ख के साथ-साथ 'बुद्धिमान्' का भी द्योतक है जबकि हिंदी में उस शब्द का केवल मूर्ख के ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है अनुवादक को शब्दों के पीछे आँख मूँदकर नहीं पड़ना चाहिए, अपितु उसे उनके समा-

नार्थक शब्दों की सावधानी से खोज करनी चाहिए। यदि संसद् में कोई सदस्य हिंदी शब्द 'साला' का अपशब्द के रूप में प्रयोग करे तो वह शब्द संसदीय शिष्टाचार के विरुद्ध होगा। परन्तु यदि कोई अनुवादक उसका अंग्रेजी में brother-in-law अनुवाद कर बैठे तो उससे वह अर्थ बोध समाप्त हो जाता है जो हिंदी के शब्द 'साला' से होता है। ऐसी दशा में वह संसदीय शिष्टाचार के विरुद्ध शब्द न रह जायेगा और फिर उसका कोई अर्थ नहीं रहेगा। उस दशा में अनुवादक को उसका अंग्रेजी में अनुवाद न करके 'साला' शब्द का ही अंग्रेजी में प्रयोग करना चाहिए और हाशिये (margin) पर उसके बारे में टिप्पण लिख कर यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस शब्द का प्रयोग यहाँ पर अपशब्द (abuse) के रूप में हुआ है। इसी प्रकार से अंग्रेजी में यदि 'क्विजलिंग' कहा जाये तो उसका भी परिस्थिति के अनुसार अनुवाद किया जा सकता है और न भी किया जा सकता है। यदि अंग्रेजी नाटक में कोई पात्र किसी को 'क्विजलिंग' शब्द से सम्बोधित कर रहा हो तो वहां तो हमें 'क्विजलिंग' शब्द ही रखना होगा क्योंकि वह नाटक के देशकाल की दृष्टि से उपयुक्त होगा और बाद में टिप्पणी में उसका अर्थ 'देशद्रोही' लिखा जा सकता है। परन्तु इतिहास की किसी पुस्तक का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करते समय हम 'क्विजलिंग के स्थान पर 'जयचन्द' लिख सकते हैं जिस शब्द का अर्थ भी देशद्रोही है। उस दशा में हिंदी का पाठक तत्काल यह समझ जायेगा कि यहां लेखक का आशय देशद्रोही से है।

कभी-कभी आलंकारिक भाषा का अनुवाद करने के बाद अनुवाद की भाषा में वह अलंकारिकता नहीं रह पाती है। ऐसी दशा में हमें मूल भाषा के शब्दों को, विशेष रूप से अनुप्रास की दशा में ज्यों का त्यों रखकर उसके साथ ही साथ कोष्ठकों में अनुवाद की भाषा में उन शब्दों का अर्थ दे देना चाहिए। उदाहरणार्थ, कोई वक्ता अंग्रेजी में कहता है They are liars, cold-blooded liars, they suppress live evidence without a prick of conscience तो दूसरा श्रोता उसको समझने की कोशिश करते हुए पूछ बैठता है lawyers or liars क्योंकि वकील के बारे में भी यह बात सच हो सकती है। ऐसी दशा में यदि 'lawyers and liars' का शब्दशः

अनुवाद किया जायेगा तो अनुप्रास की वह छटा समाप्त हो जायेगी जो अंग्रेजी के शब्दों में है और हमारा अनुवाद 'वकील या झूठे व्यक्ति' होगा। इसलिए ऐसे स्थलों पर हमें उन्हीं शब्दों का लिप्यंतरण करते हुए साथ में कोष्ठकों में अनुवाद की भाषा में उसका अर्थ देकर कार्य चला लेना चाहिए जिससे भाषा का सौंदर्य भी नष्ट न हो और पाठक अर्थ भी समझ जावे।

अनुवाद : एक कला

—तीर्थ बसन्त

हमारे देश में अनुवाद की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है। यहाँ किसी समय तक्षशिला व नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय तो अवश्य थे किन्तु रोम और बग़दाद की भाँति ऐसा कोई केन्द्र न था जहाँ विदेशी भाषाओं में रचित ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थों का भाषान्तर किया जाता हो। हमने साहित्यकारों को तो जन्म दिया किन्तु अनुवादक पैदा न कर सके। संभवतः इसी कारण यह देश संसार में व्याप्त ज्ञान-विज्ञान एवं कलाओं से वंचित रहकर हठयोगी की नाईं केवल आत्म-दर्शन में ही लीन रहा।

सृजनात्मक साहित्य में और अनुवाद में अन्तर है भी और नहीं भी। सृजनशील लेखक अपने भाषा-चातुर्य से यथार्थ का अनुकरण करता है। उसे अपने जीवन में संसार से जो अनुभव प्राप्त होता है, उसको अपनी कला के माध्यम से अपनी भाषा में प्रस्तुत करता है और अनुवादक उसी अनुकृति का अनुकरण करता है। दोनों ही नकल करते हैं, परन्तु एक अपने भावों को भाषा में उतारता है और दूसरा अपने मन में किसी दूसरे के भावों की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न भावों का तर्जुमा करता है। जिस प्रकार नरगिस का फूल सरोवर में अपनी प्रतिच्छाया देखकर प्रफुल्लित होता है, इसी प्रकार अनुवादक भी अपने व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया को दूसरे की कला में पाकर अनुवाद करने को विवश हो उठता है। उसकी कला स्वयं प्रकाशित होते हुए भी किसी ऐसे व्यक्तित्व पर निर्भर करती है, जिसने उसके सुप्त भावों को जागृत किया है। ऐसा करते हुए उसे कुछ मुख्य बातों पर सोचना पड़ता है। यथा, अनुवाद सत्यनिष्ठ किया जाए अथवा स्वच्छन्द? अनुवाद ऐसा हो जो अनुवाद ही लगे या मौलिक रचना प्रतीत हो? अनुवाद की शैली मूल लेखक की शैली हो अथवा अनुवादक की?

अनुवाद में मूल के देशकाल एवं वातावरण को रखा जाए या अनुवादक के देशकाल एवं वातावरण को ? अनुवाद में आवश्यकतानुसार कुछ संशोधन एवं परिवर्तन किया जाए अथवा उसमें एक शब्द भी घटाया या बढ़ाया न जाए ? पद्य का अनुवाद पद्य में ही किया जाय या गद्य में ? मोटे तौर पर इन सभी समस्याओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है। अनुवादक मूल से सट कर चले या यथा-आवश्यक हट कर चले। यदि हम यह मान कर चलें कि अनुवादक मूल रचना से पाबन्द रहे तो उस रचना के समानार्थक शब्द तथा उनके उच्चारण के लिए समध्वनि की प्रक्रिया को ढूँढना पड़ेगा। हर भाषा में अनेक मुहावरों, कहावतों एवं खास शब्दों में सूक्ष्म अर्थ-भेद है जो समाज और देश की उपज है। किसी भी भाषा के दो पर्यायवाची शब्द एक ही अर्थ के द्योतक नहीं होते और शब्द-कोश में दिए गए समानार्थी शब्दों की बुनियाद में कोई सूक्ष्म भेद अवश्य होता है, जिसका ज्ञान अनुभव द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। पर समानार्थी शब्द में परिवर्तन करना सरल नहीं है। इसके अतिरिक्त हर भाषा में ऐसे अनेक विशिष्ट शब्द होते हैं, जिनके समानार्थक शब्द भाषा में उपलब्ध नहीं होते। उदाहरणार्थ—'माया' और 'लीला' शब्द जो इस भूमिखण्ड में प्रचलित हैं, उनके लिए दूसरी किसी भाषा में समानार्थी शब्द उपलब्ध नहीं हैं। 'कर्म' जो मनुष्य की आत्मा पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव छोड़ता है, उसके लिए भी दूसरी भाषाओं में एक शब्द मिलना कठिन है। 'ग़ैरत'[1] और 'इज़्ज़त' जो हमारे यहाँ आम शब्द हैं, उनके लिए भी अंग्रेजी में ऐसे शब्द नहीं मिलते जो इनके निश्चित अर्थ दे सकें। अंग्रेजी का gentleman (जेण्टलमैन) और honour (ऑनर) भी इसी प्रकार के शब्द हैं। इसका कारण यह है कि काल-परिवर्तन से शब्दों के साथ कुछ परम्परागत अर्थ जुड़ जाते हैं। अतः भिन्न संस्कृति वाले समाज की भाषा में इनके समानार्थक शब्द नहीं मिलते। कुछ शब्दों की तो ध्वनियों में ही उनका अर्थ निहित रहता है। अतः एक साथ उसी ध्वनि वाले और उसी अर्थ वाले शब्द दूसरी भाषा में पाना कठिन है। कविता में तो ऐसे शब्दों का विशेष महत्त्व होता है। उदाहरणार्थ—होरेस की 'ला-ला-गी',

---

१. सिंधी भाषा में।

जिसकी सरल भोली बड़-बड़ पर वह इतना मुग्ध है कि सुखमय जीवन का आनन्द त्याग कर उसके साथ मरुभूमि में रहना भी पसन्द करता है। उसकी 'ला-ला' में जो कर्ण-प्रिय बड़-बड़ और झक-झक का अर्थ निहित है, वह स्थानीय भाषाओं के 'ला-ला' शब्द में नहीं है। अगर कोई 'ला-ला' का अर्थ अलग से देगा तो शेष 'गी' रह जाएगा, जो अर्थहीन है। लीजिए, एक दूसरा उदाहरण—

"जेहड़ा गुल गुलाब जा तहिड़ा मथिनि वेस
चोटा तेल चम्बेलिया हा हा हू हमेश"[1]

'हा-हा-हू हमेश' हार्दिक उल्लास की अभिव्यक्ति है, जो शायद हिन्दी में तो उसी प्रभाव को सम्प्रेषित कर सके, क्योंकि हिन्दी और सिन्धी एक ही देश की भाषाएँ हैं, पर अंग्रेजी में इसका उल्था क्या होगा, कहना कठिन है। वैसे भी किसी शब्द का कोई निजी अर्थ नहीं होता। शब्दों के साथ जो अर्थ जुड़े हैं, उनका सम्बन्ध किसी विशेष समय व समाज से है। इसलिए प्रायः शब्द भिन्न समय एवं वातावरण में वही अर्थ नहीं रखते। यदि कोई अनुवादक होमर के 'इलियड' का अनुवाद होमर-युगीन भाषा में करेगा तो वह अनुवाद वर्तमान युग के पाठकों की समझ में नहीं आएगा। भाषा सदा बदलती रहती है, जिससे पुरातन शब्द युगानुकूल नहीं रहते। हर देश की भाषा के वाक्य-खण्ड, मुहावरे और कहावतें निराली होती हैं, जिनके शाब्दिक अनुवाद करने से रचना हास्यास्पद हो जाती है। एक साधारण रचना का तो शाब्दिक अनुवाद सम्भवतः ठीक हो सकता है पर उच्चस्तरीय रचना के लिए शब्दानुवाद व्यवहार्य नहीं। यह इसलिये है कि कोई भी दो भाषाएँ बिल्कुल एक जैसी नहीं हैं, जो समानार्थक शब्दों द्वारा परस्पर आदान-प्रदान कर सकें। तथापि शाब्दिक अनुवाद के अभिलाषी मूल रचना के हर शब्द को कुरान की आयत समझते हैं, जिसके साथ छेड़-खानी करना कुफ्र के समान है। उनका कहना है कि मूल रचना में यदि कहीं अस्पष्ट चिन्तन, विचार की दुरूहता, अप्रिय विवरण अथवा अनावश्यक पुनरुक्ति दिखाई दे, तो उसे भी बिल्कुल मूल रूप में ले लेना चाहिये। भूलों का सुधार करना या दुरूहता निकाल कर स्पष्ट शैली में लिखना अनुवादक का कार्य नहीं। उसका

---

१ सिन्धी कविता का एक अंश।

कर्त्तव्य है, जो वस्तु जैसी है, उसे उसी रूप में प्रस्तुत करे। 'कार्डिनल', 'न्यूमन' और 'जॉनसन' का परामर्श है कि आप रचना को सुधारने या मूल ग्रन्थकार से आगे बढ़ने का प्रयास न करें, क्योंकि इस प्रकार आप केवल अनुवाद को ही सुधार सकते हैं, मूल रचना वैसी की वैसी रहेगी। निस्सन्देह शब्दानुवाद की अपनी महत्ता है, क्योंकि समानार्थक शब्दों के अभाव मे अनुवाद अनुवाद नहीं रहेगा। पर मूल-उद्देश्य की अवहेलना कर, मात्र शब्दानुवाद पर अड़ जाना ठीक नहीं है, अन्यथा मूल-ग्रन्थ के साथ बेवफाई होगी। यह स्मरण रहे कि यदि संस्कृति और सभ्यता तथा बोल-चाल का तरीका वही नहीं है, तो अनुवाद भी बिल्कुल मूल के अनुरूप नही होगा।

शेष रहा विचार का प्रश्न। यहाँ पर विचार से अभिप्राय 'सार देना' नहीं है। जिस प्रकार अनार का रस अनार नहीं है, इसी तरह मात्र 'सार देना' अनुवाद नहीं। अनार में दूसरे भी अनेक गुण और विशेषताएँ हैं, जो रस में नहीं हैं, जिस तरह गरमी आग से पृथक् नहीं की जा सकती, उसी तरह विचार को भी शब्द से अलग नहीं किया जा सकता। किन्तु कोई भी भाषा पूरे विचार को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है। प्रकृति की भाँति भाषा भी विचार की अन्तरात्मा का अपूर्ण प्रकाश है। परन्तु इसके बिना और कोई चारा भी तो नहीं। शब्द विचार का अनुवाद है पर कविता या उत्तम साहित्य में शब्द के अर्थ से अभिप्राय क्या है, जो उसका समानार्थी शब्द दिया जाये ? साहित्यिक शब्दों में साधारण शब्दों की अपेक्षा अधिक अर्थ-गाम्भीर्य होता है। यह अर्थ विशिष्ट वाक्य-विन्यास, छन्द-कौशल, ऐतिहासिक ज्ञान व व्यक्तिगत अनुभव के कारण उनके साथ लगाया जाता है। ऐसी रचना में कुछ बारीकियाँ एवं सूक्ष्म भाव-छायाएँ भी होती हैं, जो स्वयं शब्दों से प्रगट नही होतीं, परन्तु शब्दों के विशिष्ट क्रम एवं उनमें स्वर लहरी उत्पन्न करने से अनावृत हो जाती है। शब्दों की इन सूक्ष्मताओं को पकड़ने की और वाक्यों में लाक्षणिकता लाने की योग्यता जिस व्यक्ति में नहीं, वह उत्कृष्ट कोटि का कवि नही बन सकता। काव्य-सृजन केवल शब्दों से नहीं होता, वरन् शब्द-प्रकम्पन एवं अर्ध-चेतन स्मृतियों का संयोजन ही काव्य का निर्माण करता है। अन्यथा गद्य और पद्य में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। निस्सन्देह कविता की सर्जना ९० प्रतिशत गद्य जैसी है। इसलिये कविता की भाषा, भाषा

में भाषा है। उदाहरणार्थ, शेक्सपीयर के शब्दों में, 'नव जागृति के दौर की धड़कन स्वयं शब्दों में नहीं है परन्तु अप्रकट रूप से उनके पीछे आभासित है जैसे झीने रेशमी आवरण में किसी रूपवती का मुखड़ा'। शेक्सपीअर की रचनाओं में उस युग में व्याप्त पराक्रम एवं विजय की भावना तथा नव-संसार के प्रति जिज्ञासा-वृत्ति परिलक्षित है। जिसको इस बात का ज्ञान नहीं है वह उसकी भाषा का रस नहीं ले सकेगा। कविता में कभी-कभी ऐसे शब्दों का भी प्रयोग होता है, जिसमें देखने तथा सुनने दोनों की प्रक्रिया समाई होती है, हालाँकि कान और आँख दो पृथक्-पृथक् इन्द्रियाँ हैं। ऐसे समानार्थक शब्द कहाँ से लाये जाएँ, जिनका दुहरा प्रभाव हो? वैसे भी मन की सनक और तरंग की तथा सूक्ष्म भाव और विचार की, जो वायु के झोंके की भाँति सदा बदलते रहते हैं, अभिव्यक्ति सरल नहीं और ऐसी अभिव्यक्ति का समानार्थक भाषान्तर तो लगभग असम्भव है। इनके अतिरिक्त साहित्य में कुछ ऐसे वाक्य होते हैं, जिनका भाषान्तरण कठिन है, बल्कि कुछ का तो अर्थ लगाना ही कठिन है। उदाहरणार्थ, ग्रे के शोक-गीत (Elogy)

"All the air Solemen stillness holds
And leaves the world to darkness and to me"

—Grey

में 'air' कर्त्ता है या 'stillness'? दोनों में से कर्म कौनसा है? इसके अतिरिक्त भारतीय भाषाओं में परोक्ष-कथन का प्रचलन नहीं है। यदि अनुवादक इस शैली को अपनाएगा तो पढ़ने में अस्वाभाविक लगेगा। इसलिए नितान्त यथा-तथ्यता का आग्रह कर, हर विचार के लिए समानार्थी शब्दों में अनुवाद करना मूर्खता है, क्योंकि हर जाति के विचारने का ढंग अलग है और उसके शब्दों की जन्मपत्री और जीवनी भी निराली है। तो भी यदि कोई पंडित ऐसा अनुवाद करेगा तो उसका अनुवाद कृत्रिम, अनावश्यक पाण्डित्यपूर्ण, बेहूदा, बेजान और कड़वा लगेगा और उसका प्रयोजन समान होते हुए भी, उसका रस और रहस्य समाप्त हो जायेगा। यह कठिनाई इसलिए होती है, क्योंकि ऐतिहासिक सत्य और साहित्यिक सत्य में अन्तर होता है। ऐतिहासिक सत्य तथ्यात्मक होता है, परन्तु सौंदर्यात्मक सत्य अनुभूति-जन्य है। निस्सन्देह ऐसे अनुभूत ज्ञान में तथ्य भी शामिल

है, किन्तु उसमें कुछ और भी है जिसे अन्तर्बोध कहा जाये तो अनुचित न होगा ।

"कभी है हकीकत मुन्तज़िर नज़र लिबासे मजाज़ में,
कि लाखों सजदे तड़प रहे मेरे जबीने न्याज़ में ।"

इस अदृश्य सत्य को प्रत्यक्ष करना ही सौन्दर्य-कला का मूल-भूत प्रयोजन है। इसके अतिरिक्त किसी उच्चकोटि के साहित्यकार की कला और शिल्प, औचित्य और उपयुक्तता, सचेतता और संवेदनशीलता से सौन्दर्य को अनुवाद की भाषा में पुनः जीवित करने के लिए दुगुने त्याग की अपेक्षा है । उसे न केवल अपने व्यक्तित्व को मिटा कर मूल ग्रंथकार के व्यक्तित्व के अधीन बनना होता है, अपितु अपनी चेतना को ऐसे प्रयोग में लाना होता है, जिससे उसके द्वारा मूल-ग्रन्थकार की अनुभूति प्रत्यक्ष हो जाये । उसे रचना की वस्तु एवं शैली का निर्वाह करना होता है । संसार-साहित्य में केवल एक ही ऐसा अनुवाद है, जिसमें ये गुण विद्यमान हैं, और वह है बाइबल का अनुवाद । लेकिन बाइबल के अनुवाद की अनूपता का कारण स्वयं अंग्रेजी भाषा के उस अनुवाद के बाद का विकास है, जो बहुत कुछ उसके साये के नीचे पला-पनपा है । दूसरी रचना जिसने संसार में प्रसिद्धि प्राप्त की है, वह है फिट्ज़-जेराल्ड का अनुवाद । परन्तु ये रुबाइयात सही मानों में अनुवाद नहीं । यह अनुवाद मौलिक रचना की हैसियत रखता है । यदि अनुवाद मूल ग्रन्थकार की भाव-भूमि तक पहुँचना चाहता है तो उसे मूल लेखक की मानसिक स्थिति में उतरना होगा । वह रचना-क्षण आरकेस्टरा के उस आरम्भिक क्षण के समान होता है, जब साज़ बजने लगते हैं तथा धीरे-धीरे विभिन्न साज़ों से समध्वनित संगीत झंकृत हो उठता है । जब अनुवाद-कला सृजनात्मक कला का पद प्राप्त करना चाहती है तो अनुवादक को उस तरल क्षण को अपनी कल्पना में संजोने की क्षमता पैदा करनी चाहिए । वस्तुतः यह कठिन कार्य है और शायद ही कोई इस दिशा में फलीभूत होता है । यही कारण है कि उच्च कृतियों की तुलना में उच्च अनुवाद कम होते हैं । इसके अतिरिक्त हर भाषा की कुछ विशेषताएँ होती हैं और हर भाषा में स्वभावतः अनेक शैलियों का सम्मिश्रण रहता है । वास्तव में हर लेखक समय एवं विषय के अनुसार अलग-अलग शैलियों का प्रयोग

करता है। काव्य रचना के समय उसकी शैली वही नहीं रहती, जो तर्क-संगत भाषण देते समय या वक्तृतापूर्ण उपदेश देते समय वह प्रयोग करता है। परिहासपूर्ण कथोपकथन और मधुर व्यंग्य का तन्तुविन्यास तत्त्व-ज्ञानी के तन्तुविन्यास से भिन्न होता है। यदि अनुवादक हर प्रकार की शैली में निपुण नहीं है तो सफलता नहीं मिलती। परन्तु यह बाह्य कठिनाई है, जिसका समाधान सतत प्रयत्न एवं प्रयास से हो सकता है, किन्तु उपरोक्त मानसिक कठिनाई ऐसी है कि कोई बिरला अनुवादक ही मूल कृतिकार की भाँति अमर होता है।

जब हम इन कठिनाइयों पर विचार करेंगे तो अधिक-से-अधिक काम-चलाऊ अनुवाद का साहस कर सकते हैं और कलात्मक अनुवाद को असम्भव मानकर छोड़ देंगे। परन्तु हर बाधा एक प्रकार की चुनौती है, जो साहसी पुरुष को ललकारती है। निस्सन्देह इससे पूर्व 'होरेस', 'सिसिरो', 'ड्राइडेन', 'पोप', 'शेली', 'गेटे', और 'बोदलेयर' जैसे सृजनशील कलाकारों ने ऐसा प्रयत्न किया है और अवश्य ही बाद में भी ऐसे कलाकार जन्म लेंगे, जो उच्च-कोटि के अनुवाद करेंगे। अच्छे अनुवादक में एक विशेष प्रकार की मनःस्थिति की आवश्यकता होती है, जो उसे हम-तबअ और हम-ख़याल रूह की तरजुमानी के लिए आमादा करे। हर अनुवादक को एक ऐसे रचनाकार की तलाश होती है, जिसके विचार एवं अनुभूतियाँ अनुवादक के ही विचार और अनुभूतियाँ हों तथा जिसकी कृति अनुवादक के ही भावों का मूर्त-रूप हो। यह स्वयं को खोकर स्वयं को पाने के समान है। जिस समय उसके मन में ऐसी अनुभूति है कि वह दूसरे की कला को अपनी ही अनुभूति का माध्यम बनाएं, उस समय शाब्दिक और स्वतन्त्र अनुवाद तथा इनके बीच सन्तुलन बनाए रखने की समस्याएँ अमूर्त हो जाती हैं। उस समय वह शब्दजाल में न उलझ कर शब्दों की आत्मा तक पहुँचने का प्रयास करता है तथा रूढ़िगत अनुरूपता की उपेक्षा कर आन्तरिक अनुरूपता को खोजता है। वह ऐसा ढांचा बनाना चाहता है, जिससे दूसरे व्यक्ति की कृति अपनी रचना प्रतीत हो। इस लिए मूल लेखक के साथ वफ़ादारी तथा रचना के साथ पाबन्दी कलात्मक अनुवाद की विशेषता नहीं है। वास्तविक अनुवाद क्या है और क्या नहीं है, का प्रश्न ही गलत है, क्योंकि स्वयं 'वास्तव' की वास्तविकता के सम्बन्ध में भिन्न विचार हो सकते हैं। यदि अनुवाद का

प्रयोजन काम-चलाऊ अनुवाद है तो वह प्रेस फ़ोटो की भान्ति मूल-निष्ठ होना चाहिए। परन्तु यदि फ़ोटो खींचने की अपेक्षा एक दृश्य चित्रित करना है, तो चित्रकार अवश्य ही उस दृश्य का कोई अंग निकाल देगा और उसके स्थान पर कुछ काल्पनिक तत्त्वों को समाहित कर देगा, ताकि वह दृश्य अधिक सुन्दर हो जाए। किन्तु एक कुशल अनुवादक इन दोनों से भिन्न पद्धति का अनुसरण करता है। वह रचनात्मक फ़ोटोग्राफ़र की भाँति दृश्य में न तो कुछ जोड़ता है और न उसमें से कुछ निकालता है। वह केवल अपने विचार के फ़ोकस को इस तरह से स्थिर करता है कि उसमें एक वैशिष्ट्य आ जाता है। प्रकाश और छाया के हल्के और गहरे संयोजन द्वारा वह एक विशिष्ट प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। वह चाहता है कि मूल की चेतना से उसके अन्तर में जो एक आकर्षण पैदा हुआ है, उसकी प्रतिच्छाया उसके अनुवाद में प्रतिबिम्बित हो। जिस अनुवाद में उस आकर्षण का प्रतिबिम्ब नहीं होगा, वह अनुवाद निर्जीव और बेजान हो जायेगा तथा उसमें कलाकार का कौशल भी लुप्त हो जायेगा। अतः अनुवाद की विशेषता न तो उसकी सत्यनिष्ठा में है और न ही उसके अनुकूलन में। निःसंदेह ड्राइंगरूम में रखे निर्जीव गीध की अपेक्षा जीवित गौरैया ज्यादा आकर्षक है।

यदि उपरोक्त कथन में कुछ सत्य का अंश है तो शेक्सपीयर की रचनाओं को अपने देश काल के वातावरण के अनुकूल प्रस्तुत करने में कोई बुराई नहीं दीखती। उदाहरणार्थ शेक्सपीयर के कुछ मराठी अनुवादों में अंग्रेजी मुहावरे को महत्त्व नहीं दिया गया है और वे अनुवाद मराठी वातावरण के अनुकूल होते हुए भी मूलगामी हैं। इन अनुवादों का उद्देश्य मूल के उस वातावरण, जीवन की उस प्रतिच्छाया को प्रतिबिम्बित करना है, जिसके साथ मराठी पाठकों का पूर्व-परिचय है। इसी प्रकार सफोकियस और मोलियर के कुछ कन्नड़ भाषा के अनुवादों में पात्रों के नामों का देशीकरण किया गया है तथा कथोपकथन को इस प्रकार तोड़ा-मरोड़ा गया है कि उसकी अभिव्यक्ति कन्नड़ भाषी लोगों के लिये एकदम स्वाभाविक एवं बोधगम्य हो गई है। उन्होंने 'प्लाट' को उसी रूप में रखा है, केवल भाषा को बदला है। इस प्रकार उन्होंने समानता के स्थान पर स्वाभाविकता को

तरजीह दी है और मूल लेखक के उद्देश्य के साथ वफादारी का निर्वाह किया है। परन्तु बंगालियों ने अंग्रेजी मुहावरे को कायम रखा है क्योंकि उनका कुछ ऐसा विश्वास है कि अनुवाद एक सुन्दर रमणी के समान है जो यदि आकर्षक है तो सत्यनिष्ठ नहीं और यदि सत्यनिष्ठ है तो सुन्दर नहीं। किन्तु ऐसा विश्वास न तो स्त्री जाति के साथ न्याय करता है और न ही वफादारी के साथ वफादारी करता है। वफादारी आन्तरिक गुण है, दिखावा या तिलसिम नहीं।

हमें यह समझना चाहिये कि जो व्यक्ति रचना के मूल उद्देश्य को पूर्ण निष्ठा के साथ अपने हृदय में रखता है, वह कम वफादार नहीं है। यदि मूल ग्रन्थ के साहित्यिक-सौंदर्य, कवित्व-कल्पना, नाटकीय प्रभाव को कायम रखना है, तो अनुवादक के लिये यह आवश्यक है कि वह ऐसी शैली का अनुसरण करे जिससे लगे कि स्वयं लेखक अनुवाद की भाषा में लिख रहा है। इस प्रकार अनुवाद न केवल देशकाल के अनुकूल होगा अपितु उसमें मूल रचना का कलासौंदर्य भी बना रहेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि इसके लिए पिंगल का कौशल, शब्दचित्रण अथवा रूपकों एवं उपमानों की बौछार इतनी कारगर नहीं जितनी यथातथ्यता को कौशल के साथ उतारने में है। अन्यथा सफलता कम और दिमागखोरी अधिक होगी। अच्छे अनुवादक को जानना चाहिये कि मात्र तथ्यात्मकता की अपेक्षा स्वाभाविकता कई गुना बेहतर है और ऐसी स्वाभाविकता में पूर्णता तभी प्राप्त होगी जबकि अनुवादक में दो-भाषाई योग्यता और विषय के गहन अध्ययन के अतिरिक्त उभय देशों के इतिहास, सभ्यता, रीति-रिवाज और बोल-चाल से परिचय होगा ? कुशल अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह रचनाकार व उसकी रचना के साथ अपने व्यक्तित्व में सहभाव उत्पन्न करे और इस प्रकार की कुशल अभिव्यक्ति को जन्म दे जो मूल के समान प्रतीत हो । ऐसे कार्य के लिए असीम उत्साह, अध्यवसाय, एवं कौशल की आवश्यकता है जिससे वह मूल रचना को अनुवादी लिबास में पुर्नजन्म दे सके।

यह काम तभी सम्पन्न हो सकता है, जब अनुवादक अपने आप से प्रश्न करेगा कि लेखक क्या कहता है, कैसे कहता है और उसके अन्तर्मन का उद्देश्य क्या

है ? उसे यह प्रश्न हर शब्द, वाक्य एवं अनुच्छेद के संदर्भ में सोचना होगा कि लेखक शान्त-चित्त होकर बात को गम्भीरतापूर्वक कहना चाहता है या केवल हास-परिहास अथावा व्यंग्य-विनोद के साथ; वह किस बात पर बल देता है, जिससे एक बार मूर्ख एवं बुद्धिहीन व्यक्ति में भी उत्साह पैदा हो जाए ? इस लिए एक ही रचना के भिन्न-भिन्न अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन करके देखिए कि पूर्ववर्ती अनुवादकों ने किस विधि का अनुसरण किया है। मॉड्रन फैशन की भान्ति अनुवाद भी सदैव बदलते रहते हैं, क्योंकि हर युग की अपनी माँग होती है। उदाहरणतया, यदि हम इस समय विलियम जोन्स का १८वीं शताब्दी का लिखा शकुन्तला पढ़ेंगे, तो वह बासी प्रतीत होगा। होमर के साथ भी यही बीमारी है। इस लिए समय व्यतीत होने पर इलियड के अनुवाद पुराने पड़ गए हैं और उनके स्थान पर नये-नये उल्थे हो रहे हैं। इस लिए उचित यह है कि रचना का सम्बन्ध विशिष्ट तौर-तरीके से न जोड़ कर ऐसा नियोजन करना चाहिए, जिसमें अनेकानेक रसों का एक-साथ संचार हो। आपको अपने देशकाल की माँग को पूरा करना है, जिसके लिए गहन अध्ययन की आवश्यकता है। किन्तु मूल रचना की भाषा का गहन अध्ययन अनुवादक के व्यक्तित्व पर इतना गहन प्रभाव छोड़ता है कि सम्भव है उसकी कृति में इसकी अपनी भाषा का वैशिष्ट्य समाप्त हो जाए। लेखक के साथ इस न्यूनता की बहुत बड़ी संभावना इस कारण होती है कि अनुवादक लेखक की सहभात्र की स्थिति में पहुँच जाता है और उसके वर्ण्य-विषय में आवश्यकता से अधिक रुचि लेता है। अनुवादक को इस न्यूनता से बचना चाहिए क्योंकि जिस कृति में भाषा की अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ अलभ्य हैं, वह न तो आसानी से पढ़ी जा सकती है, न समझी जा सकती है और न ही उससे किसी प्रकार का रसोद्रेक हो सकता है। अन्ततोगत्वा अनुवादक भी किसी पाठक के लिए ही अनुवाद करता है। निस्संदेह, ऐसी दिमागी कसरत से उसे बहुत लाभ प्राप्त होता है; परन्तु अनुवाद का उद्देश्य दूसरों को कुछ समझाना है। इसलिए बेहतर है कि वह सबसे पहले इस बात का निर्णय करे कि जो अनुवाद वह प्रस्तुत कर रहा है, वह विद्यार्थियों के लिए है, आम लोगों के लिए है या विद्वानों के लिए है। इन तीनों वर्गों की अपनी-अपनी आवश्यकताएँ है। साधारण पाठक को भाषा

की बारीकियों में कोई दिलचस्पी नहीं। वह सरल, सरस और स्पष्ट अनुवाद की अपेक्षा रखता है, जो उसके दिमाग पर भार प्रतीत न हो। विद्यार्थी को अभ्यास की आवश्यकता होती है। एतदर्थ उसे ऐसा अनुवाद चाहिए, जो विषय को स्पष्ट करे और उसकी बारीकियों पर प्रकाश डाले। पर विद्वान् जो पहले से ही विषय से भिज्ञ हैं अनुवाद का अध्ययन केवल समालोचनात्मक दृष्टि से करते हैं, जिससे उसकी कला एवं कल्पना की न्यूनताओं का उद्‌घाटन कर सकें। इसलिए अनुवादक को सर्वप्रथम यह निर्णय करना चाहिए कि वह किस वर्ग के लिए यह कार्य कर रहा है। तथापि यह अपरिहार्य है कि अनुवादक को विदेशी भाषा का व्यावहारिक एवं आलोचनात्मक ज्ञान होना चाहिए, और अपनी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान। उसके लिए उसके पास समानार्थक शब्दों, वाक्यांशों एवं मुहावरों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए क्योंकि विचारों में साम्य होते हुए भी उनके परिधानों में वैविध्य होता है। मानव की आन्तरिक अनुभूतियों में इतना अन्तर नहीं है जितना कि इनकी भाषा में। स्वयं व्यक्तित्व का आन्तरिक विकास भी इतना निराला नहीं, जितना कि ऊपर से प्रतीत होता है? अनुवादक को मानव की समानता एवं वातावरण की भिन्नता स्वरूप उत्पन्न वैशिष्ट्य—दोनों का ध्यान रखना चाहिए, और शब्दानुवाद की अपेक्षा उसे ऐसा उपयुक्त एवं सुष्ठु रूपान्तर तैयार करना चाहिए जिससे उसमें मूल विशिष्टताएँ अपने आप उभर आएँ।

प्रायः देखा गया है कि गद्य का अनुवाद इतना कठिन नहीं जितना पद्य का। इसका कारण है लय और ताल का, उपमाओं और रूपकों एवं साधारण शब्दों का असाधारण रूप में प्रयोग। इनको दूसरी भाषा में लाना कठिन काम है। परन्तु भाव एवं अनुभूति, विचार एवं कल्पना किसी विशिष्ट भाषा की धरोहर नहीं हैं। कविता में कुछ साधारण शब्द भी रहस्यमय अर्थ देते हैं। दूसरी भाषा में वह रस उसी प्रकार से बना रहे, जिससे कविता से प्राप्त कर्ण-प्रियता में भी अन्तर न आए, दुष्कर कार्य है।

She had a rustic wood, land, air.

यह बिल्कुल साधारण एवं सरल वाक्य है। किन्तु यहाँ 'air' शब्द इस प्रकार से प्रयोग किया गया है कि उसका अर्थ भी स्पष्ट हो, और उसके संगीत में भी

अन्तर न आए, यह कोई आसान काम नहीं। जो काव्य का अध्ययन केवल रसानुभूति के विचार से करते हैं, उनके लिए इन झंकारमय शब्दों और इनके आकर्षक कलात्मक प्रयोगों का विशेष महत्त्व है। ऐसे लोग काव्यात्मक अन्तर्दृष्टि एवं अद्भुत अनुभव के रहस्य को ग्रहण करने के लिए इतने आतुर नहीं होते जितनी उत्कंठा उनको काव्य के संगीत, उसके ध्वनि-लालित्य एवं गत्यात्मक सौष्ठव के आस्वादन की होती है। निस्सन्देह सार्वभौमिक अनुभूति एवं काव्यात्मक सूक्ष्म दृष्टि के लिए हर भाषा में पर्याप्त शब्द मिल जाते हैं, पर उसी शब्द में से वही ध्वनि और वही अर्थ-तत्त्व निकले, यह बात व्यवहार की सीमा के बाहर की है। किसी भी कविता को बार-बार ऊँचे स्वर से पढ़ने से उसके आलाप को आत्मसात् किया जा सकता है और एकाग्रचित्त होकर उसमें समाविष्ट रचनात्मक अनुभूति को अपने हृदय में जगाया जा सकता है। परन्तु इन सबको एक ही ताल और लय में देना ,अर्थात् शेक्सपीयर के सानेट 'Iambic Feet' में उतारना आसान काम नहीं है। इस समस्या का सम्बन्ध केवल शिल्प से नहीं है। मात्र शिल्प उच्च कविता को जन्म नहीं दे सकता। परन्तु ऐसे विधान को जो मूल के रचना-विन्यास की दृष्टि से बिल्कुल मिल जाए और अस्वाभाविक प्रतीत न हो, कुछ विद्वानों ने असंगत बतलाया है। उन्होंने कविता के अनुवाद के लिए पद्यानुवाद की अपेक्षा गद्यानुवाद का परामर्श दिया है। परन्तु यह बात स्पष्ट है कि कविता का गद्यात्मक अनुवाद वह रस कायम नहीं रख सकता, जिसका उद्रेक हम पद्यात्मक ढाँचे में कर सकते हैं, हालाँकि कई बार काव्य विधान में विचार की अभिव्यक्ति में बाधा पड़ती है। इस लिए अतुकांत कविता अथवा गद्य-काव्य ही संभवतः मध्यम मार्ग है, जिसके माध्यम से कविता के विशिष्ट गुण बहुत कुछ उतारे जा सकते हैं। वैसे भी यह स्मरण रखना चाहिए कि कविता में कुछ इस प्रकार का भाव भी होता है, जो न तो उसमें प्रयुक्त शब्दों का, न ही उसकी लय का और न ही उसकी झंकार के विशिष्ट क्रम का प्रतिफल होता है। कविता पाठक के मन पर एक विशेष प्रकार की छाया डालती है, जिसके कारण वह स्वयं को एक स्वप्निल संसार में पाता है। यह भ्रान्ताभास ही कविता की खास खूबी है, जिससे एक प्रकार की कल्पना-छाया की प्रतीति होती है। अच्छा यही है कि यह प्रभाव अपनी भाषा

के माध्यम से उत्पन्न किया जाए, बजाए इसके कि उसे विदेशी भाषा के प्रभाव में धूमिल किया जाए। वैसे भी अनुवाद में लाई गई कविता मूल कविता नहीं होती, प्रत्युत मिल्टन की 'लिसिडास' की भान्ति कुछ कविताओं का अनुवाद करना मूर्खता मात्र है। ऐसी स्थिति में मूल से ही मिलता-जुलता रूपान्तर अनुवाद की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। तथापि कविता का उल्था किस प्रकार किया जाए, यह बात अनुवादक की कल्पना, उसकी अनुभूति, कलात्मक योग्यता एवं व्यावहारिक कुशलता पर निर्भर करती है और इसके लिए किन्हीं नियमों का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

हमने इस निबन्ध में रचनात्मक अनुवाद की जटिलताओं पर प्रकाश डालते हुए शब्दानुवाद की न्यूनताओं के सम्बन्ध में कुछ संकेत किये हैं। निस्सन्देह कलात्मक अनुवाद ही सुन्दर साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकते हैं, दूसरे अनुवाद इस पद के अधिकारी नहीं। किन्तु ऐसे उच्चकोटि के अनुवाद एक साधारण अनुवादक के बल-बूते के बाहर की बात हैं। बाकी, यह समझना कि अन्य अनुवादों की कोई महत्ता ही नहीं, अनुचित है। शब्दानुवाद की यह विशेषता है कि मूल ग्रन्थ की भाषा में प्रयुक्त मुहावरों, लोकोक्तियों एवं बोल-चाल की विशेषताओं के बिल्कुल वास्तविक रूपों का अध्ययन करने से पाठक दूसरे देश की बोल-चाल से परिचित होता है और स्वयं को उनके बीच में पाकर एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त करता है जो किसी भी दूसरे अनुवाद में उसे प्राप्त नहीं होगा। किन्तु यदि अनुवाद का अभिप्राय यही है कि पाठक स्वयं को ग़ैरों के बीच ग़ैर न समझे—ग़ैरों को अपना ही समझे और उनके विचार-व्यवहार की खूबियों को ग्रहण करे तो शब्दों और वाक्यों के जोड़-तोड़ मात्र का इतना महत्त्व नहीं है। बेहतर यही है कि मूल रचना की अनुभूति, जन्म, वातावरण, विचार तत्त्व, शैली की विशिष्टताओं एवं शाब्दिक संगीत को इस कुशलता के साथ अपनी भाषा में उतारे कि पाठक देशकाल की सीमाओं को अनुभव करते हुए भी स्वयं को ग़ैर न समझे। रचनाकार के मस्तिष्क-जन्य तथा अनुभूति-प्रसूत प्रभाव को तथा व्यक्तिगत अनुभव एवं स्वभावगत विशेषताओं को ग्रहण करता जाए।

(अनु०—वेदप्रकाश)

अनुवाद और शैली

— आनन्दप्रकाश खेमाणी

ललित साहित्य के अनुवाद की मूलतः दो ही समस्याएँ हैं। एक समस्या है भावग्रहण की, जिसमें बिम्बग्रहण और अर्थग्रहण दोनों आ जाते हैं, और दूसरी है मूल रचना की शैली को दूसरी भाषा में यथासम्भव यथातथ्य रूप में उतारने की। इन दो मूलभूत समस्याओं के आधार पर हम अनुवाद को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं : अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसमें समानार्थी शब्दों के माध्यम से एक भाषा में व्यक्त किये गये विचारों को यथासम्भव यथातथ्य रूप में दूसरी भाषा में स्थानान्तरित किया जाता है।

एक अच्छे अनुवाद में, भाव का सही सम्प्रेषण तथा मूल की शैली का यथातथ्य अनुकरण, इन दोनों विशेषताओं का होना आवश्यक है। किन्तु इसमें साफल्य कम ही मिलता है। प्रायः दो भाषाओं की निजी प्रकृति, दो संस्कृतियों की भिन्नता एवं वातावरण की असमानता के कारण ऐसा हो जाता है कि यदि भाव को सही रूप में उतारने की कोशिश की जाती है तो मूल की शैली का उत्सर्ग करना पड़ता है और यदि मूल शैली का अनुगमन किया जाता है तो भाव का सही एवं स्पष्ट स्थानान्तरण नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में अनुवादक के लिये आवश्यक है कि वह शैली की यथातथ्यता की अपेक्षा भाव की यथार्थता को अधिक महत्त्व दे; क्योंकि भाव रचना की आत्मा होती है जब कि शैली उसका परिधान। शैली को यथातथ्य रूप में उतारने का प्रयास तभी करना चाहिये जब भाव के सही निरूपण में कोई बाधा उपस्थित न हो। अतः आपेक्षिक दृष्टि से, अनुवाद में भाव का महत्त्व अधिक है। परन्तु दूसरी ओर भाव को सही रूप में उतारने में इतनी विकट समस्या का सामना करना नहीं पड़ता है, जितना कि भावाभिव्यक्ति-प्रणाली को उतारने में। वस्तुतः विश्व साहित्य में एक भी ऐसा अनुवाद नहीं है जिसमें मूल की शैली का, अपने

निरपेक्ष रूप में स्थानान्तरण हो पाया हो। अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मूल केवल मूल में ही रह सकता है, अनुवाद में तो केवल अनुवाद ही आ सकता है।

अनुवाद तथा अनुवादकों के संबंध में समस्त निराशाजनक अभिकथनों, कटूक्तियों एवं अपकथनों के मूल में यही शैली का प्रश्न है।[१]

यों तो हर ललित रचना की मूल शैली को उतारना कठिन है; कविता के क्षेत्र में यह कठिनाई और भी अधिक है। इसलिये यथार्थवादी अनुवादशास्त्रियों ने काव्यानुवाद को असम्भव एवं असाध्य बताया है। कुछ विद्वानों का परामर्श है कि कविता का अनुवाद गद्य में ही करना चाहिए।[२]

सामान्यत: जिसे हम भाषा की प्रकृति कहते हैं, वह वास्तव में उस भाषा की शैली ही है। हर भाषा की अपनी शैली होती है। ग्रीक भाषा में वाक्य लम्बे और संश्लिष्ट होते है; परन्तु अंग्रेजी भाषा में वाक्य अपेक्षतया छोटे और कम संश्लिष्ट होते हैं। अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी वाक्यावली अधिक लघु और सरल होती है। फ्रेंच भाषा अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक संगीतमय है। लैटिन भाषा में सर्वाधिक सुनिश्चितता का गुण है। इसमें ओज भी ज्यादा है। इटालियन भाषा में लघुत्वार्थक शब्दों का बाहुल्य है। उर्दू भाषा में हिंदी की अपेक्षा अधिक लचक एवं रवानी है।

---

१. (i) There is no such thing as Translation.—J. Lewis May
(ii) Translation is sin. —Grant Showerman
(iii) Translators are traitors— —Italian Saying
(iv) I never found in my life any thing so hard for me to do. —Thomas Wilson
(v) Most published translations give the impression that foreigners can neither think nor speak. —Andre Therive

२. Translation of verse is nearly better rendered in prose. —Hillaire Belloc

भाषा विशेष की प्रकृति अथवा शैली उस भाषा के बोलने समझने वालों के व्यक्तित्व, उनकी चिन्तन-पद्धति, उनकी सभ्यता, उनकी संस्कृति एवं रहन-सहन की परिचायिका होती है। हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, की जितनी तीव्र अभिव्यक्ति फ्रेंच भाषा में सम्भव है उतनी अंग्रेजी भाषा में नहीं है। इसका कारण यह है कि फ्रांस के लोग अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक विनोदी प्रकृति के हैं। दूसरी ओर अंग्रेज अपेक्षतया गंभीर प्रकृति के लोग हैं। अतः अंग्रेजी में गम्भीर विचारों का प्रगटीकरण अपेक्षतया अधिक सूक्ष्मता के साथ हो सकता है। इसी प्रकार बंगला में कोमल भावनाओं का जितना सम्वेदनायुक्त और सूक्ष्म निरूपण हो सकता है, उतना पंजाबी भाषा में सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि बंगाली पंजाबियों की अपेक्षा अधिक जज़बाती हैं। अतः अनुवाद में, भाषाओं की प्रकृतिगत भिन्नता से प्रसूत ये नैसर्गिक समस्याएँ सदा बनी रहेंगी। परन्तु इनकी विकटता अथवा विषमता को सतत अनुवाद कार्य से कम किया जा सकता है। अनुवाद-कार्य किसी भाषा विशेष के लिये चुनौती होता है और इस चुनौती को स्वीकारता है अनुवादक। इससे अनुवादी भाषा की क्षमता की सम्भावनाओं में वृद्धि होती है। भाषा के नये प्रयोग और मुहावरे लाने पड़ते हैं। अभिव्यक्ति-प्रणाली का विकास होता है और इस प्रकार भाषा शैली में नूतन दिशाओं की उपलब्धि होती है। इस प्रकार धीरे-धीरे समस्याएँ कम होने लगती हैं। भाषा-विकास में अनुवाद तथा अनुवादक का योग एक विशेष महत्त्व रखता है। डा० रघुवीर का यह कहना कि अनुवादक शब्दकार नहीं होता, गलत है। वास्तव में शब्द घढ़ने में एक सचेत अनुवादक जितना योग दे सकता है उतना और कोई नहीं दे सकता। क्योंकि सफल अनुवाद प्रस्तुत करने के लिये उसे मूल ग्रंथ की आत्मा में प्रवेश करना होता है। और जब वह एक विचार को पकड़ लेता है तो उसे व्यक्त करने वाले शब्द को, वह बड़ी सहजता के साथ घड़ सकता है।

हर लेखक के भाव-प्रकाशन का ढंग निराला होता है। इसी विशिष्ट ढंग का नाम शैली है। शैली में रचनाकार का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। डा० लियो स्पिट्ज़र (Prof. Leo Spitzer) की मान्यता है कि लेखक की भाषा-शैली और उसकी मानसिक स्थिति का परस्पर सम्बन्ध है। हर शैलीगत

विशिष्टता लेखक के किसी स्वभावगत पहलू की ओर निर्देश करती है। दूसरे शब्दों में शैली साहित्यकार के चरित्र का दर्पण है। शापेनहॉवर का तो यहाँ तक कहना है कि शैली रचनाकार के चरित्र का उसकी मुखाकृति से भी अधिक विश्वसनीय दर्पण है।[१] वस्तुतः विशिष्ट शब्द योजना, वाक्य-विन्यास, अलंकरण-प्रणाली, छन्द आयोजन व ध्वनि एवं संगीतात्मकता आदि तो शैली के बाह्य उपकरण हैं। शैली की अतंरंग-वस्तु तो रचनाकार का व्यक्तित्व होता है जो उसकी कृतियों से टपकता है, झलकता है।

स्पष्ट है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण अंग को अनुवादक छोड़ नहीं सकता। यदि अनुवाद के द्वारा मूल शैली का रसास्वादन नहीं होता तो वह अनुवाद कतई अच्छा कहलाने योग्य नहीं है। हम रामकथा वाल्मीकि में पढ़ते हैं, तुलसी में पढ़ते हैं, केशव में पढ़ते हैं और फिर भी मैथिलीशरण के 'साकेत' का रसास्वादन करना चाहते हैं। ऐसा क्यों? क्या रामकथा को जानने के लिये? ज्ञान-वर्द्धन के लिये? नहीं। वस्तुतः हम विभिन्न कवियों की शैली की ओर आकर्षित होते हैं। भाषाभिव्यक्ति का आकर्षण ही हमें एक ही विचार, भाव पर आधारित रचे विभिन्न ग्रंथों की ओर आकर्षित करता है। ललित साहित्य में हमारी रुचि का प्रधान कारण यही शैली का वैशिष्ट्य अथवा वैचित्र्य है।

किन्तु मूलभूत प्रश्न है कि क्या शैली को अनुवाद में हू-ब-हू उतारा जा सकता है? एक बार महाकवि कीट्स ने मिलटन की 'भव्य शैली' की नकल करने की कोशिश की थी। परन्तु वे इसमें सफल नहीं हुए। इसी प्रकार शेक्सपीयर ने मारलो की शैली में रचना करने का प्रयास किया था किन्तु इस प्रक्रिया में वे एक अलग शैली का निष्पादन कर बैठे। इसी प्रकार हिन्दी में कई लेखकों ने प्रेमचन्द की शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न किया था, परन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिल सकी। जब उसी भाषा में किसी विशेष रचनाकार की शैली का अनुकरण नहीं किया जा सकता तो अनुवाद में इसकी पूर्ण अनुकृति कैसे सम्भव है? स्पष्ट है कि शैली अनुकरणातीत है। तथापि प्रतिभा एवं

१ Style is the physiognomy of the mind and a safer index to character than face. —Schopenhauer

अध्यवसाय के बल पर, अनुवाद में काफी कुछ मूल शैली के निकट रहा जा सकता है। और इसीलिये हमने परिभाषा में 'यथासंभव यथातथ्य रूप में' वाक्यांश का प्रयोग किया है।

शेक्सपीयर के मैकबेथ से उद्धृत कतिपय पंक्तियाँ और उनके तीन अनुवाद देखिये :

Awake, Awake!
Ring the alarum bell, Murder and treason!
Banquo and Donalbain, Malcolm! awake!
Shake off this downy sleep, Death's counter-feit,
And look on death itself. Up, up and see
The great doom's image! Malcolm! Banquo!
As from your graves rise up and walk like sprites
To countenance this horror! Ring the bell.

(Act 2, Sc. 3)

लाला सीताराम का अनुवाद (भाषानुवाद) :

उठो उठो, घण्टा बजा दो, खून हो गया।—बैंको, डोनलबेन, मैलकम! उठो, जागो। यह नींद तुम्हें मुरदा सा बनाये हुए है। आँख खोलो और मौत का सच्चा रूप देखो। उठो उठो, देखो काल का स्वरूप यही है। मैलकम, बैंको, मानो अपनी-अपनी कब्रों से उठो, और इस भयानक दृश्य के देखने को तुम भी प्रेत बन जाओ। घण्टा बजा दो। (१९२९ में अनूदित, पृष्ठ सं० ३६)

डा० बच्चन का अनुवाद (पद्यानुवाद) :

खतरे का घण्टा दो!—हत्या औ' गद्दारी!
बैंको, डोनलबेन! मैलकम! जागे, जागो!
सुख की निन्द्रा त्यागो, जो है मौत की नक़ल,
असल मौत को देखो!—देखो, उठो, कयामत
की सूरत को। जागो, जागो! मैलकम!
बैंको!

बिस्तर की कब्रों से निकलो औ' प्रेतों की
भान्ति चलो यह काण्ड देखने ! घण्टा पीटो !

(१९५५-५६ में अनूदित, पृष्ठ सं० ४५)

डा० रांगेय राघव का अनुवाद (रूपान्तर) :

उठो ! उठो !!

खतरे की घण्टी बजा दो। खून ! षड्यन्त्र ! बैंको ! डोनलबेन ! मैलकॉम ! कहाँ हो ? उठो ! मौत की सी इस गहरी नींद को दूर करो। देखो यह खून ! हत्या। उठो ! उठो !! यह देखो प्रलय का अन्तिम दिन आ गया। मैलकॉम ! बैंको ! छोड़ दो अपनी नींद और मौत के इस भयानक दृश्य को देखने के लिये इसी तरह उठे चले आओ जैसे भूत प्रेत अपनी-अपनी कब्रों से उठ कर चले आते हैं। बजा दो खतरे की घण्टी।

(१९५७ में अनूदित, पृष्ठ सं० ४८)

एक ही ग्रंथ का अनुवाद विभिन्न अनुवादकों ने विभिन्न शैलियों में प्रस्तुत किया है। इसका क्या कारण है ? अनुवादक स्वयं भी एक साहित्यकार होता है (क्योंकि अनुवाद तुलनात्मक साहित्य की एक विधा है)। अतः निश्चित रूप से उसकी अपनी भी एक अलग शैली होती है। अनुवाद-कार्य के लिये अपेक्षित 'आत्मविलोपन' के गुण का वह कितना भी अभ्यासी क्यों न हो, एक व्यक्ति होने के नाते उसका स्वयं का व्यक्तित्व कहीं न कहीं विद्रोह कर बैठता है। कहीं-कहीं यह विद्रोह इतना अस्पष्ट एवं धूमिल होता है कि स्वयं अनुवादक को भी इसका भान नहीं होता। संभवतः यह अचेतन मन में होता है, परन्तु इसका प्रभाव अनुवादित ग्रन्थ पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वास्तव में अनुवाद-कार्य में दो प्रतिभाओं, दो व्यक्तित्वों की टक्कर होती है। और इस संघर्ष का प्रतिफल होता है एक नया व्यक्तित्व, जो न तो सम्पूर्णतः लेखक का होता है और न ही सम्पूर्णतः अनुवादक का। यह एक मिला-जुला रूप होता है। और इस प्रकार अनुवाद की शैली भी, मूल-लेखक की शैली एवं अनुवादक की शैली का सम्मिश्रण होती है। वह अपना एक अलग अस्तित्व बन जाती है। यही वजह है कि स्रोत एक होते हुये भी अनुवाद शैली भिन्न-भिन्न हो जाती है। इसका प्रमाण, उपरोक्त तीन अनुवादों की भाँति, वे तमाम अनुवाद हैं जो किसी एक

ग्रन्थ के, एक ही भाषा में, करीब-करीब एक ही युग में विभिन्न अनुवादकों द्वारा किये गये हैं। जब तक लेखकों,[१] अनुवाद-आलोचकों एवं प्रबुद्ध पाठकों को इस सत्य का उद्घाटन नहीं होता, तब तक उनको अनुवादकों के प्रति और अनुवादकों को उनके प्रति शिकायत बनी रहेगी और अनुवाद-संसार में भ्रान्तियों एवं मिथ्या विचारों की वृद्धि होती रहेगी। आज अनुवादक के प्रति सही एवं स्वस्थ दृष्टिकोण रखने की खास जरूरत है क्योंकि उसको युग की माँग पूरी करने के लिये समस्त संसार में सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाना है। अनुवाद-कार्य की यथार्थ कठिनाइयों की तुला पर ही उसके परिश्रम एवं उसकी प्रतिभा का मूल्यांकन करना चाहिये।

अनुवाद में मूल शैली को बनाये रखने में यह एक नैसर्गिक कठिनाई है जिसको 'लाचारी', 'विवशता' एवं 'मजबूरी' के रूप में लेना चाहिये। अनुवाद-कार्य में अनुवादक के भी इस अंशतः व्यक्तित्व समावेश के अपरिहार्य होने के बावजूद, शैली के अधिकाधिक यथार्थ अनुकरण के लिये एक सलाह दी जा सकती है कि अनुवादक को अनुवाद करते समय यह बराबर ध्यान में रखना चाहिये कि वह मूल सृजन न कर, मात्र अनुवाद कर रहा है। इस बात को ध्यान में रखने के कारण, वह अपने ऊपर अधिक नियन्त्रण रख सकेगा तथा संयमित एवं मर्यादित रह पायेगा। दूसरे शब्दों में इस विवशता को सतत 'आत्मविलोपन' की प्रक्रिया से कम किया जा सकता है। वास्तव में जो अनुवादक अपने व्यक्तित्व को दबाने में जितना सफल होगा, उसका अनुवाद उतना ही मूल शैली के निकट होगा।

हाँ, यदि अनुवादक की स्वयं की अक्षमता की वजह से मूल शैली का हनन होता है तो यह अवश्य ही चिन्ता की बात है। अक्सर देखा गया है कि अनुवादक मूल ग्रंथ के कतिपय स्थलों पर मूल शैली का, अपनी असमर्थता की

---

१. नोट : टॉलस्टाय को शिकायत थी कि अनुवादकों ने उनकी रचनाओं को सही रूप में प्रस्तुत नहीं किया था। और इस प्रकार की शिकायत प्रायः सब साहित्यकार करते हैं जिनके जीवन-काल में ही उनकी रचनाओं के अनुवाद होते हैं।

वजह से, अनुगमन करने में असफल होता है ? अतः वह अपने असामर्थ्य की क्षतिपूर्ति करने के लिये कुछ स्थानों पर डा० जानसन के परामर्श[1] की अवहेलना कर, अपने कौशल को दिखाता है, तब वह स्थल-विशेष में निहित लेखक के विशिष्ट प्रयोजन को भूल जाता है। वह जिस 'हीन भाव' को छिपाने का प्रयास करता है वह अपने और नग्न रूप में प्रगट हो जाता है। ऐसे अनुवादक पर दो आरोप लगाये जा सकते हैं। एक तो यह कि वह मूल शैली को अन्तरित करने में अक्षम है और दूसरे जहाँ अनुकृति कर भी सकता है, वहाँ मूल के साथ वफादार नहीं।

किसी भी लेखक की शैली उस भाषा विशेष के विकास का एक सोपान होती है। उसमें परोक्ष रूप से उस भाषा विशेष का इतिहास समाया हुआ होता है। अतः अनुवाद करते समय अनुवादक को देखना होगा कि मूल रचना की शैली उस भाषा विशेष के विकास के किस मोड़ की कड़ी है और फिर उसे अपनी भाषा में कुछ उसी प्रकार की भाषा शैली की खोज करनी होगी। दूसरे शब्दों में अनुवाद-कार्य लेखक-युगीन-भाषा में होना चाहिये। इससे कई लाभ हैं। ऐसा अनुवाद पाठक को मूल भाषा की सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, भाषागत इन समस्त विजातीय विशेषताओं से परिचित करायेगा। मूल का मुहावरा आरंभ में तो अटपटा लगता है किन्तु बाद में कुछ नये प्रयोग हमारी भाषा में खप जाते हैं। इस प्रकार के आदान-प्रदान से हमारी भाषा विकासोन्मुख एवं गतिशील होती है।

किन्तु इस विचार के प्रतिपक्षियों का कहना है कि ऐसा अनुवाद अनुवाद ही लगता है ? उसमें मूल का सा प्रवाह और रवानी नहीं रहती। अतः ऐसे अनुवाद में एक आम पाठक की रुचि नहीं रहती। ऐसा अनुवाद केवल उन चन्द लोगों को आनन्दित करता है जिनको मूल भाषा का पहले से ही अच्छा खासा ज्ञान है और जो मूल और अनुवाद को मिलाकर पढ़ते हैं। इससे उन्हें एक विशेष प्रकार का रस प्राप्त होता है। अतः इस धारणा के विद्वानों की

---

१. A translator is to be like his author; it is not his business to excell him. —Samuel Johnson

हिन्दी में पाश्चात्य नाटकों के अनुवाद

—डॉ० गार्गी गुप्त

भारत में संस्कृत-नाटकों की परम्परा यद्यपि अत्यन्त समृद्ध थी, तथापि ईसा की सातवीं शताब्दी के पश्चात् उसका विकास रुक गया। इसका सबसे प्रमुख कारण यह था कि यवन शासक ललित कलाओं के प्रति उदासीन थे और नाटक-साहित्य में उनकी कोई रुचि न थी। परन्तु अंग्रेजों के आगमन के बाद जब भारतीय विद्यालयों में शेक्सपियर के नाटकों का अध्ययन-अध्यापन होने लगा, तब इन नाटकों के प्रति भारतवासियों में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न हुआ। एक तो, ये नाटक संस्कृत की जटिल नाट्य-परम्परा से भिन्न थे, और दूसरे, उनके व्यक्तिगत और लौकिक चित्रण में इतना आकर्षण था कि शिक्षित वर्ग बहुत शीघ्र इनकी ओर खिच गया। सर्वज्ञात है कि शेक्सपियर के नाटक किसी काल अथवा वातावरण-विशेष को लक्ष्य कर नहीं लिखे गये है, बल्कि उनमें मानव के राग-विराग, ईर्ष्या-द्वेष, महत्त्वाकांक्षा, आदि शाश्वत भावों का सर्वयुगीन चित्रण किया गया है।

उसी समय पारसी थियेटर कम्पनियों ने शेक्सपियर के नाटकों का भारतीय जनता में खूब प्रचार किया। इन कम्पनियों ने मूल नाटकों के रूप में परिवर्तन लाकर और उनमें तड़क-भड़क तथा सजावट वाले दृश्यों की योजना करके भारतीय जनता का ध्यान शेक्सपियर के नाटकों और उनकी टेकनीक की ओर आकर्षित किया। इन कम्पनियों के व्यवस्थापकों ने यह सोच कर कि भारतीय जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए उनके मूल कलेवर में परिवर्तन करना आवश्यक है, उनका भारतीयकरण कर दिया। इस प्रकार, पारसी कम्पनियों ने 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' का 'दिलफरोश', 'कामेडी आफ एरर्स' का 'भूलभुलैया' और 'गोरखधंधा', 'द विण्टर्स टेल' का 'मुराद-शोक', 'सिम्बलीन' का 'जुल्मनजा', 'रोमियो एण्ड जूलियट' का 'बज्मेफानी', 'हैमलेट' का 'खूनेनाहक', 'ओथेलो' का

'शहीदेवफा', 'किंग लियर' का 'हारजीत' और 'सफेद खून', तथा 'अण्टोनी एण्ड 'क्लियोपैट्रा' का 'काली नागिन' नाम से प्रदर्शन किया।

परन्तु ये अनुवाद अधिकांशतः भद्दे थे और उनकी भाषा कुरुचिपूर्ण, अशुद्ध तथा उर्दू प्रधान थी। बीच-बीच में इनमें शेर और ग़ज़लों की भी भरमार थी। इसमें अनुवादकों का उद्देश्य शेक्सपियर के सौन्दर्य का प्रदर्शन करना उतना नहीं था, जितना व्यावसायिक सफलता। इसी धुन में उन्होंने मूल नाटकों की कथा को भी तितर-बितर कर दिया है। परन्तु इनसे इतना लाभ अवश्य हुआ कि साधारण जनता में शेक्सपियर के नाटकों का खूब प्रचार हो गया। इसके साथ ही भारतीय दर्शक और नाटककार विदेशी रंगमंच से भी परिचित हुए, क्योंकि पारसी रंगमंच पाश्चात्य रंगमंच के आदर्शों से प्रभावित था।

इन पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव सबसे पहले बंगला-साहित्य पर पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी बंगाल-यात्रा में पाश्चात्य नाटकों से प्रभावित बंगला-नाटकों का अभ्युदय देखा था। अतः वह और उनके सहयोगी नाटककार चाहते थे कि बंगला-नाटकों की विशिष्टताओं को हिन्दी-नाटकों में भी लाया जाए। १८७९ में तोताराम वर्मा ने जोसेफ एडीसन के 'केटो' नामक सरस नाटक का 'केटो कृतान्त' नाम से अनुवाद किया। हिन्दी में किसी विदेशी नाटक का यह पहला अनुवाद था। इसी वर्ष इटावा-निवासी रत्नचन्द ने 'कामेडी आफ एरर्स' का 'भ्रमजालक' नाम से अनुवाद किया। १८८० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' का 'दुर्लभ बन्धु' या 'वंशपुर के महाजन' नाम से अनुवाद किया। बात शायद कुछ हैरत में डालने वाली लगे, पर यह सच है कि अनुवाद की दृष्टि से रत्नचन्द्र को भारतेन्दु की अपेक्षा अधिक सफलता मिली। उन्होंने नाटक की कथावस्तु को अत्यन्त सुन्दर ढंग से और सफलतापूर्वक भारतीय आवरण दिया। 'दुर्लभ बन्धु' का कथानक तो ज्यों का त्यों है, किन्तु अनुवादक ने विदेशी नामों और स्थानों के बदले देशी नाम और स्थान रख दिये हैं—जैसे, अण्टोनियो के स्थान पर अनन्त, पोर्शिया के स्थान पर पुरश्री, शाइलाक के स्थान पर शैलाक्ष, ट्रिपोली के स्थान हर त्रिपुल, आदि। ईसाइयों और यहूदियों का स्थान आर्यों और जैनों ने ग्रहण कर लिया है। भारतवर्ष में हिन्दुओं और जैनों में इतना संघर्ष कभी नहीं रहा जितना यूरोप में ईसाइयों और यहूदियों में

रहा। इसलिए यह तुलना रुचिकर नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त, रीति-रस्म, आचार-विचार, घटनाएँ तथा भाव भी बहुत-कुछ विदेशी रहने दिये गये हैं। मूल के काव्यात्मक अंश गद्य में रखे गये हैं। भारतेन्दु की इस रचना में कुछ असामंजस्य भी आ गया है—जैसे, 'उनका एक जहाज त्रिपुल को गया है, दूसरा हिन्दुस्तान को'। कथा की भारतीय पृष्ठभूमि को देखते हुए भारत को जहाज जाना कुछ विचित्र-सा लगता है। मूल नाटक में न्यायालय का दृश्य तथा पोर्शिया का करुणा-सम्बन्धी भाषण शेक्सपियर-साहित्य में अमर है, परन्तु उस सौन्दर्य को भारतेन्दु अपने अनुवाद में न उतार सके। वस्तुतः 'दुर्लभ बन्धु' न तो पूर्ण रूप से अविकल अनुवाद है और न स्वतंत्र। इसी कारण ऐसी असंगतियाँ आ गई है। अच्छा तो यह होता कि भारतेन्दु 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' का अविकल अनुवाद प्रस्तुत कर हिन्दी-पाठकों को विदेशी सभ्यता और संस्कृति से परिचित कराते। इसका एक अविकल अनुवाद जबलपुर की आर्या नामक महिला ने 'वेनिस नगर का व्यापारी' नाम से १८८८ में किया था। आर्या अंग्रेजी की अच्छी ज्ञाता थीं और उनका ध्येय भारत मे शेक्सपियर की रचनाओं का प्रचार करना था। उन्होंने पद्यांशों का अनुवाद पद्य में ही किया है और मूल का सौन्दर्य ग्रहण करने में वे अपेक्षाकृत अधिक सफल हुई हैं।

रत्नचन्द्र के 'भ्रमजालक' में भी, 'दुर्लभ बन्धु' के समान, कथानक के विकास तथा वातावरण में अनेक असंगतियाँ आ गई है क्योंकि अनुवादक ने मूल नामों तथा स्थानों में परिवर्तन कर दिया है। इससे मूल नाटक का सौन्दर्य एक सीमा तक नष्ट हो गया है।

इसके बाद जयपुर-दरबार के पुरोहित गोपानाथ ने १८९६ में 'रोमियो एण्ड जूलियट' का अनुवाद 'प्रेम लीला' के नाम से तथा 'एज़ यू लाइक इट' का अनुवाद 'मनभावन' नाम से किया। इन अनुवादों में पुरोहितजी मूल के सौन्दर्य को व्यक्त करने में काफ़ी सफल हुए हैं। 'प्रेम लीला' की भूमिका में उन्होंने लिखा है :—

"'मनभावन' के प्रकट होने पर कितने ही महाशयों ने यह आक्षेप किया था कि मुहावरा कहीं-कही अंग्रेजी है, अतएव यह जतलाना आवश्यक है कि मैं अनुवादक-मात्र हूं। जहाँ तक सम्भव है, कवि के अक्षरों और शब्दों और वाक्यों

मे ही कवि का आशय प्रकट करना अपना परम कर्त्तव्य मानता हूँ। इसलिए जहाँ तक चल सका है, मैंने कवि के गम्भीर आशय को कवि के ही अक्षरों, शब्दों वाक्यों और मुहावरों में प्रकट करने का प्रयत्न किया है।"

मिर्जापुर-निवासी श्री मथुराप्रसाद चौधरी ने १८९२ में 'मैकबेथ' का अनुवाद 'साहसेन्द्र साहस' नाम से किया। यद्यपि इसका वातावरण भारतीय है, तथापि अनुवाद सुन्दर हुआ है और 'दुर्लभ बन्धु' की सी उलझन इसमें नहीं है। कुछ समय बाद उन्होंने 'हेमलेट' का भी 'जयन्त' नाम से अनुवाद किया।

लाला सीताराम ने शेक्सपियर के प्रायः सभी नाटकों का अनुवाद किया। उनके कुछ अनुवाद इस प्रकार हैं :—'राजा लियर', (किंग लियर, १९१४ में), 'मनमोहन का जाल' (मच एडो अबाउट नथिंग, १९१५ में), 'भूल भुलैया', (कामेडी आफ एरर्स, १९१५ में), 'बगुला भगत', (मेज़र फ़ार मेज़र, १९२२ में), 'सती-परीक्षा', (सिम्बलीन, १९२५ में), 'झूठा संदेह', (ओथेलो, १९३६ में)।

इन नाटकों में अनुवादक ने केवल भावानुवाद किया है। नामों का भारतीयकरण तो प्रायः सभी में हुआ है। भाषा सरल, परन्तु स्थान-स्थान पर अशुद्ध है। पद्य में कही ब्रज भाषा और कहीं अवधी का प्रयोग हुआ है। 'किंग लियर' में शेक्सपियर ने भय और करुणा की जो अजस्र धारा बहाई है, उसका अनुवाद में आभास भी नहीं है। 'ओथेलो' में मूल नाटक के ही नाम रखे गये हैं पर भाषा शिथिल है। 'ओथेलो' की भूमिका में अनुवादक ने स्वयं कहा है—"जो लोग अनेक स्थलों पर मूल नाटकों के भावों को बारीकी से खोजेंगे, उन्हें निराश होना पड़ेगा।"

फिर भी, लाला सीताराम को इतना श्रेय तो देना ही होगा कि उनके अनुवादों ने शिक्षित जनता में शेक्सपियर के नाटकों का अच्छा प्रचार किया और ये नाटक पारसी-अनुवादों की अपेक्षा बहुत अच्छे सिद्ध हुए।

शेक्सपियर-साहित्य के अनुवाद के क्षेत्र में स्वर्गीय रांगेय राघव और बच्चन जी ने भी बहुत काम किया है। रांगेय राघव ने शेक्सपियर के प्रायः सभी नाटकों के अनुवाद किये हैं, परन्तु प्रथमतः ये अनुवाद जल्दी में किये गये हैं। और दूसरी बात, राघव जी ने पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया है।

बीस वर्ष पहले किया गया था। पाण्डेय जी ने अपने अनुवाद में मूल नाटक से बहुत परिवर्तन कर दिया है। नाटक का समस्त वातावरण भारतीय है और कथानक, रहन-सहन, वार्तालाप, नाम, सब में परिवर्तन हुआ है। अनुवाद के संवादों की भाषा कहीं-कहीं अश्लील और भद्दी है, जैसे पलटू नौकर एक जगह कहता है—'देखो सार, रावबहादुर हैगा।'

फलतः 'रावबहादुर' में मूल लेखक के भावों की हत्या हो गई है। इसी नाटक का एक तीसरा अनुवाद ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव ने 'चड्ढा गुल खेरू' नाम से किया है। इसका भी कथानक, वातावरण तथा चरित्र-चित्रण भारतीय है, परन्तु हास्य निम्न कोटि का हो गया है, जैसे—

'साहब बहादुर – (नौकर से) जूतों को, अच्छा ला रख दे मेरी जेब में। मगर खबरदार, कहना मत किसी से।'

'एक पात्र—आप पर अंग्रेजी पोशाक तो गजब ढाती है।'

'साहब बहादुर—जी हां, यह मेरी काठी की तारीफ है, बिल्कुल विलायती है।'

इसके अतिरिक्त, जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के इन नाटकों का रूपान्तर किया है—'नाक में दम' (ली मैरेज फोर्स), 'मियाँ की जूती मियाँ के सिर' (बैफुल्ड हसबैन्ड), 'मार-मार कर हकीम' (ली मैडिशिन मलग्रेलुई), 'हवाई डाक्टर' (ली अमर वलेण्ट), 'चाल बेढब' (ली फारवेरीज़ द स्केपिन), 'लाल बुझक्कड़' (द बलण्डरर), 'आँखों में धूल' (ल अमर मैडिशिन)।

मोलियर से पहले अरस्तू के नियमों तथा सिद्धान्तों की पूजा-सी होती थी। उसकी तनिक भी आलोचना करने पर मृत्यु-दण्ड मिलता था। सितम्बर, १६२४ में पैरिस की राजसभा-द्वारा मृत्यु-दण्ड का कांनून बनने ही वाला था कि मोलियर ने 'ली मैरेंज फोर्स' नामक प्रहसन लिख कर अरस्तू का मजाक बनाया। फलतः यह कानून रुक गया। परन्तु उसके रूपान्तर 'नाक में दम' में यह अंश मनोरंजनार्थ होकर रह गया है। अरस्तू के नियमों के बदले ज्योतिषियों की खिल्ली उड़ाई गई है। 'मार-मार कर हकीम' तथा 'हवाई डाक्टर' में क्रमशः डाक्टरों के अज्ञान तथा उनकी शोषणनीति का चित्रण है। अन्य रूपान्तरों की अपेक्षा

'चाल बेढब' तथा 'आंखों में धूल' सफल हैं और उनमें मोलियर का हास्य बहुत कुछ जीवित है।

प्रयाग

इस समय हिन्दी-नाटककारों ने अन्य देशों की नाट्य परम्परा से भी अपना त्याग आरम्भ कर दिया था, यद्यपि वे इससे एकदम विमुक्त नहीं हुए थे। भारतेन्दु के बाद यद्यपि हास्य और व्यंग्य का क्षेत्र विशेष उर्वर और समृद्ध नहीं रहा, तथापि उसका क्रम बना रहा। प्रसाद-युग तक भारतीय विद्यालयों में समस्त यूरोपीय साहित्य का अध्ययन तथा मनन-चिन्तन विद्वानों द्वारा होने लगा था। यह अध्ययन यद्यपि अधिकांशतः उनके अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से हो रहा था, तथापि कुछ विद्वानों ने अपनी यूरोप-यात्रा तथा यूरोप-निवास-काल में विभिन्न यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन तथा साम्यवादी विचारधारा के आगमन से रूसी नाटकों तथा नाटककारों का भी अध्ययन किया गया। फलतः अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच के साथ-साथ जर्मन, रूसी, बेलजियन तथा नार्वेजियन कृतियों का भी हिन्दी में अनुवाद हुआ।

उमा नेहरू ने १९३६ में जान मैसफील्ड के 'ट्रेजेडी आफ नैन' का 'विपता' नाम से अनुवाद किया। यह अनुवाद बहुत सुन्दर है और इसकी भाषा मुहावरेदार तथा पात्रानुकूल बोलचाल की है। प्रेमचन्द जी ने गाल्सवर्दी के तीन नाटकों : 'जस्टिस,' 'स्ट्राइक', और 'द सिलवर बाक्स' के 'न्याय', 'हड़ताल' और 'चांदी की डिबिया' के नाम से अनुवाद किए। ये नाटक यथार्थवादी हैं और इनमें न्याय के नाम पर होने वाले ऐसे अन्याय का चित्रण किया गया है, जिसमें निर्दोष दण्ड पाते और दोषी चैन करते हैं। इनमें कथानक सरल, संवाद संक्षिप्त और अभिनय-तत्त्वों की पूर्णता है। न्याय की ऐसी ही स्थिति भारत में भी पाकर प्रेमचन्द जी ने इनका हिन्दी-रूपान्तर किया था। गाल्सवर्दी के एक दूसरे नाटक 'स्किन गेम्स' का अनुवाद ललिताप्रसाद मुकुल ने किया। इस नाटक में नवीन और प्राचीन विचारों का संघर्ष है। गोल्डस्मिथ के 'शी स्टूप्स टू कांकर' का प्रो० रामकृष्ण शिलीमुख ने 'हः हः हः' नाम से अनुवाद किया। इसमें हास्य तथा विनोद की प्रचुर सामग्री है और मूल के उल्लास को पकड़ने की चेष्टा की गई है।

१९३२ में रोम्या रोलाँ के फ्रेंच नाटक 'द फोर्टीन्थ आफ़ जुलाई' का अनुवाद ठाकुर राजबहादुर सिंह ने 'विनाश की घड़ी' नाम से किया।

रामलाल अग्निहोत्री ने जर्मन नाटककार शीलर के नाटक 'लुइश मेलरिन या कबेबिलंडलाई' का अनुवाद 'प्रेम-प्रपंच' नाम से १९२७ में किया। अग्निहोत्री जी ने यह अनुवाद 'खद-ओ इश्क' नामक फारसी अनुवाद से किया था। अनुवाद के भारतीयकरण के सम्बन्ध में अनुवादक ने भूमिका में कहा है—"मेरी समझ में अभी हिन्दी-पाठकों की रुचि ऐसी नहीं हुई है कि वे विदेशी नाटक उपन्यासों को उनके असली रूप में पढ़ कर यथेष्ट आनन्द-लाभ कर सके। विदेशी नाम, विदेशी रीति-रिवाज और विचार उन्हें अटपटे-से मालूम होते है। इसीलिये मैंने जर्मनी के पात्रों को भारतीय जामा पहनाने का प्रयत्न किया है।"

इसमें केवल नामों में ही नही, वातावरण में भी अन्तर है। परन्तु भावानुवाद के रूप मे यह रूपान्तर सुन्दर है। १९३२ में अबुलफजल ने मुहम्मद नईमुर्रहमान-कृत उर्दू अनुवाद से लेसिंग के नाटक 'नातन दर वेज' का 'नातन' नाम से अनुवाद किया। १९३७ में डा० मंगलदेव शास्त्री ने लेसिंग के 'मिना फन वार्न हयलम' का 'मिना' अथवा 'प्रेम-प्रतिष्ठा' नाम से अनुवाद किया। १९३९ में भोलानाथ शर्मा ने गेटे के 'फाउस्ट' का 'फाउस्ट' नाम से ही अनुवाद किया। मूल नाटक जर्मन पद्य में है, परन्तु शर्माजी ने इसका अनुवाद गद्य में किया है। यह केवल भावानुवाद है और लेखक मूल की आत्मा तथा सौन्दर्य लाने में असफल रहा है।

वेलजियम के नाटककारों में मेटरलिंक सर्वाधिक लोकप्रिय नाटककार हैं। उनके 'सिस्टर वियट्रीस' तथा 'द यूज़लेस डिलीवरेन्स' का १९१६ में पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी ने 'प्रायश्चित्त' तथा 'उन्मुक्ति का बन्धन' नाम से अनुवाद किया। बख्शी जी ने इन नाटकों का भारतीयकरण कर दिया है। ये दोनों अनुवाद केवल भावानुवाद हैं और इनमें मूल नाटक के माधुर्य तथा दिव्यता की छाया-मात्र ही आ पाई है।

मेटरलिंक से जैनेन्द्र जी अत्यन्त प्रभावित हैं। उन्होंने 'मग्दालिनी' नाम से १९४२ में उनके 'मेरी मेकडालीन' नामक नाटक का रूपान्तर करते हुए कहा

था—'इस छोटे-से नाटक में आत्मा की एक बड़ी ट्रैजेडी बन्द है। मैं तो इससे हिल गया।' जैनेन्द्र जी का यह अनुवाद अत्यन्त सुन्दर है और उन्होंने मूल के सौन्दर्य को पकड़ा है।

रूसी साहित्य के महारथी टालस्टाय-कृत 'द फर्स्ट डिस्टिलर,' 'एण्ड लाइट शाइन्स इन डार्कनेस' और 'द लिविंग कार्प्स आर रिडेम्शन' का अनुवाद क्षेमानन्द राहत ने क्रमशः 'कलाकार की करतूत' (१९२६), 'अंधेरे में उजाला' (१९२८), 'जिन्दा लाश' (१९२९) नाम से किए। इन सभी नाटकों में साम्यवादी धारा प्रवाहित हो रही है। शराब के दुष्परिणामों, धन के समान वितरण और वैवाहिक जीवन के सुख-दुःख, आदि विषयों का ही इनमें चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र जी ने भी टालस्टाय के 'द पोयम आफ डार्कनेस' का 'पाप और प्रकाश' नाम से अनुवाद किया है। रामनाथ सुमन ने टालस्टाय के 'द मारल्स आफ माइन डक्स' का अनुवाद 'बालकों का विवेक' नाम से किया। भारत के समान ही रूस भी कृषि-प्रधान देश है। भारतीय जमींदारों के समान रूसी जार भी विलासिता तथा उल्लास के प्रतीक थे और उनका अत्याचार दीन किसानों पर अत्यन्त निर्मम रूप से होता था। दोनों देशों के वातावरण में बहुत साम्य है, इसी से इन अनुवादों की उपयोगिता है।

आयरलैण्ड के आस्कर वाइल्ड के 'द डचेस आफ पादुआ' का १९५० में सत्यजीवन वर्मा ने अनुवाद किया।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन की प्रसिद्ध कृति 'ए डाल्स हाउस' का 'गुड़िया का घर' नाम से अनुवाद किया। यह अनुवाद सुन्दर तथा स्वाभाविक है और इसमें मूल नाटक के भावों को सुरक्षित रखने की पूर्ण चेष्टा की गई है। मिश्र जी ने इब्सन की कृतियों का गहरा अध्ययन किया है और साथ ही उनके आदर्शों का अनुकरण भी।

इसी नाटक का एक दूसरा अनुवाद बाबू गंगाप्रसाद ने १९३० में 'परिवर्तन' नाम से किया। इसमें भावों तथा पात्रों का भारतीयकरण कर दिया गया है। इस नाटक का उद्देश्य स्त्रियों को अपना अधिकार-ज्ञान कराना है। यूरोपीय नाटककार उन्नीसवीं शताब्दी से ही नारी स्वतन्त्रता की भेरी बजाते आ रहे हैं, परन्तु भारत में इसका श्रीगणेश इन नाटकों के अनुवाद के बाद ही हुआ।

इब्सन के दूसरे नाटक 'द पिलर्स आफ सोसायटी' का अनुवाद 'समाज के स्तम्भ' नाम से सीताचरण दीक्षित ने किया। इसमें मूल के भावों तथा चरित्रों में परिवर्तन नहीं किया गया है। समाज में व्याप्त असत्य, पाखण्ड तथा आडम्बर को समूल नाश करने के उद्देश्य से इसकी रचना हुई थी।

इब्सन के तीसरे नाटक 'एन एनीमी आफ द पीपुल' का अनुवाद 'देश भर का दुश्मन' प्रो० राजनाथ पाण्डेय ने किया। अनुवाद सुन्दर है और मूल के भावों में परिवर्तन नही किया गया है। अनुवादक ते मूल विचारधारा को अक्षुण्ण बनाये रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। भाषा तथा वाक्य-विन्यास के कारण भी इसमें मूल का आनन्द आता है।

इन नाटकों के अनुवाद से एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि भारतीय नाटककार उदात्तवादी या स्वच्छन्दतावादी नाटकों की ओर कम और यथार्थवादी नाटकों की ओर अधिक आकर्षित हुए। इनमें पद्य के स्थान पर गद्य भी अपनाया जाने लगा और क्लासिकल नाटकों की प्रवृत्तियों को त्यागने के प्रयत्न किये गए। वस्तुतः ऐसा इसलिए हुआ कि लेखक रस-परिपाक की अपेक्षा शील-वैचित्र्य तथा संघर्ष को प्रधानता देने लगे।

भारतीय समाज की तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह स्वाभाविक भी था। परन्तु आज यह कहा जा सकता है कि मौलिक साहित्य-रचना की भाँति ही हिन्दी में अनूदित साहित्य में भी जीवन के सभी पक्षों को संतुलित प्रतिनिधित्व देने के साथ-साथ कलात्मकता का यथाशक्य ध्यान रखा जा रहा है। आज, सौभाग्यवश, हिन्दी-वाङ्मय की गोद पहले की अपेक्षा कहीं बड़ी मात्रा में अन्तर्राष्ट्रीय रत्नों से भर रही है और अनुवादक अपने दायित्वों का निर्वाह भी बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। इसका एक बड़ा श्रेय हिन्दी-साहित्यकारों की लौकिक तथा आन्तरिक दृष्टि में आयी व्यापकता को है। आये दिन पत्र-पत्रिकाओं में विदेशी नाटकों के स्वस्थ अनुवाद तो देखने को मिल ही रहे हैं, आकाशवाणी से भी प्रायः उत्कृष्ट विदेशी नाटक हिन्दी में प्रसारित किये जाते है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद हिन्दी में प्रकाशित विदेशी नाटकों की संख्या निश्चय ही सन्तोषजनक है, और आशा की जानी चाहिए कि आगे इस क्षेत्र में और भी तेजी से प्रगति होगी।

अ ेय ग्रन्थों का अनुवाद

राजेन्द्र द्विवेदी

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ।

इन शब्दों में काव्यदीपकार भर्तृहरि ने शब्द ब्रह्म की वन्दना द्वारा अपने ग्रन्थ का मंगलाचरण किया है। शब्दतत्त्व अनादि, अनन्त और अक्षर है। वह अर्थ तत्त्व में अवतरित होता है और उसी से दुनियां का काम चलता है। श्रुति भी है: 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' अर्थात् सृष्टि के आदि में छन्दोमयी वाक् से ही यह दुनियाँ विवर्त को प्राप्त हुई है। हमारे विभिन्न दर्शनों के नाद, रव आदि अनेक पारिभाषिक शब्द भी इस शब्द-शक्ति रूपी चैतन्य तत्त्व के सृष्टि के आदि से ही विद्यमान रहने की ओर संकेत करते हैं। हमारे दर्शनकारों, वैयाकरणों और साहित्यशास्त्रियों सभी ने शब्द ब्रह्म का विशद स्तवन किया है। भर्तृहरि के अनुसार शब्दों का संस्कार करना परब्रह्म की प्राप्ति का उपाय है और शब्दों की प्रवृत्तियों को जानने वाला परब्रह्म को प्राप्त करता है। शब्दों में ही वह शक्ति है, जो दुनियां को एक सूत्र में गूँथे हुए है: शब्द ही नेत्र है अर्थात् सभी पदार्थों का ज्ञान दिलाने वाला है: शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी, यन्नेत्रः प्रतिमात्मायं भेदरूपः प्रतीयते। दुनियाँ का सारा लोक-व्यवहार शब्द के अधीन है। संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो शब्द-ज्ञान के बिना प्राप्त हो सके। सच तो यह है कि वाक्शक्ति ही प्रकाशों की प्रकाशिका है और वाक्शक्ति के निकल जाने से ज्ञान की स्थिति तेजोहीन अग्नि जैसी होगी। काव्यादर्श प्रणेता प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री दंडी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि यदि शब्दरूपी ज्योति इस दुनियाँ में प्रदीप्त न रहे, तो सारी दुनियाँ अँधेरे में डूब जाए—

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत सचराचरम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते ॥

गार्डिनर जैसे आधुनिक व्याकरणशास्त्री का भी कहना है कि प्रत्येक शब्द अतीत से मिलने वाली एक विरासत है।

अनुवाद, भाषान्तर या रूपांतर की चर्चा करते समय शब्द तत्त्व की इस महिमा पर दृक्पात कर लेना नितान्त आवश्यक है। अन्ततः अनुवाद की परिभाषा भी यही है : 'विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरित करना' और इन विचारों का भौतिक माध्यम तो शब्द ही होते हैं। शब्द ब्रह्म की महिमा को समझकर चलने वाला अनुवादक एक भाषा के विचारों का दूसरी भाषा में रूपान्तर करते समय सदैव यह ध्यान रखेगा कि प्रत्येक शब्द ब्रह्म की अनादि, अनन्त और अक्षर शक्ति का प्रतीक है और तब वह प्रत्येक शब्द का संस्कार, चुनाव और प्रयोग उसी रूप में करेगा जिस रूप में एक पुजारी मन्दिर की प्रत्येक मूर्ति पर चन्दन, अक्षत और श्रद्धा के पुष्प चढ़ाता है।

तात्पर्य यही है कि अनुवाद के भवन में शब्द रूपी प्रत्येक ईंट का महत्त्व है। उदात्त और प्रौढ़ शैली की परिभाषा करते समय 'आन दी सबलाइम' के प्रणेता आचार्य लांजाइनस ने कहा है कि जब एक भी शब्द अतिरिक्त न रहे तभी वह शैली परिपूर्ण मानी जाएगी। 'पूह, सरप्लसेज।'—'हूँ—इसमें शब्द अतिरिक्त रहे।' जैसे निरादर के साथ उन्होंने शब्दों का अतिरिक्त रहना तिरस्करणीय ठहराया था। एक दूसरे आचार्य फ़्लोबेयर ने 'बिलकुल उपयुक्त' (Most Just) सिद्धान्त का निरूपण किया है। अर्थात् प्रत्येक भाव के सटीक निरूपण के लिए एक ही निश्चित शब्द होता है और जब तक वह 'बावन तोले पाव रत्ती' शब्द न मिल जाए, भाव-प्रकाशन परिपूर्ण नहीं हो पाता। एक शब्द के कई पर्यायों को लीजिए और उन्हें अलग-अलग तौलिए। हवा के अमरकोष में निरूपित ये बीस पर्याय उदाहरण के लिए ले लीजिए—श्वसनः स्पर्शनो वायुः मातरिश्वा सदागतिः पृषदश्वो गन्धवहो गन्ध वा हानिलाशुगाः समीरमारुतमरुज्जगत्प्राणसमीरणाः नभस्वद्वातपवनपवमानं प्रभंजनाः। स्थूल रूप से वे सब शब्द एक ही भाव के पयाय हैं, किन्तु प्रत्येक पर्याय का अपना अलग सूक्ष्म भाव भी है, उसका अलग इतिहास है और अलग परम्परा है। जिस प्रकार कर्म के फल आत्मा से चिपके रहते हैं, उसी प्रकार का कुछ

अदृश्य अर्थात् शब्द का संस्कार भी शब्द के साथ लिपटा रहता है। शब्द की इस महिमा को न समझने वाला अनाड़ी अनुवादक अनुवाद्य-भाषा के उस शब्द के भाव को न तो ठीक से हृदयंगम ही कर पाएगा और न अनुवाद की भाषा में उसका सम्यक् निर्वाह।

वाङ्मय अनन्त है। उसका स्थूल रूप से दो खण्डों में विभाजन डी क्विसे नामक विद्वान् ने किया है। ये दो खण्ड है: ज्ञान साहित्य (लिटरेचर आफ नौलिज) और शक्ति शाहित्य (लिटरेचर आफ पावर)। ज्ञान साहित्य में उस समग्र ज्ञान का अन्तर्भाव होता है, जो मनुष्य की जानकारी बढ़ाने में सहायक होता है। सभी विज्ञान और शास्त्र इस कोटि में आ जाते हैं। विज्ञान के अतिरिक्त मानवविद्याओं (ह्यूमैनिटीज) में परिगणित होने वाले कई शास्त्र जैसे राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि भी ज्ञान साहित्य में समेटे जाते हैं। शक्ति साहित्य मे केवल ऐसे साहित्य का अन्तर्भाव होता है, जो मनोवेगों को तरंगित करते हुए मनुष्य को आन्दोलित करने की शक्ति रखता है। इस प्रकार कविता, नाटक और कथा साहित्य जैसे सृजनात्मक साहित्य को शक्ति साहित्य की परिभाषा में लिया जाता है। 'साहित्य' शब्द का आज जो संकुचित अर्थ है, उस सबका ही शक्ति साहित्य में अन्तर्भाव समझना चाहिए।

शक्ति साहित्य के ऐसे ग्रन्थ जो उपयुक्त समय तक किसी जनसमूह के बीच जीवित रहते हुए अमरता प्राप्त कर लेते हैं और एक निश्चित उत्कृष्ट कोटि या श्रेणी के ग्रन्थों में जिनकी उस भाषा के अनेक विद्वानों द्वारा गणना की जाने लगती है, वे उस भाषा के श्रेण्य ग्रन्थ (क्लासिक्स) कहे जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि ज्ञान साहित्य के ग्रंथ श्रेण्य-ग्रन्थों की परिधि में नहीं आते। किन्तु श्रेण्य ग्रंथों की चर्चा करते समय हमारा ध्यान सहसा शक्ति साहित्य के श्रेण्य-ग्रंथों की ओर ही जाता है, क्योंकि इतना तो मानना ही होगा कि अमरता के जो गुण शक्ति साहित्य में होते हैं, ज्ञान साहित्य में नहीं होते या होते भी है तो तुलना में बहुत कम होते हैं। यदि आप किसी वाङ्मय के श्रेण्य ग्रंथों की ज्ञान साहित्य और शक्ति साहित्य के दो वर्गों में अलग-अलग सूचियां बनाएँ, तो मेरा अनुमान है कि संख्या में यह

अनुपात एक ज्ञान साहित्य का श्रेण्य ग्रन्थ और दस शक्ति-साहित्य के श्रेण्य ग्रन्थ—यह तो होगा ही, अधिक भी हो सकता है।

शक्ति साहित्य के इन श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवाद की समस्याएँ ही हमारी चर्चा का विषय हैं। समस्याओं से पहले हमें इस प्रकार के अनुवादों की आवश्यकता और प्रयोजनों की ओर भी दृक्पात कर लेना चाहिए। अपने मंत्रालय की पुस्तिका 'अनुवाद-कला' के आमुख में मैंने अनुवादक को 'संस्कृति के प्रसार और समृद्धि का महत्त्वपूर्ण साधक, भाषाओं की दुर्लंघ्य दीवालों को तोड़ देने वाला, प्रदेशों को परस्पर निकटतर लाने वाला और दुनियाँ की दूरियाँ कम कर देने वाला एक महारथी' बताते हुए उसे 'सांस्कृतिक-वैज्ञानिक पुनर्जागरण का अग्रदूत' कहा है। अनुवादक को यह दरजा एक वाङ्मय के श्रेण्य-ग्रन्थों का रूपान्तर दूसरे वाङ्मय में प्रस्तुत करने पर ही मिलता है। ऐसा करने पर वह दो भाषाओं या राष्ट्रों के बीच सेतु का काम करता है। यह निर्विवाद बात है कि दो संस्कृतियों को परस्पर निकट लाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण पूर्वापेक्षा यही है कि दोनों के श्रेण्य-ग्रन्थों का परस्पर अनुवाद कर दिया जाए। श्रेण्य ग्रन्थों के सफल अनुवादकों को मूल लेखक के साथ ही अमरता मिलती है। मम्मट ने काव्य रचना के ये प्रयोजन गिनाये थे—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

और चूंकि श्रेण्य-ग्रन्थों विशेषतः काव्य ग्रन्थों का सफल अनुवादक स्वयं एक सफल कवि होता है इसलिए मम्मट द्वारा गिनाये गये ये प्रयोजन उसी रूप में अनुवादक-कवि के प्रसंग में भी लागू होते हैं। आज फिटजेरल्ड का यश या बच्चन का यश उमरखैयाम से कम नहीं है। अच्छे अनुवादक को आज अर्थप्राप्ति के लिए भी विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। व्यवहार ज्ञान, अमंगल का समाधान, सद्यः पर निवृत्ति और कान्तासम्मित उपदेश उत्तम काव्यानुवादों के भी प्रयोजन हो सकते हैं। इन प्रयोजनों के अलावा श्रेण्य ग्रन्थों का सफल अनुवादक एक भाषा के उत्तम ग्रन्थों की सांस्कृतिक थाती को दूसरी भाषा में लाकर दोनों भाषाभाषियों के परस्पर भावगत समन्वय या आदान-प्रदान के द्वार खोल देता है। यह स्वयं अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण

प्रयोजन और सिद्धि है। एक क्षेत्र के या एक देश के कवि को अखिल देशीय या अन्तर्राष्ट्रीय रूप प्राप्त कराने के लिए उसकी कृतियों का दूसरी भाषाओं में किया गया अनुवाद बड़ा सहायक होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित न होता, तो वे न तो नोबुल पुरस्कार प्राप्त कर पाते और न अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा ही इतनी शीघ्रता से उन्हें मिल पाती। श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवाद के इस पहलू पर भी हमें ध्यान रखना होगा।

भारत के श्रेण्य ग्रन्थों के विदेशी भाषाओं में अनुवाद की परम्परा बहुत ही पुरानी है। बौद्ध धर्म के अन्तर्राष्ट्रीय रूप प्राप्त करते ही चीनी, सिंहल, तिब्बती आदि अनेक भाषाओं में महात्मा बुद्ध के उपदेश तुरन्त अनूदित होकर उन-उन देशों में पहुँच गये थे और फिर अनुवादों के अनुवाद आगे और प्रसारित होते रहे। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को चीन, तिब्बत, मंगोलिया में उन भाषाओं में कुछ ऐसे अनूदित ग्रन्थ मिले थे, जिनके मूल संस्कृत ग्रन्थ आज भारत में उपलब्ध नहीं हैं, यद्यपि उन अनुवादों में यह ऋण स्वीकार किया गया है। रामायण और महाभारत की कथाएँ पूर्वी एशिया—इण्डोनेशिया, स्याम, अनाम, कम्बोडिया आदि देशों में गुप्त युग तक अवश्य पहुँच चुकी थीं। चान आदि देशों से भारत आने वाले यात्री अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ भारत के ग्रन्थरत्नों के अनुवाद अपने देशों में ले जाना अपनी जोखिमपूर्ण भारत यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य मानने थे। अरब में भी भारत की कहानियों और ज्योतिष तथा आयुर्वेद के ग्रंथरत्नों के अनुवाद दूसरी सहस्राब्दी के शुरू में ही पहुँच गये थे। करकट और दमनक की पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों के अरबी और फारसी अनुवाद बहुत समय पहले हो गये थे। पंचतंत्र की अनेक कहानियों की जो छाप ईसप की कहानियों में देखकर प्राच्यवेत्ता चमत्कृत हुए थे, वह उस समय अरब के जरिए पश्चिमी भाषाओं में पंचतन्त्र के अनुवाद के कारण सम्भव हो सका था। दुनियाँ की प्रायः चालीस समृद्ध भाषाओं में पंचतन्त्र के अनुवाद आज मिलते हैं और इनमें से अधिकांश अनुवाद आज के संचार साधनों के विकास के युग से पहले के ही हैं। अंकों को अरबी में 'हिन्दसा' कहा जाता है, जो उनके भारतीय उद्भव का स्पष्ट द्योतक

है। भारतीय अंकगणना और दशमलव पद्धति भारतीय गणित ग्रन्थों के अरबी में किये गये अनुवादों के कारण वहाँ पहुँची थी और बाद में फिर अरब से होकर वह पश्चिम के दूसरे देशों में पहुँची। भारत के संविधान में इसी कारण अरबी अंकों को 'भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप' की संज्ञा दी गई है। इसके स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि भारत के ज्योतिष और आयुर्वेद के अनेक सुप्रसिद्ध ग्रंथों के अनुवाद भी अरबी मे हुए थे और आज यूनानी चिकित्सा पद्धति भारत की आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। यही बात अरबी ज्योतिष और भारतीय ज्योतिष के बारे में भी कही जाती है। यद्यपि कुछ लोगों का विचार है कि अरबी ज्योतिष से भारतीय ज्योतिष ने कई बातें ग्रहण की थीं। इस बात से हमें प्रयोजन नहीं कि प्रक्रिया आदान की रही थी, या प्रदान की। दोनों ही रूपों में एक बात निश्चित है कि दो समृद्ध सभ्यताएँ जब एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं, तो उनमें परस्पर कुछ आदान-प्रदान अवश्य होता है और समूचे आदान-प्रदान में दोनों सभ्यताओं के श्रेण्य ग्रन्थों की थाती के परस्पर अनुवाद का बहुत बड़ा योगदान होता है।

और ऐसे ही आदान-प्रदान का अवसर अठारहवीं सदी में भारत में अंग्रेजी, फ्राँसीसी, पोर्चुगीज आदि जातियों के पदार्पण के अवसर पर उपस्थित हुआ। १७७३ में सर विलियम जोन्स ने शकुन्तला का एक अनुवाद अंग्रेजी मे तैयार किया। इस अनुवाद ने शायद इस युग की एक बहुत बड़ी बौद्धिक क्रान्ति को जन्म दिया। प्राच्यवेत्ता उसे 'संस्कृति की खोज' नाम से पुकारते है। गेटे ने इस अनुवाद को पढ़कर अपने जो पद्यबद्ध उद्गार शाकुन्तल के बारे में प्रकट किये थे, उनको सुनकर पश्चिमी यूरोप के सभी देशों में—विशेषकर जर्मनी में—संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करने और संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेजी, जर्मन, इतालवी और फ्रेंच में अनुवाद तैयार करने की होड़ सी लग गयी। संस्कृत पढ़ने के बाद जब उन विद्वानों ने संस्कृत में अपनी भाषाओं से मिलते-जुलते शब्द देखे, तो उन्होंने अनेक तुलनात्मक शब्द-संकलन और व्याकरण तैयार किये। इसने भाषा विज्ञान नामक एक नये शास्त्र को जन्म दिया। इस परम्परा में सर विलियम जोन्स, कोल ब्रुक, फ्रेडरिक वान श्लेगल, हुम्योल्ट, रेस्मस रैस्क, जैकब

ग्रिम, फ्रॉन्स बाप, आगस्ट पाट, रैप, रूडल्फ राथ, ओटो वाटलिक, श्लाइखर, कुर्टिअस, मैंडविग, मैक्समूलर, मैकडोनल, ह्विटनी, स्टेन्थल, ब्रुगमैन, ग्रासमैन, बर्नर, डैलबुक, पाल, ब्रीत्स, टकर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रसंग में यूरोपीय भाषाओं से जो अनुवाद उस समय भारतीय भाषाओं में हुए उनमें मुख्यतः धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद थे। श्रीरामपुर के पादरियों ने इस दिशा में बहुत कुछ काम किया। विलियम केरी ने बाइबिल और इंजील के अनुवाद हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, बंगला, उड़िया, तमिल, तेलुगु आदि भारत की प्रायः सभी भाषाओं में प्रकाशित कराए। भारत के धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद भी यूरोपीय भाषाओं में किये गये। 'सेक्रेड बुक्स आफ़ ईस्ट' पुस्तकमाला के अन्तर्गत मैक्समूलर ने अनेक भारतीय धार्मिक ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद सम्पादित किये। गीता और उपनिषदों के तो अंग्रेजी में कई अच्छे अनुवाद मिलते हैं। इनमें से अनेक का पश्चिम की दूसरी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है।

विकासशील भाषाओं के कवि समृद्ध भाषाओं के ग्रंथरत्नों का अनुवाद अपनी भाषाओं में सदैव करते रहे हैं। आज जिसे डंके की चोट पर विश्व की समृद्धतम भाषा उद्घोषित किया जा रहा है, उस अंग्रेज़ी का आदि कवि चासर भी एक स्वतन्त्र अनुवादक ही था। उसकी 'कैंटरबरी टेल्स' पर 'डिकैमरीन' और 'रोमन ड़ि ला रोज़' की छाया ही नहीं खोजी गई है, अनेक अंश तक अनूदित पाये गये हैं। चासर के बाद भी अनेक अंग्रेजी कवि फ्रेंच के ग्रन्थ रत्नों का अनुवाद करते रहे। यही नहीं, भूमिका में वे यह कहते भी थे कि परिष्कृत फ्रेंच की ये कविताएँ उनकी अपनी भाषा अंग्रेजी में भी अभिव्यक्त की जा सकती हैं, इसे सिद्ध करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया है। आगे चल कर विक्टोरियन युग के अनेक अंग्रेज़ी कवियों ने ग्रीक और इतालवी के ग्रन्थरत्नों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया। होमर, सोफोक्लीज़, ऐस्काइलस, पिंडार आदि के अनेक काव्य-ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। ड्राइडन और पोप इस आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। क्लासिक्स के अनुवादों की ओर और उनकी परम्पराओं की ओर झुकाव के कारण ही अंग्रेजी साहित्य का यह युग क्लासिकल युग कहा जाता है। अनुवादों की इस परम्परा ने अंग्रेजी साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया। फ्रेंच, इतालवी और ग्रीक के अनुवादों के बाद कुछ लोग और आगे की ओर

बढ़े। फ़िटजेरल्ड द्वारा किया गया 'उमर खैयाम' का अनुवाद एक ऐसा अमर अनुवाद है, जिसका उल्लेख किये बिना श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवाद की प्रत्येक चर्चा अधूरी ही रहेगी। आज सभी यह मानते हैं कि उमर खैयाम का अनुवादक फिट-जेरल्ड मूल कवि पहले है और अनुवादक बाद को। वस्तुतः फिटजेरल्ड में ये सभी गुण थे, जो एक विदेश के श्रेण्य काव्यग्रन्थ के अनुवाद के लिए अपेक्षित होते हैं। अपने श्रेष्ठ अनुवाद से फिटजेरल्ड ने न केवल अपने को ही अमर बनाया, बल्कि उमर खैयाम और उनकी रुबाइयों को भी विश्वव्यापी रूप प्रदान कर दिया। आज के प्रत्येक अनुवादक के लिए फिटजेरल्ड का आदर्श एक बड़ा ही उपयोगी आदर्श है। प्रत्येक अनुवादक अपने को उस स्तर तक लाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। अनुवाद परम्परा के प्रत्येक इतिहास में फिटजेरल्ड का नाम युगों तक स्वर्णाक्षिरों में अंकित रहेगा।

श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवाद की परम्परा के इस इतिहास की ओर हमने एक संकेत ही किया है। अनेक देशों के प्रवीण और सिद्धहस्त अनुवादकों ने अठारहवीं, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में अपनी भाषाओं को समृद्ध करने की दृष्टि से जो असंख्य अनुवाद किये है, उन सब की गणना का काम यूनेस्को जैसी संस्थाओं को अपने हाथ में लेना चाहिए। ताजे अनुवादों की अनुक्रमणिका बनाने का काम तो यूनेस्को ने अपने हाथ में ले ही लिया है और पिछले कुछ वर्षों से अनुवादों की वार्षिक सूची वह 'इण्डैक्स ट्रांसलेशन्स' नामक ग्रन्थ सूची के रूप में निकाल रहा है। हम आशा करते हैं कि 'अनुवाद का विस्तृत इतिहास' लिखने का काम भी यूनेस्को शीघ्र ही अपने हाथ में लेगा।

जिस प्रकार अंग्रेजी भाषा में कविता का विकास अनुवादों की परम्परा से हुआ, उसी प्रकार हिन्दी में गद्य परम्परा के विकास में अनुवादकों का बड़ा योग-दान रहा। विक्रम सम्वत् १७६८ में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषायोगवाशिष्ठ' नाम से सुथरी खड़ी बोली में योगवाशिष्ठ का अनुवाद प्रस्तुत किया। रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'अब तक पाई गई पुस्तकों में यह योगवाशिष्ठ ही सबसे पुराना है, जिसमें गद्य अपने परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ता है। अतः जब तक और कोई पुस्तक इससे पुरानी न मिले, तब तक इसी को परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक और रामप्रसाद निरंजनी को प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक मान

सकते हैं।' इस प्रकार पहला हिन्दी गद्यकार एक श्रेण्य ग्रन्थ का एक अनुवादक ही था। बाद में सम्वत् १८२३ में पं० दौलतराम ने जैन पद्म-पुराण का भाषानुवाद प्रस्तुत किया। फोर्ट विलियम कालेज के अन्दर या बाहर उन्नीसवीं सदी के अन्त में जो गद्यकार चतुष्टय आगे आया—मुन्शी सदासुखलाल, मुंशी इंशाअल्लाह खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र—उनकी प्रमुख पुस्तकें—इंशा की कहानी को छोड़कर—अनूदित ग्रन्थ ही थीं। लल्लूलाल ने प्रेम सागर (भागवत दशम स्कन्ध) के अलावा सिंहासन बत्तीसी, बैतालपच्चीसी और शकुन्तला नाटक के भी अनुवाद किये। किन्तु शाकुन्तल का सरस, विशुद्ध और परिमार्जित अनुवाद कुछ समय बाद संवत् १९१९ मे राजा लक्ष्मणसिंह ने प्रस्तुत किया। उनके गद्य का एक उदाहरण देखिए—'अनुसूया (हौले प्रियंवदा से)—'सखी, मैं भी इसी सोच-विचार में हूँ, अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रगट) महात्मा, तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़कर यहाँ पधारे हो? क्या कारण है जिससे तुमने अपने कोमल गात को कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया?' राजा लक्ष्मणसिंह के इस अनुवाद का इसलिए तो महत्त्व है ही कि उन्होंने उस समय चलने वाले भाषा के रूप विषयक विवाद का एक व्यावहारिक और निश्चित समाधान प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त हमारे समग्र अनुवाद साहित्य में भी इसका अपूर्व स्थान है और यदि मैं राजा लक्ष्मण सिंह को आधुनिक हिन्दी श्रेण्य अनुवादों का जनक कहूँ, तो उसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवादों की बाढ़ आई। संस्कृत और बंगला नाटकों के अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए। स्वयं भारतेन्दु के सुप्रसिद्ध नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' पर चंड कौशिक की छाप बताई जाती है। पर उसे मौलिक भी मानें, तो भी नीचे लिखे नाटक तो अनुवाद थे ही, विद्यासुन्दरम्, पाखण्डविखण्डन, धनंजयविजय, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस और भारत जननी। इनमें से कुछ संस्कृत से अनूदित हैं, कुछ बंगला से। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने भी अनेक श्रेष्ठ बंगला नाटकों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किये। द्विजेन्द्रलाल राय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों के अनुवाद भी हिन्दी मे धड़ाधड़ निकले।

इन अनुवादकों में पं० रूपनारायण पांडे का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। संस्कृत से अनुवाद करने वालों में रायबहादुर लाला सीताराम 'भूप' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने धड़ाधड़ नागानन्द, मृच्छकटिक, महावीरचरित, उत्तररामचरित, मालतीमाधव और मालविकाग्निमित्र के अनुवाद निकाल दिये। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने वेणीसंहार और शाकुन्तल के अनुवाद प्रस्तुत किये। बालमुकुन्द गुप्त ने भारतेन्दु के रत्नावली नाटिका के अपूर्ण अनुवाद को पूरा किया। सत्यनारायण कविरत्न ने उत्तररामचरित और मालतीमाधव के सरस अनुवाद प्रस्तुत किये। उन्हें 'हिन्दी भवभूति' के नाम से पुकारा जाता है। इन अनुवादकों ने राजा लक्ष्मणसिंह की परम्परा के अनुसार संस्कृत गद्य का अनुवाद खड़ी बोली गद्य में और संस्कृत पद्य का ब्रज पद्य में किया है। खड़ी बोली गद्य का तब तक विकास नहीं हो पाया था। मालतीमाधव के अनुवाद का एक नमूना देखिए :—

"माधव-मन गम्भीर थिर शान्त समुद्र समान
लखि मालति मुख पूर्ण शशि सो लाग्यो लहरान"

माधव (आप ही आप) वाह, क्या बात बनाई है, क्या चाल है। आरम्भ देखने में कैसा सरल है, उसे बड़ाई देने के लिए कैसे-कैसे यत्न किये गये हैं, इसमें न जाने कितनी युक्तियाँ हैं।..."

संस्कृत नाटकों के अलावा कुछ अंग्रेजी नाटकों के भी हिन्दी अनुवाद किये गये। भारतेन्दु ने 'मर्चेंट आफ वेनिस' का रूपान्तर 'दुर्लभ बन्धु' नाम से प्रस्तुत किया। लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' की कठोर समालोचना अपनी पत्रिका कादम्बिनी में करते हुए बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने लिखा था—"ग़र्ज़ कि इस सफहे की कुल स्पीचें 'मर्चेंट आफ वेनिस' से ली गईं। पहले तो मैं यह पूछता हूँ कि विवाह में मुद्रिका परिवर्तन की रीति इस देश की नहीं, बल्कि यूरोप की है।..." उनके रणधीर-प्रेम मोहिनी पर भी 'रोम्यो एण्ड जूलियट' की स्पष्ट छाप है। तो इस प्रकार हिन्दी नाटककार अंग्रेजी नाटकों से प्रभावित तो पहले ही होने लगे थे किन्तु हिन्दी में शेक्सपियर के कुछ श्रेष्ठ नाटकों के अनुवाद संवत् १९५० के आस-पास हुए। पुरोहित गोपीनाथ ने 'रोम्यो एण्ड जूलियट' (प्रेमलीला नाम से), 'ऐज यू लाइक इट' और 'मरचेंट आफ वेनिस' के

अनुवाद किए। पं० मथुरा प्रसाद चौधरी ने मैकबेथ का अनुवाद 'साहसेन्द्र साहस' के नाम से किया। कुछ समय बाद 'हैमलेट' का अनुवाद भी 'जयन्त' नाम से निकला। लाला सीताराम ने भी शेक्सपियर के कुछ नाटकों के अनुवाद किये।

नाटकों के अनुवाद के साथ-साथ ही बंगला उपन्यासों के अनुवादों की भी बाढ़ आई। भारतेन्दु ने स्वयं एक बंगला उपन्यास का अनुवाद शुरू किया था, जिसे वे पूरा नही कर पाये। प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी ने भी कई उपन्यासों के अनुवाद किये। इस दिशा में गदाधरसिंह, राधाकृष्ण दास, कार्तिकप्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा, बाबू गोपालराय गहमरी, रूप-नारायण पांडे, ईश्वरीप्रसाद शर्मा जैसे अनुवादको के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने बंकिम, शरत्, रवीन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, हाराणचन्द्र रक्षित, चण्डीचरण सेन, चारुचन्द्र आदि बंगला के प्रायः सभी प्रसिद्ध उपन्यासकारों के श्रेष्ठ अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किये। कुछ अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद का भी सूत्रपात हो गया।

हिन्दी कविता के क्षेत्र में भी अनुवाद की कहानी बहुत पीछे नहीं जाती है। अपने सूत्रों के लिए संस्कृत के कई ग्रन्थों के आभारी होते हुए भी तुलसी-दास अनुवादक न थे। सूरसागर भी भागवत का पद्यानुवाद नहीं है। रीति कवियों ने अवश्य संस्कृत रीतिग्रन्थों को अपना आदर्श बनाया और कुछ ने मुक्त अनुवाद भी किये। इस प्रसंग में महाराजा जसवन्तसिंह के भाषा-भूषण का उल्लेख किया जा सकता है, जिस पर चन्द्रालोक की छाया स्पष्ट है :

अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्योदार्यादिवर्णनम्
त्वयि दातरि राजेन्द्र याचकाः कल्पशाखिनः

(चन्द्रालोक)

अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अतिसय रूप
जाचक तेरे दान तै भये कल्पतरु भूप

(भाषा भूषण)

परन्तु जैसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने माना है, रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत के किसी भी लक्षण ग्रन्थ का पूरा-पूरा अनुवाद नहीं किया और इसी से केवल हिन्दी रीति ग्रन्थ पढ़ने वाले का ज्ञान अधूरा ही रहता है। संस्कृत

काव्य-ग्रन्थों का अनुवाद भी आधुनिक काल में ही शुरू हुआ, यद्यपि वाल्मीकि रामायण और भागवत के कुछ अनुवादों के उल्लेख मिलते हैं। भारतेन्दु काल में ठाकुर जगमोहन सिंह ने कालिदास के मेघदूत का कवित्त-सवैयों में सरस अनुवाद प्रस्तुत किया। लाला सीताराम ने भी रघुवंश का अनुवाद दोहा चौपाइयों में और मेघदूत का अनुवाद घनाक्षरी में किया। इस दिशा में सबसे अधिक उल्लेखनीय नाम श्रीधर पाठक का है। उन्हें हम हिन्दी गोल्डस्मिथ कह सकते हैं। उन्होंने 'हरमिट' का 'एकान्तवासी योगी', 'ट्रेवेलर' का 'श्रान्त पथिक' और 'डैजर्टेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' नाम से अनुवाद किया। 'हरमिट' के पद्यानुवाद 'एकान्तवासी योगी' का नमूना देखिए—

आज रात इससे परदेशी चल कीजे विश्राम यहीं
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरे करो ग्रहण संकोच नहीं

श्रीधर पाठक ने हिन्दी पद्यानुवाद को एक निश्चित देन दी है और इसके लिए उनका नाम अविस्मरणीय रहेगा। 'एकान्तवासी योगी' का ही संस्कृत श्लोकों में अनुवाद पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' ने किया। उन्होंने गीतांजलि का हिन्दी पद्यानुवाद किया और माघ के 'शिशुपाल वध' के दो सर्गों का भी पद्यानुवाद प्रस्तुत किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी कुमारसम्भव का संक्षिप्त पद्यानुवाद किया था। एक नमूना लीजिये—

केनाभ्यसूया पदकांक्षिणा ते
नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभिः
यावद्भवत्याहितसायकस्य
मत्कार्मुकस्यास्य निदेशवर्ती

इन्द्रासन के इच्छुक किसने करके तप अतिसय भारी
की उत्पन्न असूया तुझ में मुझ से कहो कथा सारी
मेरा यह अनिवार्य शरासन पांच कुसुम सायक धारी
अभी बना लेवे तत्क्षण ही उसको निज आज्ञाकारी

पं० सत्यनारायण कविरत्न ने मैकाले के अंग्रेजी खण्ड काव्य 'होरेशस' का भी हिन्दी पद्यानुवाद किया था। किन्तु आगे चलकर पद्यानुवादों की परम्परा क्षीण हो गई। यद्यपि यह जानकर आज बड़ा भारी आश्चर्य नहीं होना चाहिए

कि पन्त, निराला और बच्चन जैसे कवि सफल अनुवादक भी हैं। यह आश्चर्य की बात है भी नहीं। अनेक देशों के अनेक युगों के सृजनशील लेखक अनुवाद की ओर आकृष्ट होते रहे हैं। ये नाम देखिए, इन सभी ने अनुवाद कार्य में हाथ लगाया था : होरेस, सिसरो, लूथर, मौंटेन, ड्राइडन, पोप, शैली, कालरिज, मैथ्यू आर्नल्ड, श्लेगल, गेटे, इजरा पाउंड, लुई मैकेनिको, मैलेर्म, वोदलेयर, स्टीफिन ज्विंग और बोरिस पास्तरनाक।

अब हम हाल के दिनों में किये गये श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवादों की ओर आते हैं। एडविन आर्नल्ड ने 'बुद्धचरित' और 'गीत गोविन्द' के अंग्रेजी में अनुवाद करके फिटजेरल्ड की परम्परा को आगे बढ़ाया है। एटकिन्सन ने रामचरितमानस का सफल अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'गीत गोविन्द' और 'रामचरितमानस' के अनुवादों का एक-एक नमूना देखिये:—

सरसमसृणमपि मलयजपंकम्
पश्यति विषमिव वपुषि सशंकम्
राधिका विरहे तव केशव

Krishna till thou come unto her, all the sandals and the flowers
Vex her with their pure perfection though they grow in heavenly bowers

कंकन किंकिनि नूपुर ध्वनि सुनि
कहत लखन सन राम हृदय गुनि

At the sound of the tinkling anklet and bangle
Said Rama to Lakshman, as thoughts 'gan to mingle

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु
जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु

Rama's arrows are flaming fire; nothing but moths
Before him are these night-prowling bands
So take courage and know that the demons will surely
And soon be burnt up at his hands.

प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों के अनुवाद रूसी आदि भाषाओं में हो चुके हैं। कुछ अन्य भारतीय लेखकों के ग्रन्थों के अनुवाद रूसी में किये जा रहे हैं। हाल में भारतीय ज्ञानपीठ ने भारतीय श्रेण्य ग्रन्थों के विदेशी भाषाओं, विशेषतः अंग्रेजी में अनुवाद की एक विस्तृत योजना बनाई है। आशा है कि ये अनुवाद भी यथाशीघ्र निकलेंगे।

अंग्रेजी और दूसरी विदेशी भाषाओं तथा प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के श्रेण्य-ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवादों की आज बाढ़ आई हुई है। कुछ प्रयत्न तो साहित्य अकादेमी, नेशनल बुक ट्रस्ट जैसी संस्थाओं, राज्य सरकारों और कुछ विश्वविद्यालयों के द्वारा आयोजित रूप में किये जा रहे हैं और कुछ फुटकर लेखकों-प्रकाशकों द्वारा स्वतन्त्र रूप में। आकाशवाणी भी श्रेण्य-ग्रन्थों के संक्षिप्त रेडियो रूपान्तर अपने प्रसारण के लिए तैयार करती रहती है। देश के भावगत एकीकरण की आवश्यकता की दृष्टि से भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद के प्रयत्नों की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। साहित्य अकादेमी ने भारतीय भाषाओं ने परस्पर अनुवाद के लिए १५१ रचनाएँ चुनी हैं। असमिया की १०, उड़िया की १२, उर्दू की ९, कन्नड़ की ६, कश्मीरी की ८, गुजराती की १२, तमिल की १०, तेलुगु की १४, बंगला की १४, मराठी की १३, मलयालम की ११, संस्कृत की ७ और हिन्दी की १६। इस शृंखला में उसे २१०० अनुवाद प्रकाशित करने होंगे। उसने अपने अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी विश्व की १४ प्रमुख भाषाओं के ३६ श्रेण्य-ग्रन्थों को चुना है, जिनके अनुवाद देश की सभी भाषाओ में प्रकाशित कराये जाएँगे। अकेले अंग्रेजी के ही आठ ग्रन्थ चुने गये हैं, ग्रीक के छः और फ्रेंच के चार। विदेशी भाषाओं में अनुवाद के लिए उसने यूनेस्को को ३५ भारतीय श्रेण्य-ग्रन्थों के नाम सुझाए हैं। इन सभी ग्रन्थों के ब्यौरे अकादेमी की वार्षिक रिपोर्ट में देखे जा सकते हैं।

इसी प्रकार का कार्यक्रम नेशनल बुक ट्रस्ट ने भी भारतीय भाषाओं में सत्साहित्य के प्रकाशन को बढ़ावा देने और ऐसे साहित्य को पुस्तकालयों, शिक्षा संस्थाओं और सामान्य पाठकों के लिये सस्ते मूल्य पर सुलभ करने के उद्देश्य से बनाया है। साहित्य अकादेमी के प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक अनूदित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और वह तेजी से अपने कार्यक्रम को सफल बनाने की ओर

अग्रसर है, यद्यपि पिछले पाँच छ: वर्षों में वह तीन सौ से कम ग्रन्थ ही निकाल पाई है। नेशनल बुक ट्रस्ट के काम में अभी उतनी तेजी नहीं आ पाई है, यद्यपि उसने देश भर के अनुवादकों की एक पंजी बनाकर बड़ा ही उपयोगी काम किया है।

इन संस्थाओं के बाहर भी प्रकाशनगृहों ने बहुत काम किया है। हाल में स्वर्गीय डॉ० रांगेय राघव इस युग के एक बहुप्रज्ञ अनुवादक थे। उन्होंने शेक्सपियर के अनेक नाटकों के अनुवाद धड़ाधड़ कर डाले। उन्होंने सोफोक्लीज के एंटीगोने का भी अनुवाद किया है। उन्होंने होमर के इलियट और ओडिसी के अनुवाद का भी काम हाथ में लिया था। डॉ० रांगेय राघव वैसे भी एक प्रतिभाशाली और बहुप्रज्ञ लेखक थे और इन अनुवादों के बिना भी वे बहुत समय तक अजर अमर रहेंगे। उनतालीस वर्ष की अल्पायु में उन्होंने १३० से ऊपर ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु इन अनुवादों के बारे में लोगों को बहुत शिकायत है कि ये बड़ी ही जल्दी में किये गये हैं। अनुवाद की सभी प्रकार की भूलें इनमें मिलती हैं और इनसे ही शेक्सपियर को पढ़ने वाला शेक्सपियर के महत्त्व को बिलकुल नहीं समझ सकता। ये अनुवाद वैसे भी बहुत लद्धड़ हैं। एंटीगोने के अनुवाद की ऐसी पंक्तियाँ पढ़ने वाला अमर ग्रीक नाटककार सोफोक्लीज के बारे में क्या धारणा बनाएगा—

"यही भाग्य था, अरी बालिके, निर्जन कुंजों में बन्दिनि कर
देने को भी तो कारा थी कब्र-सदृश ही
वहाँ नहीं था दिवस कभी भी होता सचमुच।
ओ सम्राट पुत्रि, उसके कुलीनतम गर्भक्षेत्र ने
जियस देवता से पाया था स्वर्णिम वर्षण
जीवन का, जो उसने पोषित करके रक्खा तन में।"

शेक्सपियर के अनुवाद में बच्चनजी ने बहुत काम किया है और उनके 'मैकबेथ' और 'ओथेलो' उनके द्वारा किए गए अथक परिश्रम के ही प्रतीक हैं। 'ओथेलो' की समीक्षा करते समय मैंने कहा था : "यह मणि-कांचन संयोग ही है कि शेक्सपियर का हिन्दी अनुवाद बच्चन जी जैसे लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी कवि और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में डाक्टरेट पाने वाले भूतपूर्व कुशल अंग्रेजी

प्राध्यापक द्वारा किया जाए।" मै मानता हूँ कि शेक्सपियर के मूल कवित्व की रक्षा में बच्चन का कवि अधिकांशतः सफल हुआ है। कुछ उदाहरण लें :

Lady Macbeth :

Was the hope drunk
Wherein you dressed yourself ? Hath it
slept since?
And wakes it now to look so green and pale
At what it did so freely ? From this time
Such I account thy love. Art thou afraid
To be the same in thine own act and valour
As thou art in desire ?

क्या यह आशा मदमाती थी
जिसे लगाया था तुमने अपने अंगों से ?
क्या तबसे सुप्त पड़ी थी और जगी अब
रूप रंग खोकर उमंग से किये काम पर
अचरज करती ? और आज से इसी तरह का
प्रेम तुम्हारा मैं समझूंगी। क्या तुम अपने
काम और बल से वह बनने से डरते हो
जिसकी तुमने अपने लिए कल्पना की है ?

या 'ओथेलो' की ये पंक्तियां—

गहरे कंदर से बदले को काली छाया शीश उठा अब

× × ×

उसके तन को जो कि स्वच्छ हिम से उज्ज्वल है जो समाधि में
लगने वाले संगमरमर से भी चिकना है

× × ×

ओ मेरे प्राणों की पुलकन ! यदि हर झंझा
हो समाप्त ऐसी कलिका की मुसकानों पर
तो तूफानों से कह दो वे इतना गरजें

इतना तड़पें, प्रलय जग पड़े औ' समुद्र से
लड़ती नावें उठें पर्वताकार तरंगों
की चोटी पर और गिरें फिर नीचे, इतना
नीचे जितना नरक स्वर्ग से।

× × ×

अनिल विलोड़ित उग्र सिन्धु के उच्च हिलोरे
उत्तर के सप्तर्षि सितारों की आंखों पर
छींट मारते और अचंचल ध्रुव के रक्षक
नक्षत्रों को नहला देते, इतना क्रुद्ध
क्षुब्ध सागर को मैंने कभी नहीं देखा है।

× × ×

इस प्रकार बच्चन जी द्वारा किये गये ये अनुवाद बड़े ही सफल अनुवाद हैं। जहाँ बच्चन जी ने अपनी ओर से कुछ बढ़ाया-चढ़ाया है, उसने भी मूल भाव की श्रीवृद्धि ही की है। अपनी उसी समीक्षा में मैंने 'ओथेलो' की कुछ पंक्तियों के अपूर्ण अनुवादों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया था, जैसे—

...mere prattle without practice
Is all his soldiership.

"हाथों में तलवार की जगह जबड़ों के अन्दर कैंची है"

या अंग्रेजी मुहावरों के ये शब्दानुवाद—

भद्र महोदय हमें आपके हथियारों से
अधिक आपकी उम्र झुकाने में समर्थ है।

या

लाखों हैं जो रोज रात को
नाजाइज तोशक तकियों पर सोते हैं

फिर भी आज अंग्रेजी श्रेण्य-ग्रन्थों का अनुवाद अपने हाथ में लेने वाले प्रत्येक हिन्दी अनुवादक के लिए बच्चन जी के इन दोनों अनुवादों को ध्यान से देख-पढ़ लेना उपयोगी होगा। इसी प्रकार सी० बालकृष्ण राव ने मिल्टन के 'सैम्सन एगोनिस्टीज' का सफल पद्यानुवाद किया है।

इस प्रसंग में शेक्सपियर के सानेटों का अपने द्वारा किये गये पद्यानुवाद का भी मैं विनम्रतापूर्वक उल्लेख करूँगा। यह १९५८ के अन्त की ओर प्रकाशित हुआ था। इसमें मुझे उन अनेक कठिनाइयों का व्यावहारिक अनुभव हुआ, जो किसी भी हिन्दी भाषी को अंग्रेजी श्रेण्य-ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद करने में हो सकती हैं। आगे चलकर श्रेण्य-ग्रन्थों के अनुवाद की कठिनाइयों की चर्चा के समय अपने इस अनुवाद के कुछ उदाहरणों की बानगी मैं दूँगा।

पिछली कुछ दशाब्दियों में अंग्रेजी और फ्रेंच के कथा साहित्य के ग्रन्थ-रत्नों का तेजी से हिन्दी में अनुवाद किया गया है। इन यूरोपीय कथाकारों में मोपासाँ, अलेग्जेंडर ड्यूमा, डाफने ड् मौरिये, आन्द्रे मूर्वा, सार्त्र, पर्ल बक, थामस हार्डी और हेमिंग्वे के नाम उल्लेखनीय हैं। हाल में हिन्दी पाकिट बुक्स का जो प्रचार बढ़ा है, उसने भी विश्व के संक्षिप्त हिन्दी अनुवादों का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

श्रेण्य-ग्रन्थों के देश-विदेश की इस संक्षिप्त चर्चा के बाद अब हम श्रेण्य ग्रन्थों के अनुवाद में होने वाली कठिनाइयों और समस्याओं को लेते हैं। अनुवादक के लिए यह नितान्त अपेक्षित है कि वह श्रेण्य-ग्रन्थों का चुनाव करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखे कि वह मूल लेखक के साथ न्याय कर सकेगा या नहीं। काव्यमर्मज्ञों ने रस परिपाक में सहृदय को एक आवश्यक अंग माना है और जब सहृदय का कवि की भावनाओं के साथ पूर्ण साधारणीकरण हो जाता है, तभी यह रस-परिपाक सम्यक्तया हो पाता है। दूसरी भाषाओं के गौरव-ग्रन्थों का रसास्वाद कराने में अनुवादक एक आवश्यक कड़ी है और मूल रचना की भावभूमि और मूल लेखक के साथ उसका पूर्ण साधारणीकरण बड़ा ही आवश्यक है। आदर्श अनुवाद के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि अनुवादक के हृदय में मूल रचना के प्रति सच्चे आदर की भावना हो। जब तक अनुवादक के मन में इस आस्था का अभाव होगा कि 'मूल ग्रन्थ मेरी कला के परिपाक के लिए उपयुक्त है' तब तक अनुवाद कभी परिपूर्ण नहीं हो सकता। इस प्रसंग में अनुवादक को अपनी सृजनात्मक शक्ति की परख कर लेनी चाहिए। उसमें उस कृति का पुनर्निर्माण करने की उत्कट इच्छा होनी चाहिए—प्रायः

वैसी ही प्रेरणात्मक इच्छा, जो किसी भी कलाकार को अपनी किसी कृति के प्रणयन के लिए आतुर करती है।

प्लेटो ने कलाकृति का नकल बताया है, अर्थात् सरिता का वर्णन करने वाले कवि के मन में पहले मूल सरिता की नकल बिम्बित होती है, फिर वह उसके आधार पर उसका वर्णन प्रस्तुत करता है। इसी आधार पर काव्य-अनुवाद तो नकल की नकल की नकल कहा जाएगा। इस दूरी को कम करने के लिए मूल कृति से निकट का तादात्म्य या साधारणीकरण प्राप्त करना अनुवादक कवि के लिए नितान्त आवश्यक है, अन्यथा अनुवादक वंचक होते हैं जैसी इतालवी कहावत के चरितार्थ होने की पूरी गुंजाइश हो जाती है।

प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसी सामग्री होती है, जो दूसरी भाषाओं में उसी रूप में नहीं मिलती। एस्किमो भाषा में शीप (भेड़) शब्द नहीं है। उनके लिए बाइबिल के शीप के रूपकों वाले अनुवाद करना असाध्य होगा। रूसी में अंग्रेजी शब्द Jurisdiction (क्षेत्राधिकार) के लिए कोई समकक्ष शब्द नहीं है और अनुवादक को इस भाव का निर्वाह करने के लिए एक छः शब्दों के गोरखजाल का सहारा लेना पड़ता है। फ्रेंच में ट्रस्टीशिप का सच्चा पर्याय शब्द नहीं है। स्पेनिश में चेयरमैन और प्रेसीडेण्ट का भेद स्पष्ट करने के लिए अलग-अलग शब्द नहीं है। चीनी में स्टियरिंग कमेटी के लिए उपयुक्त शब्द नहीं है। अंग्रेजी pet शब्द सहज अनुवाद्य नहीं है। ये सारी स्थितियाँ अनुवादक को बड़ी कठिनाई में डाल देती हैं। दो देशों की सामाजिक सांस्कृतिक परम्परा या भौगोलिक स्थिति में अन्तर होने पर तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

इस प्रकार किन्हीं दो भाषाओं की प्रकृति एक न होने पर उनके बीच अनुवाद कार्य बड़ा दुष्कर हो जाता है। कविता में शब्द विच्छित्ति और शब्दालंकारों का विशिष्ट स्थान होता है और इसलिए कविता का अनुवाद बड़ा कठिन होता है। ऐसी कठिनाइयों का सामना मुझे भी शेक्सपियर के सानेटों का अनुवाद करते समय हुआ था, और इनमें से कुछ का समाधान तो मैंने खोज लिया था और कुछ असमाधेय बनी रही। उदाहरण के लिए नीचे लिखे यमकों का अनुवाद यमक में ही संभव नहीं हो सका:—

प्रोफिटलैस यूजरर ह्वाई डस्ट दाउ यूज (सानेट ४, पंक्ति ७)

ओ निर्लभ कुसीदक करता क्यों उसका उपयोग (अनुवाद)

× ×

दैट यूज इज नौट फोरबिडेन यूजरी (सानेट ६, पंक्ति ५)

× ×

यह वर्जित कौसीद्य नहीं है, है सुन्दर उपयोग (अनुवाद)

कुछ शाब्दिक खिलवाड़ों का भी समाधान खोजा जा सकता है, जैसे—

दोज लिप्स दैट लव्स ओन हैंड डिड मेक
ब्रेद्ड फोर्थ द साउंड दैट सैड आई हेट

× ×

'आई हैट' फ्रौम हैट अवे शी थ्र्यू
एंड सेव्ड माई लाइफ सेइंग 'नौट यू'

(सानेट १४५, १, २, १३, १४)

वे मधु अधर रचा था जिन्हें प्यार ने स्वयं संवार
करूँ मैं घृणा किये जा रहे, इस ध्वनि का उद्गार

× × ×

'करूँ मैं घृणा' में घृणा कह आगे विराम को छोड़
बचा दिया यह मेरा जीवन आगे 'तुम्हें न' जोड़ (अनुवाद)

हाँ अर्थालंकारों के विषय में यदि सावधानी से कार्य किया जाए, तो ऐसी कठिनाई नहीं रहती। रूपक और अर्थश्लेष का यह निर्वाह देखिए :

'इफ ए ट्रू कांकर्ड आफ वेल ट्यून्ड साउंड्स
बाई यूनियन्स मेरीड डू औफेंड दाई इयर

× × ×

मार्क हाऊ वन स्ट्रिंग स्वीट हस्बैंड टु एनदर
स्ट्राइक्स ईच इन ईच बाई म्युचुअल आर्डरिंग (८-५, ६, ६, १०)

× × ×

राग बद्ध ध्वनियों की सच्ची यदि एकता पुनीत,
भेद रही श्रुति कुहर तुम्हारे, मधुर मिलन-परिणीत,

× × ×

देखो कैसे एक तार बनता तन्त्री का कान्त,
सबको करता प्रहत परस्पर दे आदेश नितान्त, (अनुवाद)

परन्तु शब्दश्लेष की दिशा में यह सफलता नहीं मिल सकती—

लव्स आई इज नोट सो ट्रू एज औलमैन्स नो (१४८-८)
जग के 'न' से न सच्चे कहीं प्रेम-लोचन अनजान (अनुवाद)

इसमें 'आई' के दो शब्दार्थों (लोचन, हां) का निर्वाह नहीं हो सका। इसी प्रकार—

बोर्न औन दि बाइर विद ह्वाइट एंड ब्रिस्टली वियर्ड (१२-८)
सित कठोर हो फिर अर्थी पर चढ़ जायें खलिहान (अनुवाद)

इसमें भी दोनों शब्दार्थ लाने का प्रयत्न पूर्ण सफल नहीं हो सका, यद्यपि दोनों अर्थों का संकेत स्पष्ट है।

रूपक का एडविन आर्नल्ड का यह अनुवाद भी देखिए—

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम्

Whose broad brow, with the tilak spot above
Shames the bright moon all full with fleck of cloud

और मेरा यह अनुवाद—

मेरी है प्रगल्भ लघु नौका उससे तुच्छ अपार
तेरे विस्तृत छविनिधि को स्वेच्छा से करती पार (सानेट ८०, ७-८)

× × ×

इस अनुपम वर्णन से अधिक कि तुम हो तुम से एक (सानेट ८४, २)

और यह विरह वर्णन :

निठुर शीत सा कितना दारुण यह था विरह अपार
तेरा, तुम बीतते वर्ष का जो सुखमय त्योहार !
कैसी ठिठुरन सही और देखे दुर्दिन विकराल।
जीर्ण माघ की वह सर्वत्र शून्यता कुटिल कराल।
उस पर अरे वियोग-काल, यह था वसन्त का काल,
हिलमिल गाते सुभग शरत सी गर्भित ऋद्धि विशाल,
धारे नववय का वह परम-अपावन क्रीड़न-भार,

पति की मृत्यु बाद विधवा के गर्भतुल्य साकार,
पर प्रतीत होता था मुझ को यह प्रसूति संभार
निराश्रितों की आशा, पितृवंचित फल सा बेकार,
तेरी आश्रित मधु-ऋतु उसके मधुरिम वे त्योहार,
पर तुम दूर, कीर-पिक कलरव अरे, मूक लाचार,
या छेड़ते तान तो लगते रूखे उनके गीत,
दल मुरझाते डरते समझ निकट ही दारुण शीत।
मैंने सहा वसन्त काल में तेरा विरह अपार,
जब वैशाख सजा था गर्वित मंजरियों के भार,
फूंकी थी प्रत्येक कंठ में तरुणाई की तान,
सस्मित शस्य किलकती उसके साथ विपुल गा गान।
तदपि न मोहक राग खगों के और न मधुर सुगन्ध
नाना कुसुमों की, जिनमें हैं विविध वर्ण रस गन्ध,
मुझ से कहला सके न वे कुछ भी वसन्त के गीत,
या निज गर्वित-गोद जन्म थल से अवचित, अपनीत :
हुआ न अचरज श्वेत कमलिनी का विलोक शृंगार,
गाया यश न गुलाब लालिमा का ही रूप निहार,
वे थे सुन्दर मोद स्रोत देते थे अतुलित हर्ष,
तेरे चित्र मात्र से पर, तू उन सबका आदर्श।
तदपि लगा यह शीत काल ही, तुम थे मुझ से दूर,
ज्यों तेरी छाया से, मैं इनसे खेला भरपूर।

अलंकारों आदि के अनुवाद की समस्या का समाधान खोज भी लिया जाए, किन्तु दो जातियों की विभिन्न सांस्कृतिक परम्परा और प्रकृतियाँ अनुवादक के आगे एक अलंघ्य दीवाल सी बन कर खड़ी हो जाती हैं। एडविन आर्नल्ड का पीछे पृष्ठ ११७ पर दिया गया अनुवाद देखिए।

इन सांस्कृतिक और भौगोलिक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए मैंने सानेटों की अपनी भूमिका में लिखा था :

पौराणिक कथाओं के पात्रों के उल्लेख तो परेशानी में डालते ही हैं (क्योंकि वैसे समानान्तर अपने पुराणों में मिलना सर्वत्र संभव नहीं), साथ ही ऋतु-चक्र, प्राकृतिक-उपादान तथा ऐसी ही अनेक बातों के अनुवाद में विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। 'समर' को वसन्त कह देना उचित नहीं, परन्तु उससे एक इंगलैंडवासी का जो अभिप्रेत है, उसकी सिद्धि, भारत में 'ग्रीष्म' कहने से नहीं होती। इसी प्रकार चार तत्त्वों को और नौ वाणियों (म्यूज़ेज़) को यथारूप ले लेना, शस्य देवता 'सैटर्न' का अनुवाद केवल 'शस्य' कर देना, काल के सिथे और 'नाइफ' का अनुवाद दंड और पाश कर देना, रोज़ का अनुवाद कभी-कभी कमल कर देना, 'कैंकर' का अनुवाद 'करील' और 'एप्रिल' का अनुवाद 'मधु-ऋतु या वैशाख', 'फिलोमेल' का अनुवाद 'कोकिल' कर देना प्राकृतिक-चित्र-विधान की दृष्टि से मैंने सर्वथा उपयुक्त समझा है। कुछ पौराणिक नामों का एक विशेष कहानी से सम्बन्ध होने से विशेष महत्त्व होता है, जैसे हैलिन, अडोनिस आदि। इनको अनुवाद में भी यथारूप ले लिया गया है। 'फोनिक्स' एक ऐसा पुराण-कल्पित चिरजीवी पक्षी है, जो मृत्यु के समय जल जाता है और उसके रक्त से पुनः वैसे ही एक नये पक्षी की सृष्टि हो जाती है। एक भारतीय पाठक के लिए 'फोनिक्स' का अनुवाद 'जटायु' या 'गरुड़' आदि कर दिया जाए, तो कुछ स्पष्ट नहीं होता, अतः उसे भी न केवल यथावत् लिया गया है, बल्कि कुछ विशेषण बढ़ाकर मूल कथा की ओर भी संकेत कर दिया गया है—

एंड बर्न दि लौंग-लिव्ड फोनिक्स इन हर ब्लड, (१६-४)
कर दे दग्ध चिरायु विहग फोनिक्स सजीव अछोर। (अनुवाद)

इसी प्रकार 'डायनाज़ मेड' का अनुवाद डायना-कुमारी रखा गया है। 'क्यूपिड' का अनुवाद काम अवश्य किया गया है पर उसे 'काम कलम' कहा गया है। भारत में बालों या धम्मिलों की तुलना शिखी-पिच्छ और नाग से और उनके वर्ण की तुलना घटाओं से की जाती है, पर पश्चिमी कवि उनकी तुलना तारों और मार्जोरम-कलियों से करते हैं—इन्हें भी यथावत् रख लिया गया है। हिमकालीन पतझड़ भारत में नहीं होता, अतः पतझड़ को हिम-पतझड़ कह दिया गया है और एक स्थल पर 'अति-हिम-आवृत' कह कर उसकी तीव्रता की ओर संकेत कर दिया गया है।

एक जाति की एक भाषा से उसी जाति की दूसरी भाषाओं में अनुवाद करते समय परम्पराओं की एकरूपता के कारण कठिनाई नहीं होती :—

राजा लक्ष्मणसिंह का यह अनुवाद देखिए—

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्योकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदु:खैर्नवैः

मो से बनबासीन कौं इतो सतावत मोह
तो गेही कैसें सहें दुहिता प्रथम बिछोह

भारत की किसी भी भाषा में इसके अनुवाद में कठिनाई न होगी, किन्तु यही अनुवाद जब पाश्चात्य भाषाओं में किया जाएगा, तो भाव की उत्कटता के निर्वाह के लिए अवश्य एक कठिनाई खड़ी कर देगा।

इस प्रसंग में एक प्रश्न और उठता है कि विदेशी नाटकों, काव्यों और उपन्यासों आदि का हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करते समय उनकी परिस्थितियों, पात्रों आदि का भारतीयकरण कर लिया जाए या उनका यथावत् अनुवाद किया जाए। इस सम्बन्ध में दो मत हो सकते हैं और दोनों पक्ष अपने-अपने तर्क दे सकते हैं। मेरा दृष्टिकोण यह है कि विभिन्न स्तर के पाठकों के लिए हमें दोनों ही प्रकार के अनुवाद अपेक्षित होंगे। मोलियर के एक नाटक 'तार्त्सुफ उलेंपोस्तर' के हिन्दी स्वतन्त्र-अनुवाद 'ढोंगी' (अनुवादक विनोद रस्तोगी, प्रकाशक आत्माराम एंड संस) की समीक्षा के प्रसंग में यही प्रश्न उठा था। 'संस्कृति' में प्रकाशित समीक्षा के समीक्षक ने लिखा था :

"इन नाटकों का हिन्दी रंगमंच के लिए अनुवाद करते समय क्या इनके पात्रों, स्थितियों, संवादों आदि का भी भारतीयकरण कर दिया जाए? क्या इन रूपान्तरों में मूल नाटककार का केवल कथानक ही लिया जाये और उसके आधार पर, हिन्दी में प्रायः एक नया और सर्वथा पुनर्निर्मित नाटक प्रस्तुत कर दिया जाए?······निष्कर्ष यह है कि विश्व के प्रसिद्ध नाटकों के दो प्रकार के अनुवाद हिन्दी में आने चाहिएँ : एक तो सर्वथा मूल पर आधारित और मूल सापेक्ष अनुवाद और दूसरे मूल कथानक पर आधारित (या भारतीय दृष्टि से कथानक में भी हेरफेर करने वाले) रूपान्तर।

पद्य का पद्यानुवाद करने में अनुवाद के बन्धनों और सीमाओं की मात्रा बढ़ जाती है। गति, लय और तुक के बन्धनों के कारण ऊपर से कुछ जोड़-तोड़ जरूरी हो जाता है। ऐसा करते समय मूल ग्रन्थ के भाव की रक्षा का ध्यान रखना चाहिए और उसे पल्लवित कर देना चाहिए तथा उसकी उत्कटता के ह्रास को रोकना चाहिए। देखिए मेरा यह अनुवाद—

Crating a famine where abundance lies

× × ×

लहराते सागर में बूँदों का रच घोर अकाल (सानेट-१)

इस सबके बाद भी कुछ भाषाओं में अनुवादक को हतप्रभ कर देने वाली दूसरी समस्याएं भी होती है। महाभाष्यकार ने कहा था—स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोऽपराधात्: इसमें स्वराघात या लहजे के बदलने से होने वाले अर्थपरिवर्तन की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था। हैमिटिक परिवार की फुलफुल्डे भाषा में यह स्वराघात बड़ा ही गजब ढाता है। 'मिवरत' का एक स्वर में 'मैं मारूँगा' और दूसरे में 'मै नहीं मारूँगा' अर्थ हो जाता है। हिन्दी का ही एक उदाहरण ले—'आज तुम दफ्तर नहीं जाओगे'। इस सीधे सादे वाक्य में विभिन्न स्वराघातों द्वारा तीन-चार अर्थ निकाले जा सकते हैं— प्रश्नात्मक, आज्ञार्थक, और आज, तुम और दफ़्तर पर जोर देने वाले। ऐसी स्थिति में अनुवादक क्या करे ? केवल कोश ग्रंथों की सहायता से अनुवाद करने वाला तो निश्चय ही असफल रहेगा। कहा जाता है : 'वधिरः कोशवर्जितः'। पर कोश भी भाषा पर अधिकार हुए बिना कुछ सहायता नहीं दे सकते और कुछ तो पथच्युत भी कर सकते है। फिर जब भाषा पर अधिकार हो गया, तो कोशों की आवश्यकता ही क्या रह गई ? अजीब चक्र है।

पीछे मैंने कहा था कि ज्ञान साहित्य के भी श्रेण्य-ग्रन्थ होते हैं। अरस्तू का 'पोइटिक्स', मैकियावेली का 'प्रिंस' जैसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। उन के अनुवाद की भी कुछ समस्याएँ होती हैं, जिनका सम्बन्ध मुख्यतः उस विषय के शास्त्रीय ज्ञान से होता है। इन समस्याओं की उत्कटता उतनी अधिक नहीं होती, जितनी शक्ति साहित्य के श्रेण्य-ग्रन्थो के अनुवाद की समस्याओ की। उसी कारण मैंने उसका संक्षेप में उल्लेख करना ही आवश्यक समझा है।

मेरा निश्चित विचार है कि भारत में आज हम अनुवाद के युग में चल रहे हैं। विशेषतः हिन्दी भाषा की समद्धि की दृष्टि में आज अनुवादों का बहुत महत्त्व है। प्रादेशिक भाषाओं से, संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि प्राचीन भाषाओं से और विदेशी भाषाओं से असंख्य अनुवाद हिन्दी में करके उसे समृद्ध बनाने की महती आवश्यकता आज सभी अनुभव कर रहे है। अनुवादक को सांस्कृतिक वैज्ञानिक पुनर्जागरण का अग्रदूत बनना है। एक सृजनशील लेखक से भी अनुवादक का ज्यादा महत्त्व है। एक सृजनशील लेखक से केवल अपनी ही भाषा के गहरे ज्ञान की अपेक्षा की जाती है किन्तु एक अनुवादक से कम-से-कम दो भाषाओं के गहन ज्ञान की अपेक्षा की जाती है। इसके साथ ही उसे अनुवाद्य-ग्रन्थ के विषय का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे अनुवाद्य-ग्रन्थ के देश और काल के भौगोलिक-सांस्कृतिक वातावरण से भी सुपरिचित होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को अनुवाद अपना पेशा चुनते समय यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि एक सफल अनुवादक का सुयश प्राप्त करने के लिए कितना मूल्य चुकाना होगा और कितनी साधना करनी होगी। जो लोग इसके लिए तैयार हैं, वे अवश्य अनुवाद के क्षेत्र में कूदें। देश को, हिन्दी भाषा को आज असंख्य अनुवादकों की आवश्यकता है और यह कार्य आप जैसे युवक ही कर सकेंगे। पहले तो हिन्दी में कुछ मौलिक रचनाएँ करके हिन्दी भाषा के लेखन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना होगा, क्योंकि हिन्दी की प्रकृति को न समझना हिन्दी अनुवादकों का आज सबसे बड़ा दोष बन गया है। इसके बाद अंग्रेजी के अलावा एक विदेशी भाषा पर और अपनी मातृभाषा के अलावा एक अन्य भारतीय भाषा पर भी पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त करना होगा। विज्ञान या मानव शास्त्रों की किसी एक शाखा का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त किया जा सके, तो यह और भी हितकर होगा। इस प्रकार सुसज्जित होने के बाद आप अपनी भाषा के एक सैनिक के रूप में कटिबद्ध होकर अनुवाद के कार्य को अपनाकर अपनी भाषा के समृद्ध प्रासाद के निर्माण में एक ईंट या खम्भे के रूप में अपना योगदान दे सकते हैं।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य श्रेष्ठान्
श्रेण्यान् ग्रन्थान् अनुवादयत ।

काव्यानुवाद : कठिनाइयाँ एवं सम्भावनाएँ

—प्रो० नगीनचन्द सहगल

सम्पूर्ण वाङ्मय को स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—ज्ञानप्रधान साहित्य अथवा 'शास्त्र' और रसप्रधान साहित्य अथवा 'काव्य'। 'शास्त्र' और 'काव्य' का अन्तर संक्षेप में यह कह कर प्रकट किया जा सकता है कि मूलत: तथ्यात्मक होने के कारण शास्त्र में शास्त्रकार का अनुभव शब्दबद्ध होता है और भावात्मक होने के कारण काव्य में काव्यकार की अनुभूति मुखरित होती है। शास्त्र मुख्यत: मस्तिष्कजन्य होता है और काव्य हृदयप्रसूत। अतएव शास्त्र पाठक को उद्बोधित करता है और काव्य आनन्दित।

'शास्त्र' और 'काव्य' का यह अन्तर स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा। अपने-अपने अनुभव-अनुभूति के बल पर एक ही वर्ण्य-विषय—बादल—का वर्णन शास्त्रकार भी करता है और काव्यकार भी। शास्त्रकार इन शब्दों द्वारा बादल का परिचय देता है :

"बादल जलबिन्दुओं का वह समूह है जो समुद्र, झील एवं नदियों के पानी से वाष्पन द्वारा उत्पन्न भाप के संघनन के कारण वायुमंडल में काफ़ी ऊंचाई पर बन जाता है।"

इस परिभाषा से हमें पता लग जाता है कि बादल क्या होता है, उसे बनाने वाले तत्त्व कौन कौन से हैं और वह अपना बादल रूप किस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करता है। संक्षेप में, बादलविषयक ज्ञान के लिए जो जानकारी अभीष्ट है, वह सब हमें उक्त परिभाषा द्वारा प्राप्त हो जाती है। शास्त्रकार की सफलता की कसौटी भी यही है।

किन्तु काव्यकार केवल तथ्य का आलेखक नहीं होता। वह तो तथ्य को भाव का परिधान प्रदान करता है। अत: शास्त्रकार द्वारा प्रस्तुत बादल की परिभाषा कवि कंठ से इस रूप में प्रस्फुटित होती है :—

धरती का जल सूख-सूख कर उड़ जाता है,
नभ में जाकर वही 'जलद' पदवी पाता है।

यहाँ भी प्रक्रिया वही है जिसका उल्लेख शास्त्रकार किया करता है। कवि की उक्ति में 'वाष्पन' के स्थान पर 'सूख सूख कर उड़ना' है, 'समुद्र, झील, एवं नदियों के पानी' के स्थान पर 'धरती का जल' है और 'वायुमंडल की काफ़ी ऊंचाई' 'नभ' द्वारा अभिव्यक्त कर दी गयी है। किन्तु यहाँ इस स्थूल तथ्य से अधिक भी कुछ है और वही 'कुछ' इस उक्ति का प्राणतत्त्व है, काव्यकार की अनुपम देन है, उसकी कृति का रस है।

वह प्राणतत्त्व क्या है ? बादल के प्रस्तुत चित्र द्वारा कवि मानो मानव-जीवन में साधना अथवा तपस्या का महत्त्व प्रतिपादित कर रहा है। सूर्य की प्रखर रश्मियों के ताप से सूख-सूख कर ऊपर उठने पर ही 'धरती' का जल 'आकाश'—उच्चतम स्थिति– तक पहुँचता है, इतना ही नहीं, स्वयं 'जलद' बन जाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी साधना द्वारा उच्चतम स्थिति तक पहुंच सकता है। इस भाति इन पंक्तियों द्वारा मानो कवि बादल का परिचय देने के बहाने यह संदेश भी दे रहा है कि हमारे कर्त्तव्य-पथ मे आने वाली कठिनाइयाँ हमें पूर्ण सफलता के लक्ष्य तक पहुंचाने वाली सीढ़ियाँ हैं और श्रममूलक प्रयास ही स्थायी प्रगति अथवा गौरवपूर्ण सफलता का मूलाधार बन सकता है।

काव्य-पथ पर अगला कदम उठाने पर बादल का एक नया चित्र हमारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित होता है :

हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव
वारि-वसन, वसुधा के मूल
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर
सलिल-भस्म, मारुत के फूल
हम ही जल में थल, थल में जल
दिन के तम पावक के तूल ····

शास्त्रकार के शब्द उपकरण—सागर, जल, धूम, गगन, अनिल आदि—यहाँ भी विद्यमान हैं, किन्तु समग्र चित्र सर्वथा स्वतंत्र, पूर्णतः नवीन है। काव्य की यही नवीनता उसे शास्त्र से भिन्न करती है और यही विशेषता काव्य के अनुवाद में, शास्त्र के अनुवाद से भिन्न, कुछ विशिष्ट कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती है।

तथ्यप्रधान होने के कारण शास्त्र के अनुवादक की अधिकतर समस्याओं का समाधान दो बातों के आधार पर हो जाता है—१. प्रस्तुत विषय का और २. सम्बन्धित दोनों भाषाओं का सम्यक् ज्ञान। काव्यानुवाद के क्षेत्र में समस्याएँ इतनी सरलसाध्य नहीं होतीं। सामान्यतः सामने आने वाली अनेक कठिनाइयों के अतिरिक्त काव्य के दोनों मुख्य रूपों—गद्य तथा पद्य—और उन दोनों की विविध विधाओं—प्रबन्ध काव्य, गीतिकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के अनुवाद की अपनी अपनी समस्याएं हैं, जिनका सामना प्रत्येक अनुवादक को करना पड़ता है। सामान्यतः कहा जा सकता है कि पद्यात्मक साहित्य अथवा कविता की अपेक्षा गद्यात्मक साहित्य का अनुवाद सहज होता है। इस दृष्टि से पद्यानुवाद को काव्यानुवाद की कसौटी भी माना जा सकता है।

वस्तुतः पद्यानुवाद की कठिनाइयाँ इतनी अधिक एवं प्रत्यक्ष हैं कि उन्होंने यदि एक ओर इस कार्य को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है, तो दूसरी ओर इसे अत्यन्त विवादास्पद भी बना दिया है। फलतः अनेक गम्भीर चिन्तकों ने स्पष्ट शब्दों में घोषित कर दिया है कि उत्कृष्ट स्तर वाले साहित्यिक पुरा-ग्रन्थों का अनुवाद मूल की कला और सौन्दर्य को उपयुक्त रूप में अक्षुण्ण रखते हुए एक भाषा से दूसरी भाषा में कर सकना असम्भव है। इस सम्बन्ध में प्रायः अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये जाते है। क्या किन्हीं दो शब्दों का अर्थ पूर्णतः समान होता या हो सकता है? किसी कविता में अभिव्यक्त विचार को एक भाषा से दूसरी में रूपान्तरितमात्र कर देने से क्या अनुवादक का कार्य पूरा हो जाता है? स्वयं विचारों को उन शब्दों से कहाँ तक पृथक् किया जा सकता है, जिनमें वे पिरोये हुए होते है? आदि, आदि।

इस प्रकार के प्रश्नों के आधार पर प्रायः यह कहा जाता है कि गद्य साहित्य का अनुवाद भले ही संभव हो किन्तु कविता का अनुवाद तो सर्वथा

असम्भव बात है। अनुवाद्यता की दृष्टि से गद्य और पद्य के अन्तर का कारण यह माना जा सकता है कि गद्य में भाषा का प्रयोग कुछ इस प्रकार किया जाता है कि उसमें निहित विचारों, घटनाओं आदि को उससे अलग करके उन्हें दूसरी भाषाओं में व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु कविता में शब्द का उसकी अर्थवत्ता के साथ ऐसा अभिन्न सम्बन्ध होता है—शब्द और अर्थ इतने एकाकार होते हैं—कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता।

इस विचारधारा के समर्थन में कुछ अन्य तर्क संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते है।

काव्य-कला अन्ततः उन शब्दों पर निर्भर रहती है जिनके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है और यहाँ शब्द केवल अर्थ का भारवाहक नहीं होता, उसकी अपने आप में भी कुछ सत्ता-महत्ता होती है; उसकी अपनी ध्वनि होती है, अपना संगीत होता है, अपना विशिप्ट संस्कार, परिवेश, इतिहास और रूपवैभव होता है। दूसरे शब्दों में, काव्य में शब्द का माहात्म्य उसके केवल अर्थतत्त्व के कारण नही; ध्वनि, संगीत, अर्थ, भाव और रस—सभी तत्वों के कारण होता है। उदाहरणार्थ, "अली भौंर गूंजन लगे, होन लगे दल पात" के स्थान पर "सखी भ्रमर गुंजित हुए, गिर गिर पात पंड़त" लिख देने से इस उक्ति के सामान्य अर्थ की प्रतीति भले ही हो जाती हो, काव्य के वास्तविक प्रयोजन—रसनिष्पत्ति—की सिद्धि उसी अनुपात में नहीं हो पाती। इसीलिए प्रायः कहा जाता है कि कविता का अर्थ उसमें प्रयुक्त शब्दो के अर्थो का योगमात्र नही होता, कविता का अर्थ स्वयं कविता है। ऐसी स्थिति में किसी एक भाषा के किन्ही दो शब्दों अथवा किन्हीं दो भाषाओं के दो पर्यायवाची शब्दों को पूर्ण पर्याय नही माना जा सकता—ठीक उसी प्रकार, जैसे किसी एक वृक्ष के दो पत्तों को पूर्ण प्रतिरूप सिद्ध नही किया जा सकता। और पूर्ण पर्यायों के बिना अनुवाद कैसे हो सकता है ?

काव्यानुवाद के सम्बन्ध में अभिव्यक्त इस सैद्धान्तिक असम्भाव्यता की उपस्थिति मे भी विश्व के सभी भागों और सभी भाषाओं में काव्यानुवाद का कार्य अनवरत रूप से होता रहा है। इतना ही नहीं, काव्यानुवादकों के महत्त्व का दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है। केवल पुस्तकालयों में

ही अनुवादों को मूलकृतियों के समकक्ष स्थान नहीं प्रदान किया जाने लगा है, विश्व के प्रायः सभी देशों के प्रसारण-कार्यक्रमों आदि में भी अनुवादों तथा रूपान्तरों आदि को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। वस्तुतः अब तो विश्व की विभिन्न भाषाओं में काव्यानुवाद का परिमाण इतना अधिक हो चुका है कि उसके आधार पर काव्यानुवाद-परम्परा का एक वृहद् इतिहास लिखा जा सकता है तथा एक सर्वांगपूर्ण अनुवादशास्त्र की रचना भी सम्भव हो गयी है।

इस परस्परविरोधी स्थिति का कारण क्या है ? यदि काव्यानुवाद असम्भव है तो विभिन्न देशों तथा भाषाओं में उसकी सुदीर्घ तथा अनवरत परंपरा आज भी अविच्छिन्न क्यों है और यदि काव्यानुवाद निरन्तर साहित्य के अध्येता को उल्लसित-आनन्दित करते रहे है तो काव्यानुवाद-कार्य असंभव अथवा निरर्थक कैसे मान लिया जाय ? वास्तव मे इस विरोधाभास का मूल कारण यह है कि साहित्य-जगत् के कुछ नीम हकीमों ने 'स्वस्थ' काव्यानुवाद के कुछ विशेष लक्षण निर्धारित कर लिए है और उन्ही लक्षणों अथवा पूर्वाग्रहों के आधार पर काव्यानुवाद को शव अथवा शिव घोषित करने की भ्रामक परिपाटी चल पड़ी है।

इस प्रकार के कुछ पूर्वाग्रह निम्नलिखित हैं :

१. **शब्दविषयक आग्रह** : कोई भी अनुवाद सामने आने पर ये महानुभाव सबसे पहले मूल से उसका मिलान करके यह पता लगाते हैं कि मूल के किस-किस शब्द अथवा वाक्यांश को अनुवाद में छोड़ दिया गया है और अनुवाद का कौन-कौन सा शब्द अनुवादक ने अपनी ओर से जोड़ा है। यदि ऐसे कुछ शब्द भी मिल जाते हैं तो उनकी दृष्टि में अनुवाद 'पापकर्म' बन जाता है और अनुवादक 'प्रवंचक'।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, काव्य में शब्द शास्त्र की भाँति केवल अर्थ भारवाही नहीं होता, वह तो अर्थवान होने के साथ-साथ उससे कहीं अधिक एक अमूर्त भाव का प्रतीक होता है। इतना ही नहीं, यहाँ तो शब्द रस परि-पाक का प्रधान साधन भी होता है। ऐसी दशा में यह संभव नही है कि किसी एक भाषा के शब्द विशेष द्वारा अभिव्यक्त बात किसी दूसरी भाषा के शब्द द्वारा यथावत् कही जा सके। इसीलिए काव्यानुवादक मूल शब्द में निहित

अर्थ, भाव, संगीत अथवा रसगत सौन्दर्य को आत्मसात् करके उसे अनुवाद की भाषा में किसी एक अथवा अनेक शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करता है। विलियम शेक्सपीयर कृत 'मैकबेथ' में लेडी मैकबेथ की चिकित्सा करने में असमर्थ डाक्टर की उक्ति है :

"More needs she the divine than the physician"

इस पंक्ति के दो हिन्दी-अनुवाद उपलब्ध हैं :

"**उन्हें तो किसी महात्मा या सत की आवश्यकता है, डाक्टर उसे ठीक नहीं कर सकता।**"

× × ×

मैं तो खाली तन का रोग मिटा सकता हूं,
इन्हें चाहिए मन की मैल छुड़ाने वाला।

स्पष्ट है कि शब्दानुवाद की दृष्टि से प्रथम अनुवाद चाहे जितना भी सफल क्यों न हो, काव्यानुवाद की दृष्टि से द्वितीय अनुवाद ही सफल है।

२. **छंदविषयक आग्रह** : अनुवाद कला के कुछ पारखी यह घोषणा करने लगे है कि छंदोबद्ध रचना का अनुवाद अनिवार्यतः छंदोबद्ध (सतुकांत रचना का सतुकांत)ही होना चाहिए। इतना ही नहीं, अनुवाद का छंद मूल के अनुरूप भी होना अनिवार्य है।

इस संबंध में वस्तुस्थिति यह है कि आधुनिक काव्यमर्मज्ञ छंद को काव्य का ही अनिवार्य अंग मानने मे संकोच करने लगे हैं। ऐसी दशा में छंदोबद्ध रचना के अनुवाद के लिए छंद की अनिवार्यता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। मूलतः गीतों के रूप में रचित, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अमर कृति 'गीतांजलि' का अंग्रेजी अनुवाद गद्य में है और उसी अनुवाद के आधार पर कवीन्द्र की कृति नोबल पुरस्कार की अधिकारिणी मानी गयी।

३. **शैलीविषयक आग्रह** : शब्दों अथवा छंदों तक ही सीमित न रह कर उपर्युक्त वर्ग के विचारक यह आग्रह भी करते हैं कि अनुवाद में मूलकृति की शैलीगत विशेषताओं का भी पूर्णतः समावेश होना चाहिए। अतः अनुवाद में उनका अभाव होने के पर वे अनुवाद-कार्य का महत्त्व ही अस्वीकार कर देते हैं।

पर और अपनी कृति को मूल कृति के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने का उपक्रम करता है तो उसका वह प्रयास स्वतंत्र साहित्य-सृजन के नाते कितना भी मूल्यवान क्यों न हो, अनुवाद की दृष्टि से नितान्त निकृष्ट कार्य ही रहता है। ऐसा अनुवादक मूल कृतिकार की हत्या का अपराधी होता है। फिट्जेरल्ड द्वारा रचित उमरखैयाम की रूबाइयाँ इसका प्रमाण है। सच्चे अनुवाद का लक्ष्य मूल कृतिकार का स्थान लेकर वहाँ अपने को प्रतिष्ठित कर देना नहीं होता, उसकी भावराशि को अन्य भाषा शैली के परिधान में प्रस्तुत करके मूल कृति तथा कृतिकार को अन्य भाषाभाषियों के हृदयासन पर प्रतिष्ठित करना होता है। अनुवाद की यही मूक साधना अनेक दृष्टिकोणों से उसके कार्य को साहित्य-सृजन के क्षेत्र में अद्वितीयता प्रदान कर देती है।

अतः काव्यानुवाद की वास्तविक कसौटी यही है कि अनुवाद मूल कृतिकार और उसकी कृति की आत्मा के साथ अन्य भाषाभाषी पाठकों का सहज संबंध कितनी सफलतापूर्वक जोड़ पाया है, काव्य के रस का आस्वाद उन्हें कितना अधिक करा पाया है। अनुवादक-भेद से इस सफलता की मात्रा में भेद होना स्वाभाविक है क्योंकि अनुवाद की सफलता अनुवादक की शक्ति-सीमाओं पर निर्भर रहती है।

कदाचित् इसीलिए किसी भाषा में किसी वैज्ञानिक कृति का एक अनुवाद पर्याप्त सिद्ध हो सकता है किन्तु किसी काव्यकृति का एक ही अन्तिम तथा सर्वांगपूर्ण अनुवाद न तो सम्भव होता है, न अभीष्ट। एक के उपरान्त दूसरा अनुवादक सफलता के उच्चतर प्रतिमान स्थापित करता रहता है और इस समस्त प्रक्रिया में अनुवादक वही आनन्द प्राप्त करता रहता है, वही महान् कार्य सम्पन्न करता है और उसी मुक्त प्रशस्ति का अधिकारी होता है जिसका साहित्य-सृजन की गौरवपूर्ण प्रक्रिया के साथ अटूट सम्बन्ध है।

विधिक अनुवाद

—प्रो० बालकृष्ण

आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रत्येक दृष्टि से इस बात की परम आवश्यकता है कि प्रत्येक संभव रीति से और प्रत्येक उपलब्ध साधन द्वारा विश्व की विभिन्न जातियों को एक दूसरे के मन की बात समझाई जाये, उनके बीच में आज जो गहरी मानसिक और सांस्कृतिक खाई है उसे पाट दिया जाए। किन्तु इस उद्देश्य-पूर्ति में अन्य बाधाओं के साथ-साथ एक महान् बाधा भाषा विभिन्नता की है। आज पृथक् भाषा-भाषी अनेक जातियाँ जगत् में है। हमारे देश में ही पृथक् भाषा-भाषी अनेक जातियाँ हैं। भाषाओं की इन खाइयों को पार करने के लिए पुल बनाने आवश्यक हैं। ये पुल अनुवाद रूपी ही हो सकते हैं। प्रत्येक जाति की आत्मा उसके वाङ्मय में निवास करती है। अनुवाद के माध्यम द्वारा उसे दूसरी जाति तक पहुँचाने से दोनों जातियों की चेतनाएँ परस्पर मिल सकेंगी। दूसरे शब्दों में अनुवाद विभिन्न जातियों के हृदयों को एकसूत्र में पिरोने का एक अत्यन्त उत्तम साधन है। अपने इस कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन कर अनुवादक विभिन्न जातियों में एकता का प्रणेता और विश्व भर में शान्ति का दूत बन सकता है। किन्तु इस महान् कर्त्तव्य का सफलतपूर्वक निर्वहन सहज नहीं है। प्रत्येक जाति की भाषा उसकी आत्मा के रंग में रंगी होती है। अतः अनुवादक के लिये यह आवश्यक होता है कि जिन जातियों की भाषाओं का उसे अनुवाद कार्य करना है उनकी आत्मा से भी वह पूर्णतः परिचित हो।

जीवन के कुछ क्षेत्रों में और विशेषतः कविता और विधि के क्षेत्रों में यह कठिनाई अत्यन्त विकट रूप धारण कर लेती है। विधि के क्षेत्र में शब्द का भारी महत्त्व है। 'शब्द ईश्वर है,' यह युक्ति संभवतः विधि के क्षेत्र में सबसे ज्यादा चरितार्थ होती है। विधि का क्षेत्र समस्त जीवन का सुचारु नियमन है। यदि उस नियमन में किंचित् विशृंखलता या शिथिलता आ जाय, तो लाखों नर-

नारियों का जीवन संकटापन्न हो सकता है। अतः यह आवश्यक होता है कि विधि जिन शब्दों में व्यक्त की जाए, वे इतने स्पष्ट और निश्चित अर्थ वाले हों कि उनके बारे में किसी प्रकार की भ्रान्ति होने की लेश भी संभाव्यता न रहे। जहाँ कवि अपने मन की बात करने में अत्यन्त स्वच्छन्द होता है और अतिरंजना और अतिशयोक्ति का पूरा सहारा ले सकता है, वहाँ विधिज्ञ इस बात के लिए बँधा होता है कि वह जो कुछ कहना चाहता है उसे ऐसे नपे-तुले शब्दों में कहे कि किसी व्यक्ति को उसकी बात के विषय में लेश भी कठिनाई न हो। यदि ऐसा न हुआ तो विधि का आशय यथावत् न समझने के कारण व्यक्ति या व्यक्ति-समूह ऐसे कार्य कर सकते हैं जिसके लिए बाद में उन्हें कष्ट उठाना पड़े।

यदि यह विधान किया जाना है कि देश के प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने मन की बात किसी रीति में भी प्रकट करने के लिये स्वतन्त्र होगा तो विधि ऐसे शब्दों में होनी चाहिए जिनसे यह बात पूरी तरह प्रकट होती है। यदि यह केवल इन शब्दों में है कि प्रत्येक व्यक्ति को 'भाषण स्वातन्त्र्य का अधिकार होगा' तो यह उपर्युक्त प्रयोजन के लिये पर्याप्त सिद्ध होगी। 'भाषण' स्वातन्त्र्य के अधिकार का अर्थ केवल यही होगा कि व्यक्ति अपने मन की बात केवल बोल कर व्यक्त करने के लिये स्वतन्त्र है। किन्तु उसे यह बात लिखकर या चित्रों द्वारा व्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्राप्त न होगी। विधि के क्षेत्र में प्रत्येक शब्द का भारी महत्त्व है। विधिक अनुवाद की भाषा में ऐसे शब्दों का ही प्रयोग करना होगा, जो मूल में प्रयुक्त शब्दों के पूर्णतः समानार्थी हों, और जो अतिव्याप्ति या अल्पव्याप्ति के दोष से सर्वथा मुक्त हो। दो भाषाओं में इस प्रकार के समानार्थी शब्दों का मिल जाना साधारण बात नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक भाषा के शब्द में उस देश का इतिहास और उस देश की भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियाँ निहित होती हैं।

उदाहरणार्थ हम अंग्रेजी का शब्द टीनेन्ट (Tenant) ले सकते है। यह ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जो किसी सम्पत्ति का धारक है। अधिकांशतः यह सम्पत्ति उसने किसी दूसरे व्यक्ति से किन्हीं शर्तों पर ली होती है, किन्तु कभी-कभी यह शब्द उन कई व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी प्रयोग किया जाता है जो परस्पर मिलकर किसी सम्पत्ति के धारक हैं। यह आवश्यक नहीं

कि ऐसी सम्पत्ति के लिये कोई भाड़ा या अन्य लगान वे किसी दूसरे व्यक्ति को देते हों। हमे भारतीय भाषाओं में इस शब्द के यथातथ्य पर्याय का निरूपक एक भी शब्द नहीं मिलेगा जिसमे वे सब अर्थ निहित हों, जो इस अंग्रेजी शब्द में विद्यमान है। इसी प्रकार यदि हिन्दी के किसी ऐसे शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद करना पड़े तो भी ऐसी ही कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

ऐसी ही एक और वडी समस्या विधि के निर्वचन के सम्बन्ध में होती है। एक भाषा से दूसरी भाषा में विधिक अनुवाद करने के लिये यह परमावश्यक है कि मूल विधि का अर्थ यथावत् हृदयंगम कर लिया जाये। किन्तु यही करना तो सरल नही। प्राचीन काल मे विधि का दूसरा नाम धर्म था और धर्म क्या है इस सम्बन्ध में बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों में कभी एक मत न हो पाता था। जब यक्ष ने युधिष्ठिर से यह पूछा कि धर्म क्या है तो उन्होने भी यही कहा कि:—

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः सः पन्था॥

अतः यह आश्चर्य की बात नही कि आजकल जब विधि भूतकाल से कहीं अधिक जटिल हो गई है, विधिविज्ञ उसके अर्थ के बारे में एकमत न हो पाएँ। हमारे देश में ही स्थिति यह है कि एक राज्य का उच्च न्यायालय किसी उपबन्ध का एक अर्थ लगाता है तो दूसरा न्यायालय उससे भिन्न अर्थ लगाता है। अपना कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व अनुवादक के लिए यह परमावश्यक होता है कि वह पता चलाए कि उस विधि विशेष का अर्थ उच्चतम न्यायालय ने मामले विशेष में क्या लगाया है? यदि उच्चतम न्यायालय की एतद्विषयक व्यवस्था मिल गई तो वह चैन की साँस ले सकता है, नही तो उसे विभिन्न उच्च न्यायालयों के तत्सम्बन्धी निर्णयों का अन्वेषण करना पड़ेगा और टीकाकारों के मतों से अपने को परिचित करना होगा। कभी-कभी उसे इस सम्बन्ध में कोई बाह्य सहायता नहीं मिलती। उस अवस्था में उसे विधि निर्वचन सम्बन्धी सिद्धान्तों और नियमों के अनुसार उसका निर्वचन स्वयं करना पड़ता है। स्पष्ट है कि जब तक वह विधिक मीमांसा शास्त्र से पूर्णतः परिचित नही हो, वह इस कार्य को सफलतापूर्वक नहीं कर पाएगा। किन्तु वह कैसा ही उद्भट विद्वान् क्यों न हो, उसके लिये यह समस्या बनी ही रहेगी कि उसने विधि के उपबन्ध विशेष का

जो अर्थ लगाया है वह उच्चतम न्यायालय की दृष्टि में यथावसर ठीक उतरेगा या नही ।

विधि निर्वचन का एक सिद्धान्त यह है कि विधि का रचयिता उसमें क्या अर्थ रखना चाहता था, उससे न्यायालय का कोई प्रयोजन नहीं । न्यायालय का प्रयोजन तो केवल उसी से है कि विधि जिन शब्दों में बनी है उन शब्दों की दृष्टि से उसका क्या अर्थ निकलता है । अतः बहुधा न्यायालय विधि विशेष का अर्थ ऐसा कर देते हैं, जो उसे बनाने वाले विधान मंडल का कभी था ही नहीं।

अतः विधि के क्षेत्र में प्रारूपण का बड़ा महत्त्व है । विधि में वाक्यविन्यास यथाशक्य ऐसा होना चाहिए कि उसका एक ही अर्थ लग सके । इस कारण जो बातें काव्य के क्षेत्र में अलंकार मानी जाती हैं वही विधि प्रारूपण के क्षेत्र में दोष हो जाती हैं । जहाँ काव्य के क्षेत्र में पुनरुक्ति को दोष समझा जाता है, वहाँ विधि प्रारूपण के क्षेत्र में यह आवश्यक समझी जाती है । इसी कारण विधि में वाक्य-विन्यास कुछ अनोखा होता है । बहुधा पढ़ने वाले को उसमें प्रवाह नाम का गुण दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु विधिज्ञ को इसकी लेश भी चिन्ता नहीं होती कि शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उसकी भाषा चमत्कारी है या नही । वह तो अपने को तभी धन्य मानता है जब उसकी वाक्य-रचना ऐसी बनती है कि उससे केवल एक ही अर्थ ध्वनित होता है ।

अतः विधि-अनुवादक को चाहिए कि बार-बार अपने वाक्य को पढ़े और यह देखे कि उस वाक्यविन्यास में अन्य अर्थ तो नहीं निकाले जा सकते । प्रतिभाशाली अभिवक्ता उन प्रारूपित वाक्यों के कोई अन्य अर्थ तो नहीं लगा पाएँगे ।

इस सम्बन्ध में एक कठिनाई और भी है । प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट गठन होता है । अतः अनुवाद में कभी-कभी इस गठन की विभिन्नता से भी समस्याएँ पैदा हो जाती है, विशेषतः विधि के क्षेत्र में । हमारे देश में विधियों में संशोधन करने की यह रीति है कि संशोधन करने वाला अधिनियम मूल अधिनियम के उपबन्धों में कहीं कुछ शब्द जोड़ता है, कहीं से कुछ शब्द निकाल देता है । अंग्रेजी भाषा की वाक्य-रचना और हिन्दी की वाक्य-रचना के क्रम में अन्तर है । संशोधक अधिनियमों में बहुधा मूल अधिनियम की धारा के अन्त में

कुछ शब्द जोड़ने के लिये उपबन्ध होता है। किन्तु भाषा की बनत में भेद होने के कारण जो शब्द अंग्रेजी वाक्य के अन्त में जोड़े जा सकते है, वे उसके समानार्थी हिन्दी वाक्य के अन्त में नहीं जोड़े जा सकते। अतः यदि संशोधक अधिनियम के हिन्दी में अनुवाद में भी यही लिखा जाए कि जोड़े जाने वाले शब्द मूल अधिनियम की सम्बद्ध धारा के अन्त में जोड़ दिये जाएं तो अनुवाद तो ठीक हो जायगा किन्तु प्रयोजन सिद्ध न होगा, क्योंकि मूल अधिनियम की सम्बद्ध धारा में उन शब्दों को अन्त में जोड़ने से अर्थ कुछ भी न निकलेगा, उल्टे सारा वाक्य अटपटा और अर्थहीन हो जायेगा। अतः संशोधक अधिनियम के हिन्दी अनुवाद की समस्या का कोरे अनुवाद की दृष्टि से कोई हल हो ही नहीं सकता। अनुवादक को इस सम्बन्ध में कुछ स्वतन्त्रता बरतनी पड़ेगी। उसे हिन्दी रूपान्तर में यह बताना होगा कि वे शब्द मूल अधिनियम की धारा में कहां जोड़े जाएँ, जिससे कि संशोधित धारा का अर्थ वह लगे जो संशोधक अधिनियम उसे देना चाहता है। कनाडा में यह समस्या पैदा नहीं होती, क्योंकि वहाँ इसका हल प्रारूप की रीति को ही वदल कर किया गया है। वहाँ संशोधक अधिनियम कुछ शब्दों को जोड़ने या घटाने के बदले में पूरी धारा के स्थान में ही नई संशोधित धारा रख देता है।

अधिनियमों के अनुवाद की एक समस्या यह भी है कि अनुवादक मूल अधिनियम में प्रयुक्त शब्दो मे से किसी को अनुवाद में छोड़ सकता है या नही या उसमे प्रयुक्त एक शब्द के स्थान में अनुवाद में दो या तीन शब्दों का प्रयोग कर सकता है या नहीं। विधि निर्माण का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि विधि विशेष में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द विधान मण्डल ने उसमें जड़ दिया है और वह वहाँ तब तक जड़ा रहेगा जब तक कि विधान मण्डल संशोधक अधिनियम द्वारा उसे वहाँ से निकाल न दे। जब विधि विशेष में से एक शब्द भी, एक अर्द्ध विराम भी कोई निकाल नही सकता, तब अनुवादक के लिए मूल विधि की शब्दावलि में कुछ काँट छाँट करना अनधिकार चेष्टा होगी। किन्तु हो सकता है कि मूलपाठ में जो कोई शब्द विद्यमान हों वे उस भाषा की अपनी विशेषताओं के कारण उसमें रखने पड़े हों। उदाहरणार्थ अंग्रेजी भाषा में इक्के के किराये के लिये उनकी भाषा की विशेषता के कारण 'Hire' शब्द का ही

प्रयोग हो सकता है, 'Rent' का नहीं। किन्तु मकान के सम्बन्ध में उस भाषा में 'रेण्ट' का ही प्रयोग होगा, 'हायर' का नहीं। हिन्दी में किराया शब्द इक्के के किराए और मकान के किराए दोनों के लिये भी प्रयोग में आता है। अतः अंग्रेजी पाठ में 'हायर' और 'रेंट' दोनों शब्दों का प्रयोग आवश्यक होगा किन्तु क्या सम्बद्ध विधि का अनुवाद हिन्दी में करने में इन दोनों के लिए पृथक्-पृथक् शब्द रखने होंगे। प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के लिए एक हिन्दी शब्द रखने में विधि के क्षेत्र में हिन्दी का रूप अत्यन्त भोंडा हो जाता है और भाषा बोझिल और क्लिष्ट हो जाती है। किन्तु आजकल ऐसा ही किया जा रहा है। इस समस्या का हल कनाडा में यह किया गया है कि प्रत्येक भाषा की अपनी विशेषताओं के अनुसार अनुवाद में एक शब्द के स्थान में दो शब्दों या दो शब्दों के स्थान में एक शब्द का प्रयोग किया जाए। हमारे देश में यह हल तभी अपनाना सम्भव होगा जब कि संसद् अधिनियमों में संघ की या राज्यों की राजभाषाओं को अंगीकृत करना आरम्भ कर दे।

'संस्कृति' से साभार

वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य का अनुवाद

—वेदप्रकाश

वैज्ञानिक पुनर्जागरण के लिए आज भारत को विदेशों से बहुत कुछ ग्रहण करना है। एक समय था जब विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत संसार का सिरमौर था, परन्तु दीर्घकालीन परतंत्रता के कारण विश्व की वैज्ञानिक प्रगति की दौड़ में भारत के बंधे हुए चरण पिछड़ गए। आज वैज्ञानिक जानकारी की इस चौड़ी खाई को अनुवाद के माध्यम द्वारा शीघ्रता से भरा जा सकता है। वैज्ञानिक अनुवाद की आवश्यकता शिक्षा के माध्यम-परिवर्तन के कारण भी बढ़ गई है। वैज्ञानिक साहित्य के मौलिक सृजन के अभाव में अंग्रेजी की विभिन्न उपयोगी पाठ्य-पुस्तकों तथा संदर्भ-ग्रन्थों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद किए जाने हैं। एक अन्तर्राष्ट्रीय कारण से भी अनुवाद की आवश्यकता जान पड़ती है। आज संसार के किसी भी देश का अनुसन्धान या आविष्कार उसी देश की बपौती न होकर समस्त वैज्ञानिक जगत् की सम्पत्ति बन जाता है। अतः प्रति वर्ष, अनुसन्धान सम्बन्धी नई-नई सूचनाओं के प्रसार के लिए, संसार में लाखों वैज्ञानिक लेख, पुस्तकें तथा रिपोर्टें प्रकाशित होती हैं। इन में से कम-से-कम आधी सामग्री ऐसी भाषाओं में प्रकाशित होती है, जिनसे लगभग ५० प्रतिशत वैज्ञानिक अपरिचित होते हैं। मूल की भाषा उनकी जिज्ञासा-वृत्ति के आगे दीवार बन कर रह जाती है। वैज्ञानिक प्रगति के मार्ग में यह बहुत बड़ी बाधा है। इस समस्या को सुलझाने के तीन उपाय हैं। एक तो यह कि ऐसे वैज्ञानिक प्रमुख विदेशी भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लें, ताकि वे प्रत्येक प्रमुख भाषा में प्रकाशित वैज्ञानिक साहित्य को पढ़ सकें। दूसरा यह कि वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन प्रायः सभी प्रसिद्ध भाषाओं में कराया जाए, जिससे हर भाषा का वैज्ञानिक नई सूचना को प्राप्त कर सके। तीसरा उपाय यह है कि एक भाषा में प्रकाशित वैज्ञानिक सामग्री का, लगभग सभी प्रसिद्ध भाषाओं में, अनुवाद करा दिया जाए। इन तीनों में से अनुवाद का माध्यम सर्वाधिक सुगम एवं उपयोगी है।

वैज्ञानिक लेखन और साहित्यिक लेखन में जो अन्तर है, वही अन्तर वैज्ञानिक (वैज्ञानिक साहित्य के) अनुवाद और साहित्यिक (शक्ति-साहित्य के) अनुवाद में भी है। इसी अन्तर के कारण, साहित्यिक अनुवाद से भिन्न, वैज्ञानिक अनुवाद की अपनी कुछ **विशिष्टताएँ** हैं, जिस के कारण इस विषय पर अलग से चर्चा करनी आवश्यक जान पड़ती है। वैज्ञानिक अनुवाद की पहली विशिष्टता मूल की शैली के सम्बन्ध मे है। वैज्ञानिक अनुवाद में 'कैसे' की अपेक्षा 'क्या' का अधिक महत्त्व है। यहाँ विषय मुख्य है और शैली गौण। वैज्ञानिक पुस्तक के पाठक की रुचि केवल उसमे दी गई सूचनाओं, संकल्पनाओं तथा तथ्यों तक ही सीमित रहती है। कारण यह है कि वैज्ञानिक पाठक की दृष्टि विषय की तलाश में रहती है, विषय कैसे प्रस्तुत किया गया है, इस ओर उसका ध्यान आकर्षित नही होता। उसका उद्देश्य केवल अपनी जानकारी मे वृद्धि करना है। किसी भी वैज्ञानिक पुस्तक का अध्ययन उसकी शैलीगत विशेषताओं के आकर्षण पर नहीं किया जाता और न ही इस आधार पर किया जाता है कि इससे आनन्दोपलब्धि होगी, रसोद्रेक होगा अथवा इन्द्रियसुख प्राप्त होगा—जैसा कि सूर और तुलसी के काव्याध्ययन से होता है। मूल लेखक का उद्देश्य 'ज्ञान का प्रसार करना' होता है। इसके लिए वह सामान्य भाषा-शैली का प्रयोग करता है, जिससे वह अपने तथ्य को पाठक के सम्मुख स्पष्टतः प्रस्तुत कर सके। उसका यह उद्देश्य कदापि नहीं होता कि पाठक पग-पग पर उसकी शैली पर मुग्ध हो। इसलिए अनुवादक को भी सीधा-सादा यथार्थ अनुवाद प्रस्तुत करना होता है। वैज्ञानिक अनुवादक को कल्पना के रेशमी धागों को सुलझाने की, अलंकारों की आभा को बटोरने की तथा शब्दों के नाद-सौन्दर्य को प्रतिध्वनित करने की सभी जटिलताओं से छूट मिल जाती है। सारांश यह है कि वैज्ञानिक लेखन में विचार ही ईश्वर है, उसी पर अनुवादक की दृष्टि केन्द्रित रहनी चाहिए। अपरिचित वेश में प्रस्तुत विचार का परिचित वेश में साक्षात्कार कराना ही अनुवादक का प्रयोजन है। कुछ वैज्ञानिक पुस्तकें सामान्य वर्ग के पाठकों के लिए विनोदी, सरल एवं सरस शैली मे लिखी जाती है, ऐसी रचनाओं के अनुवाद में वही शैली अवश्य अपना लेनी चाहिए। अन्यत्र शैली के अनुवाद की चेष्टा निरर्थक है।

वैज्ञानिक अनुवाद की दूसरी विशिष्टता मुहावरों और लाक्षणिक प्रयोगों के सम्बन्ध में है। वैज्ञानिक और तकनीकी वक्तव्य का आधार शब्द की अभिधा शक्ति होती है। यहाँ मुहावरों का प्रयोग बहुत ही कम होता है और लाक्षणिक प्रयोगों का भी अभाव-सा रहता है, जिससे वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। तीसरे, साहित्यिक शब्दो से भिन्न, वैज्ञानिक शब्दावली की भी अपनी विशिष्टताएं हैं। हर शब्द का विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अलग-अलग अर्थ है। यहाँ तक कि साधारण प्रचलित शब्द भी अपने भिन्न अर्थ रखते हैं। एक शब्द का एक ही अर्थ होता है, विकल्प की ढील-ढाल यहाँ नहीं होती। चौथे, वैज्ञानिक अनुवाद अधिकतर ताजे साहित्य का होता है। इसके पाठक भी प्रायः उसी युग के होते हैं, जिस युग की मूल रचना। यहाँ मूल रचना और अनुवाद के समय में, शेक्सपियर और बच्चन के काल जैसा, युगों का अन्तर नहीं होता। पाँचवें, वैज्ञानिक अनुवाद सिद्धान्ततः आदर्श के अधिक समीप है। अतः साहित्यिक अनुवाद के समान, एक ही वैज्ञानिक रचना के एक ही भाषा में अनेकानेक अनुवाद उपलब्ध नहीं होते। छठे, वैज्ञानिक अनुवाद में स्वतन्त्रता बरतने की गुंजाइश नहीं होती। वैज्ञानिक अथवा तकनीकी रचना का स्वतन्त्र अनुवाद निश्चित रूप से अर्थ का अनर्थ कर देगा; जबकि साहित्यिक अनुवाद में स्वतन्त्रता प्रायः बरत ली जाती है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक साहित्य में भावों की नहीं, तथ्यों की प्रधानता रहती है। अतः वैज्ञानिक अनुवाद अनुवादक के सम्मुख उन कठिनाइयों को प्रस्तुत नहीं करता, जो साहित्यिक अनुवादक के सामने आती हैं, क्योंकि 'तथ्य' का अनुवाद 'भाव' के अनुवाद की अपेक्षा अधिक सरल है। तथ्य बुद्धि का विषय है और भाव हृदय का। भाव तरल एवं सूक्ष्म होता है और तथ्य स्थूल। निश्चित है कि भाव तथ्य की अपेक्षा कम पकड़ में आते हैं।

अनुवाद साहित्यिक हो अथवा वैज्ञानिक कुछ समान योग्यताएँ ऐसी हैं, जो हर आदर्श अनुवादक में होनी आवश्यक हैं, यथा विचारशीलता, विवेक शक्ति, मेधा और सहज-ज्ञान (Common Sense) आदि। अनुवाद की अधिकतर भूलें प्रायः सहज ज्ञान के अभाव में होती हैं। परन्तु भाषा और विषय-ज्ञान सम्बन्धी योग्यताएँ वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवादक में विशेष रूप से अपेक्षित हैं। इन्हीं

पर हमें विस्तार से विचार करना है। आदर्श अनुवाद उसी अनुवादक द्वारा संभव है, जो अनुभवी एवं भाषा-विज्ञ भी हो और विषय का व्यावहारिक विशेषज्ञ भी। अनुवादक को मूल तथा अनुवाद की भाषा—दोनों में निपुण होना चाहिए। इसके साथ-साथ उनकी स्रोत भाषाओं की जानकारी भी—विशेषतः मूल में अभिव्यक्त नई संकल्पनाओं को समझने एवं अपनी भाषा के उपयुक्त शब्द देने के लिए—अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। अंग्रेजी-हिन्दी अनुवादक को ग्रीक, लेटिन तथा संस्कृत की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। मूल की भाषा का इतना ज्ञान होना जरूरी है कि अनुवादक मूल के प्रत्येक शब्द तथा मुहावरे को समझ सके। मूल का स्पष्ट चित्र जब तक अनुवादक के मानस-पटल पर नहीं उतर आएगा, तब तक वह विचार सम्प्रेषण में सफल नहीं हो सकता। अर्थ-ग्रहण की क्षमता अनुवादक में तभी आ सकती है, जब उसका मूल की भाषा पर अधिकार होगा। अनुवादक में इतनी क्षमता होनी चाहिए कि यदि मूल रचना में सामान्यतः अर्थ की प्रतीति पूर्ण-रूपेण नहीं भी होती तो भी अपने भाषा-ज्ञान के बल पर वह अभिप्रेत अर्थ को ढूँढ निकाले। अभिप्रेत अर्थ को ग्रहण कर लेने के बाद, उसे नए भाषा-भाषी तक पहुँचाने के लिए अनुवाद की भाषा पर भी यथोचित अधिकार होना जरूरी है। भाषा की वैयाकरणिक एवं भाषावैज्ञानिक जानकारी के साथ-साथ उसका व्यावहारिक ज्ञान होना भी जरूरी है। संक्षेपतः अनुवादक में मूल के विचार को, जो मूल की भाषा के शब्दों में पिरोया रहता है, अलग करने और उसे पुनः अपनी भाषा के शब्दों में पिरोने की क्षमता होनी चाहिए, जिससे मूल के विचार की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाए। दोनों भाषाओं के सम्यक् ज्ञान के साथ-साथ अनुवादगत विषय सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली से भी उसे पूर्णतः परिचित होना चाहिए। अन्यथा अनुवाद करते समय उसे पग-पग पर रुकना पड़ेगा।

वैज्ञानिक अनुवादक की दूसरी अनिवार्य अर्हता विषय की व्यापक और व्यावहारिक जानकारी के सम्बन्ध में है। अनुवादक को अनुवादगत विषय-वस्तु के सभी पहलुओं का विस्तृत एवं व्यापक ज्ञान होना चाहिए। तकनीकी अनुवाद में तो विषय के व्यावहारिक ज्ञान के बिना बिल्कुल काम चल ही नहीं सकता। यहाँ अनुवादक के लिए भाषा-ज्ञान से भी अधिक विषय-ज्ञान की आवश्यकता है।

तात्पर्य यह है कि अनुवादक कहीं-कहीं मूल भाषा के कम ज्ञान से तो काम चला सकता है, पर विषय के ज्ञान के बिना मूलभाव की पकड़ असम्भव है। अनुवादक का विज्ञान विषयक ज्ञान कितना होना चाहिए, यह मूल रचना के स्तर पर निर्भर करता है। सरल—साधारण विषयों से सम्बन्धित पुस्तकों के अनुवाद के लिए विषय का विशिष्ट ज्ञान अनिवार्य नहीं। सम्बन्धित साहित्य तथा पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान यदि अनुवादक को अपेक्षाकृत कम भी है, तो भी वह अच्छा अनुवाद प्रस्तुत कर सकता है। ऐसा अनुवादक धीरे-धीरे गम्भीर अध्ययन और अनुभव के बल पर, अपेक्षाकृत सरल एवं स्पष्ट शैली मे लिखी गई, विशिष्ट विषयों से सम्बन्धित पुस्तकों का भी अनुवाद कर लेने के योग्य हो जाता है। परन्तु भौतिकी, रसायन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र तथा शुद्ध तकनीकी विषयों के उच्च स्तरीय साहित्य के अनुवाद के लिए सम्बन्धित विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना अनिवार्य है। यहाँ, विषय का साधारण ज्ञान रखने वाला अनुवादक मूल का अभीष्ट अर्थ ग्रहण करने और उसे अन्य भाषा शैली में अभिव्यक्त करने में असमर्थ सिद्ध होता है। इंजीनियरिंग की किसी शाखा से सम्बन्धित साहित्य का अनुवाद करने के लिए यह आवश्यक है कि उसने उस शाखा में प्रशिक्षण प्राप्त किया हुआ हो। अनुवादक उन विषयों का तो अच्छा अनुवाद प्रस्तुत कर सकता है, जिन का उसने सुचारु रूप से गम्भीर अध्ययन एवं प्रशिक्षण प्राप्त किया हुआ है। पर विज्ञान के यदि एक विषय का अनुवाद कोई सफलतापूर्वक कर लेता है, उससे यह अपेक्षा रखना कि अन्य वैज्ञानिक विषयों का भी वह सही अनुवाद कर सकेगा, भूल है। इसके लिए अपने विषय से संबंधित अन्य विषयों की शब्दावली से भी जानकारी प्राप्त कर लेना अनिवार्य है। वैज्ञानिक अनुवादक को आधारभूत साहित्य के साथ-साथ, अन्य सहायक ग्रन्थों, पत्रिकाओं तथा रिपोर्टों का अध्ययन भी करते रहना चाहिए, ताकि विज्ञान सम्बन्धी नवीनतम जानकारी उसे प्राप्त होती रहे। सारांश यह है कि वैज्ञानिक साहित्य का सफल अनुवाद करने के लिए अनुवादक को अपनी रुचि विषय-अध्ययन तथा भाषा-अध्ययन दोनों में लगानी चाहिए। विषय का ज्ञान उसे विचार देगा और भाषा का ज्ञान शब्द।

वस्तुतः, अनुवादकों में योग्यताओं का यह असामान्य मेल प्रायः कम देखने को

मिलता है। ऐसे व्यक्ति से, जिसने जीवन का एक बड़ा भाग दो भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करने के लिए व्यय किया हो, यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि उसे भाषा के साथ विज्ञान और तकनीकी विद्या का भी उच्च ज्ञान प्राप्त हो। इसी प्रकार विषय के विशेषज्ञ से भी, जिसने विज्ञान और तकनीकी शिक्षण प्राप्त किया हो, यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह दोनों भाषाओं का विद्वान् हो। इसलिए विकल्पस्वरूप प्रायः तीन प्रश्न सामने आते हैं। अनुवाद वैज्ञानिक से कराया जाए, भाषा शास्त्री से अथवा दोनों के सामूहिक प्रयास से ? इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। अवैज्ञानिक (विज्ञान के विषय से अनभिज्ञ) भाषाशास्त्री द्वारा अनुवाद कराने से बहुत ही भयानक परिणाम निकल सकते हैं क्योंकि विषय का ज्ञान न होने के कारण, मूल के भाव को न समझ कर, अनुमान के आधार पर वह अर्थ का अनर्थ कर बैठेगा। रसायन-शास्त्र का अनुवाद करते समय 'Salt' शब्द से उसे केवल 'नमक' अर्थ का बोध होगा, जिसे हम सब्जी आदि में डालते हैं। परन्तु विषय का ज्ञाता अनुवादक जानता है कि रसायन-विद्या में 'Salt' अथवा लवण 'पूर्ण या आंशिक हाइड्रोजन से मुक्त अम्ल' को कहते हैं। खाने वाला नमक अन्य बहुत से लवणों में से एक है, जिसे रासायनिक 'सोडियम क्लोराइड' कहते हैं, जो 'सोडियम' और 'क्लोरीन' का यौगिक है। इस प्रकार के स्पष्ट चित्र जब तक अनुवादक के सामने प्रस्तुत नहीं होंगे, उसे अनुवाद करते समय पग-पग पर भ्रान्तियाँ होंगी। मात्र शब्दकोश की सहायता से भी वह विषय-ज्ञान की क्षति-पूर्ति नहीं कर सकता। हर विज्ञान की अपनी एक विशिष्ट शब्दावली होती है। विषय-ज्ञान के बिना उचित पर्याय ढूँढने में कठिनाई होती है। 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाला अनुवाद करने से अभिप्रेत अर्थ को क्षति पहुँच सकती है। अनुवादक तो, सही अथवा गलत, अनुवाद मे पाठक को वही अर्थ देगा जो उसने ग्रहण किया है। नए साहित्य के अनेकों ऐसे शब्द हैं, जो कोशों में मिलते ही नहीं। बहुत संभव है कि विषय से अपरिचित—केवल शब्दकोश के आधार पर अनुवाद करने वाला, अनुवादक—'Atomic Plant' का अनुवाद 'आणविक पौधा' कर बैठे।

निस्सन्देह, भाषा का अल्पज्ञ—परन्तु वैज्ञानिक विषय का ज्ञाता अनुवादक,

अवैज्ञानिक भाषा शास्त्री की अपेक्षा, अच्छा अनुवाद प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु दूसरे पक्ष वाले इस बात का विरोध इस प्रकार करते हैं कि वैज्ञानिक अथवा प्रविधिज्ञ की शक्तियाँ उस विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित रह जाती हैं। उसकी भाषा इतनी विकसित नहीं हो पाती, जिसकी सहायता से वह उत्कृष्ट एवं सफल अनुवाद कर सके। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति को अनुसन्धान एवं अपनी प्रयोग शाला के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य के लिए अवकाश ही नही मिलता। अतः विषय का सम्पूर्ण ज्ञान होने पर भी भाषा के अपूर्ण ज्ञान के कारण, वह प्रायः अनुमान से काम लेता है।

पहले वर्ग के अनुवादक के पास शब्दों का जाल है, पर मूल के विचारों की पकड़ नहीं। दूसरे के पास मूल के विचार तो हैं, पर शब्दों का धरातल नहीं। एक विचारों के आगे से मूल भाषा के घूँघट को हटा नहीं पाता, दूसरा मूल विचार को अनुवाद की भाषा का आवरण दे नही पाता। इसलिए तीसरे विकल्प पर विचार करना पड़ता है, जिसके अनुसार वैज्ञानिक और भाषा-शास्त्री, दोनों मिल कर अनुवाद करते हैं। यह कुछ ऐसा है जैसे एक नयनहीन और दूसरा पाद-हीन मिल कर अपनी-अपनी क्षति-पूर्ति कर लेते हैं। एक चलता है और दूसरा उसके कन्धों पर बैठ कर मार्ग दर्शाता है। पर दोनों मिल कर भी उस गति एवं सुगमता से नहीं चल सकते हैं, जैसे कि वह एकाकी व्यक्ति—जिसकी देखने की और चलने की, दोनों शक्तियाँ कायम हैं। निस्सन्देह, भाषा-शास्त्री और वैज्ञानिक दोनों मिल कर सन्तोषजनक अनुवाद प्रस्तुत कर सकेंगे, परन्तु दोनों योग्यताओं वाले अकेले अनुवादक की अपेक्षा दो व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयास से समय, धन एवं शक्तियो का अधिक व्यय होगा।

अनुवाद करते समय अनुवादक को विभिन्न **सोपानों** में से गुजरना होता है। वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद की प्रक्रिया के सोपान कुछ इस प्रकार होने चाहिएँ :

१. सर्वप्रथम पूरी सामग्री का अध्ययन कर लेना चाहिए, ताकि विषय का सामान्य चित्र-सा सामने आ जाए। यदि प्रस्तुत विषय से पूरी जानकारी न हो, तो दोनों भाषाओं में तत्सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन कर लेना चाहिए, ताकि अनुवादगत विषय की पूर्व-पीठिका बन जाए। यदि अब भी कही-कहीं मूल

विचार पूर्णतः स्पष्ट न हो तो मूल तथा अनुवाद, दोनों की भाषाओं के विशेषज्ञों से मिलकर भ्रान्तियों का निवारण कर लेना चाहिए।

२. अब पूरी सामग्री का प्रसंगानुकूल अध्ययन करना चाहिए और साथ-साथ पारिभाषिक तथा कठिन शब्दों को रेखाङ्कित भी करते जाना चाहिए।

३. इसके पश्चात् रेखांकित शब्दों के पर्याय निश्चित किए जाने चाहिएँ।

४. अब सामग्री को सुविधानुसार कुछ खण्डों में विभाजित कर लें और पहले खण्ड अथवा अध्याय का कच्चा मसौदा तैयार कर लें। किन्तु खण्डों में विभाजन का यह अभिप्राय नहीं कि अनुवाद की इकाई ही उन्हीं खण्डों को मान लिया जाए। यदि ऐसा किया गया तो अनुवाद, अनुवाद न रहकर, पूरे खण्ड का सारांश अथवा भावार्थ हो जाएगा। वाक्य को ही इकाई मानकर अनुवाद करना चाहिए। वैज्ञानिक लेखन में हर शब्द एवं वाक्य एक नए विचार का वाहक होता है। पुनरावृत्ति अथवा फ़ालतू शब्दों की वहाँ गुंजाइश नहीं होती। अतः हर शब्द पर ध्यान देते हुए, वाक्यों को ही इकाई मानकर, अनुवाद करना चाहिए। जहाँ अनुवाद सही न जान पड़े, वहाँ चिह्न लगा दें।

५. भाषा और विषय के विशेषज्ञों को मिलकर चिह्नित स्थलों के अनुवाद के सम्बन्ध में शंकाओं का समाधान कर लें और प्रस्तुत खण्ड के अनुवाद को दोहराते हुए उसे अन्तिम रूप दे दें।

६. इसी प्रकार दूसरे और फिर तीसरे खण्ड को लेते हुए पूरी सामग्री का अनुवाद करें।

७. जिन प्रसंगों को उद्धृत किया गया है, उनको मूल ग्रन्थ से मिला लेना चाहिए। रासायनिक संकेतों, सूत्रों, समीकरणों, वक्र रेखाओं, आँकड़ों, सारणियों एवं चित्रों को भी मूल से मिला लेना चाहिए।

८. पूरा अनुवाद जब हो चुके तो शीर्षक, उपशीर्षक, अनुक्रमणिका, परिशिष्ट तथा प्राक्कथन आदि दे चुकने के बाद अपने अनुवाद का स्वयं सम्पादन भी कर लेना चाहिए ताकि वर्तनी और वाक्य-विन्यास की भूलों को सुधार लिया जाए।

वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद का पहला सिद्धान्त यह है कि अनुवाद

विचारों का होता है, शब्दों का नहीं। जिस वस्तु को 'पार ले जाना'[1] है, वह विचार है; मूल का शब्द तो उस विचार का परिधान मात्र है, जिसे त्याग देना है। अनुवाद, एक प्रकार से, आत्मा का एक शरीर को त्याग कर दूसरे में प्रवेश करने के समान है। विचार आत्मा है और मूल के शब्द उसका शरीर, जिसे त्याग कर विचार रूपी आत्मा ने नई भाषा के शब्द-शरीर को ग्रहण करना है। पाठक को भी विचार ही चाहिएँ, शब्द नहीं। जब योग्य अनुवादक मूल का एक वाक्य पढ़ता है, तो उस वाक्य में निहित विचार अथवा संकल्पना का पूरा चित्र उसके मानस-पटल पर बन जाना चाहिए, जिससे उसी विचार अथवा संकल्पना को वह अपनी भाषा में उतार सके। शब्द उसके साधन हैं, विचार साध्य। शब्दों के साधन द्वारा उसे साध्य विचार को अपने पाठकों के मानस तक ले जाना है। शब्दों के फेर में न पड़ कर, उसे अपना सारा कौशल, अपनी सारी दृष्टि भाव-ग्रहण और भाव-सम्प्रेषण पर केन्द्रित कर देनी है।

डॉ० जॉनसन की उक्ति है, "श्रीमान्, आप जिस लेखक को अनूदित करने चले हैं, उससे आगे बढ़ने का प्रयास कदापि न करें।"[2] परन्तु वैज्ञानिक अनुवादक कुछ रूपों में मूल लेखक से आगे भी बढ़ सकता है। अनुवाद यथावश्यक 'मूल से अच्छा' होना चाहिए—वह इस रूप में कि मूल में कुछ ऐसे स्थल हो सकते हैं, जो लेखक के सीमित भाषा-ज्ञान के कारण अथवा मूल रचना के उच्च-स्तरीय पाठकों के प्रति उद्दिष्ट होने के कारण, अस्पष्ट एवं दुरूह रह जाते हैं। ऐसे स्थलों का स्पष्टीकरण अनुवाद में आवश्यक है। इन स्थलों की व्याख्या वह पृष्ठ-पाद में 'अनुवादक की टिप्पणी' शीर्षक के अन्तर्गत दे सकता है। परन्तु इस प्रकार के स्पष्टीकरण में अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए। प्रायः ऐसा होता है कि धुंधले स्थलों पर प्रकाश डालते-डालते अनुवादक कई बार अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण भी दे जाता है। कहीं-कहीं तो वह अनुवाद को मूल से बेहतर बनाने के लोभ में अपनी ओर से कुछ परिवर्धन करने को भी उत्तेजित

---

1. Translation=(Trans+lation)=to carry across
2. "Never, Sir, try to excel the author you translate".
—Dr. Johnson

हो उठता है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता अनुवादक को अपने पद से गिरा देती है, क्योंकि उसका, अनुवाद अनुवाद न होकर, मूल की व्याख्या मात्र रह जाता है। वस्तुतः इस प्रकार के परिवर्धन एवं संशोधन करने का उसे कोई अधिकार नहीं और न ही कुछ छोड़ने का अधिकार है। मूल में दिए गए चित्र, सारणियाँ तथा वक्र-रेखाएँ सभी की सभी यथावत् दी जानी चाहिएँ।

मूल पाठ में मुद्रण अथवा टाइप की अशुद्धियाँ अनुवादक को तुरन्त भाँप लेनी चाहिएँ, क्योंकि उनका निवारण भी अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरणतया, 'Newton's Law of Motion' के स्थान पर यदि कहीं 'Mewton's Law of Motion अथवा 'H_2SO_4' (सल्फ्यूरिक अम्ल) के स्थान पर यदि 'H_4SO_2 छपा है, तो स्पष्ट है कि ये मुद्रण अथवा टाइप की अशुद्धियाँ हैं। इन्हें सुधार लेना चाहिए। यदि लेखक की अपनी कोई अशुद्धि अनुवादक की पकड़ में आ जाए, तो उसे संशोधित कर देने के साथ, इस बात का उल्लेख भी टिप्पणी मे कर देना चाहिए कि प्रस्तुत संशोधन का आधार-स्रोत क्या है।

यदि किसी शब्द अथवा मुहावरे के सम्बन्ध में संदेह हो, तो अनुवाद में इस बात का संकेत कर देना जरूरी है। सब से अच्छा तो यह होगा कि संदिग्ध अर्थ के आगे मूल शब्द अथवा मुहावरा और उसका शाब्दिक अनुवाद कोष्ठक में दे दिया जाए। मूल लेखक के अभीष्ट अर्थ के स्थान पर अनुवादक ने जो अनुमानित अर्थ दिया हो, उसके सम्बन्ध में वह टिप्पणी भी दे सकता है।

अनुवाद करते समय कुछ ऐसी भी संकल्पनाएँ आ सकती हैं; जिनके लिए अनुवादक के पास अपनी भाषा मे शब्द उपलब्ध न हों और वे पाठकों के लिए बिल्कुल नई हों। ऐसी दशा में अनुवादक के लिए यही उपयुक्त है कि उस शब्द को अननूदित छोड़ दे और स्पष्टीकरण के लिए उसकी (टिप्पणी में) व्याख्या कर दे।

यद्यपि, वैज्ञानिक लेखन में अभिधा शक्ति प्रधान होती है, फिर भी शब्द का अर्थ उसके प्रसंग में ही ग्रहण करना चाहिए। शब्द की विभिन्न अर्थ-छायाओं को समझे बिना अर्थ का बोध सर्वत्र सम्भव नहीं है। मात्र शब्दकोश की सहायता से सही अनुवाद नहीं हो सकता। अनुवादक के मन से प्रसंग ओझल होते ही सही अर्थ दुर्ग्राह्य हो जाता है। शब्द तो केवल ईंट और पत्थर हैं, जिन्हें भवन का

रूप देना है। पर कौन-सा शब्द-पत्थर कहाँ उपयुक्त रहेगा, इसका निर्णय अनुवादक को अपने विषय-ज्ञान तथा विवेक-शक्ति के द्वारा प्रसंगविशेष के अनुसार ही करना होगा।

वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा कैसी हो, यह रचना के प्रयोजन पर निर्भर करता है। रचना जिस स्तर के पाठक के प्रति उद्दिष्ट है, भाषा भी उसी स्तर की होनी चाहिए। अनुवाद का आदर्श है वर्णन की स्पष्टता। अतः भाषा बोझिल और कठिन नहीं होनी चाहिए। जटिल वाक्य-रचना अनुवाद को दुरूह बना देती है। वर्ण्य-विषय की गंभीरता और विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली के कारण, इन रचनाओं की भाषा पहले से ही कठिन होती है। अतः यथासंभव भाषा की सरलता एवं सुबोधता पर ध्यान देना चाहिए। हर भाषा की अपनी-अपनी गठन होती है। अनुवाद की भाषा भी अपनी प्रकृति और गठन के अनुरूप होनी चाहिए। उसमें मूल भाषा का प्रभाव दिखाई नहीं देना चाहिए।

पहले बताया जा चुका है कि वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन मे शैली का महत्त्व गौण है। अतः अनुवादक को शैली के अनुवाद पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु कुछ रचनाओं का वक्तव्य जान-बूझ-कर विनोद प्रिय अथवा रोचक शैली में दिया होता है। कहीं मोहक प्रसंग देकर तो कहीं काव्य-पंक्तियाँ उद्धृत करके विषय को अधिकाधिक आकर्षक बनाने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणतया, अमेरिकन लेखक आर० आई० स्टीफेन्सन ने अपनी पुस्तक 'Exploring in Physics' में इसी शैली को अपनाया है। इस पुस्तक के 'Speed and Linear Acceleration' अध्याय में एक उदाहरण देखा जा सकता है—

"Suppose somewhat contrary to Shakespeare's lines,
'Love goes to love as schoolboy from his books ;
Love from love toward school with heavy looks,'
'you go home from school, a distance of 1320 yds, with a slower but uniform speed of 4 ft. per. sec.' What is your average speed from school to home ?···"

अच्छा यही है कि ऐसी काव्य-पंक्तियों का पद्य में ही अनुवाद किया जाए, ताकि मूल की-सी रोचकता एवं आकर्षण बना रहे। परन्तु ऐसा कर सकने में यदि अनुवादक असमर्थ है, तो लाचार इनका गद्यानुवाद करके पाद-टिप्पणी में मूल पंक्तियाँ दे देनी चाहिएँ।

व्यवहार में कई बार ऐसा होता है कि बहुत से तकनीकी अनुवाद तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं और प्रायः पाठक की अपेक्षा अनुवादक का विषय-ज्ञान कम होता है। ऐसी अवस्था में अनुवाद शाब्दिक तथा अपरिमार्जित रूप में करना अधिक उपयोगी रहेगा।

वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं के लिए जो अनुवाद किए जाते हैं, उनमें आंशिक अनुवाद भी होते हैं। ऐसे अनुवाद प्रायः विदेशी भाषा में प्रकाशित रिपोर्टों, पुस्तिकाओं आदि के केवल उन अंशों के किए जाते हैं, जो संस्था के लिए उपयोगी होते हैं। अनुवादक पहले सारी सामग्री का अध्ययन करता है, फिर उसमें से अपेक्षित अंशों का अनुवाद प्रस्तुत करता है। बेहतर यही है कि विदेशी पत्रादि का स्वयं अध्ययन कर लेने के बाद अनुवादक पहले मौखिक रूप में उसका सारांश प्रयोक्ता को सुना दे। इससे एक तो अनुवादक को इस बात का ज्ञान हो जाएगा कि विशिष्ट प्रयोक्ता के विचार में सूचना का कौन सा पक्ष आवश्यक है और दूसरे, संदिग्ध शब्दों एवं स्थलों का स्पष्टीकरण भी हो जाएगा। इसके बाद केवल उन्हीं अंशों का अनुवाद किया जाए, जो आवश्यक है।

अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने कुछ **कठिनाइयाँ** आती हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। मान्य परम्पराओं के अभाव में भारतीय अनुवादक को तो कुछ अतिरिक्त कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है। हमारे यहाँ प्रामाणिक वैज्ञानिक संदर्भ-ग्रन्थों, विश्वकोशों, व्याकरण-ग्रन्थों तथा शब्द-कोशों आदि का अभाव है। जो कोश उपलब्ध हैं, उनमें विज्ञान की किसी एक भी शाखा के पूरे शब्द नहीं मिलते।

वैज्ञानिक शब्दावली की प्रकृति सामान्य शब्दों से भिन्न है। वैज्ञानिक शब्द का विज्ञान की हर शाखा में अलग अर्थ हो सकता है। अनुवादक को अर्थ की ये भिन्नताएँ स्मरण रखनी पड़ती है। ऐसे शब्दों के अर्थ निश्चित होते हैं। हर शब्द के लिए अनुवादक को उसका निश्चित पर्याय ही ढूंढना पड़ता है, मिलते-

जुलते अर्थ वाले शब्द से यहाँ काम नहीं चल सकता। विशेषतः नए शब्दों के लिये इस प्रकार की बड़ी कठिनाई आती है। ऐसे शब्दों की व्याख्या कर देने से काम चल सकता है। परन्तु वैज्ञानिक अनुवाद में इस प्रकार की स्वतन्त्रता से, जहाँ तक हो सके, बचना चाहिए।

मूल की शिथिल वाक्यरचना और अस्पष्ट अभिव्यञ्जना भी अनुवादक के लिए एक समस्या है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिज्ञ अपने विषय में तो निपुण हो जाते हैं, पर उनकी भाषा कई बार शिथिल रह जाती है, जिससे उनके वाक्य जटिल एवं भाव अस्पष्ट रह जाते हैं। फलतः अनुवादक को अभीष्ट अर्थ ग्रहण करने में बहुत कठिनाई पड़ती है।

इसके अतिरिक्त जो दो समस्याएँ अनुवादक के सामने विशेष रूप से आती हैं, वे हैं—दो भाषाओं के वाक्य-विन्यास की भिन्नता तथा पारिभाषिक शब्दावली का अभाव। हर भाषा का वाक्य-विन्यास अपने ढंग का अलग होता है। अंग्रेजी में लम्बे-लम्बे वाक्यांशों वाली संयुक्त वाक्य-रचना की प्रवृत्ति है। वहाँ इसी को भाषा का सौष्ठव माना जाता है। परन्तु भारतीय भाषाओं में छोटे-छोटे सुगठित वाक्यों की रचना सुन्दर लगती है। अतः अंग्रेजी से इन भाषाओं में अनुवाद करते समय मूल पाठ के लम्बे वाक्य को, यथावश्यक एकाधिक छोटे-छोटे वाक्यों में फैला देना चाहिए। यदि अनुवाद में भी मूल के समान जटिल वाक्य-रचना कर दी गई, तो विषय की दुरूहता बढ जाएगी और अर्थ-बोध नहीं हो सकेगा। जटिल वाक्यों को तोड़ कर छोटे-छोटे वाक्यों में अनुवाद करते समय मूल भाव में अन्तर पड़ने की आशंका बनी रहती है। अतः अनुवादक को अत्यन्त सावधानी से काम लेना चाहिए।

वैज्ञानिक अनुवाद की सबसे बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में होती है। विदेशी शासन-काल में भारत में वैज्ञानिक चिन्तन और वैज्ञानिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रही है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जब वैज्ञानिक अनुवाद तथा मौलिक साहित्य-सृजन की आवश्यकता पड़ी तो विभिन्न संस्थाओं द्वारा वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य बड़े जोरों से आरम्भ होने लगा। परन्तु पूर्ण-रूपेण ऐसी कोई प्रामाणिक शब्दावली सामने नहीं आ सकी, जिसे अनुवादक समान रूप से अखिल भारतीय स्तर पर प्रयोग कर सकें।

इसका कारण यह है कि शब्दावली निर्माण के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार रहे हैं, जिनको हम मुख्यतः दो वर्गों में बाँट सकते है। पहले वर्ग की राय है कि विज्ञान और टैकनॉलजी में प्रयुक्त सभी शब्दों को वैसे-का-वैसा ले लिया जाए। इनके अनुसार, यदि विदेशी शब्दावली को न अपनाया गया, तो विज्ञान के क्षेत्र में हम पिछड़ जाएंगे। आज विदेशी भाषाओं ने जब हमारी योग-विद्या के कुछ शब्दों को अपना लिया है, जैसे योग, इड़ा, पिंगला, आत्मा, आदि, फिर हमें बने-बनाए विदेशी शब्दों को अपना बनाने में संकोच क्यों? 'स्पुतनिक' शब्द रूसी होकर भी आज विश्व की सभी भाषाओं में प्रयुक्त होता है। दूसरे वर्ग की राय में, जिनका आदर्श सांस्कृतिक पुनरुत्थान है, सारी शब्दावली संस्कृत के आधार पर बनानी चाहिए। यदि विदेशी शब्दों को अपना लिया गया, तो भाषा खिचड़ी बन जाएगी। विदेशी शब्द हमारे लिए अपारदर्शी है, जबकि उनमें निहित विचार सजीव एवं सक्रिय। इसके विपरीत भारतीय शब्द हमारे लिए पारदर्शी हैं—शीशे के समान, जिन के भीतर अर्थ अथवा संकल्पनाएँ हमें स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। चीनी विद्यार्थी जब विज्ञान पढ़ता है, तो उसे लगभग सभी वैज्ञानिक शब्द परिचित-से लगते हैं, क्योंकि वे उसकी अपनी मातृ-भाषा के शब्द हैं। विदेशी शब्द कठोर पत्थर के समान हैं, जिन्हें पचाना अत्यन्त कठिन है। उनके अर्थों को रटना पड़ता है, शब्द पढ़ते ही उनकी परिभाषा का सहज रूप से बोध नहीं होता। वस्तुतः, आंशिक रूप से दोनों के ही विचार सही हैं। परन्तु आज की वस्तु-स्थिति को दृष्टि में रखते हुए बीच का मार्ग अपनाना अधिक उपयुक्त होगा। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने कुछ ऐसा ही मार्ग अपनाया है। शब्दावली को एक-दम भारतीय कर देने से अराजकता फैल सकती है। हमें केवल विज्ञान के नए विद्यार्थी को दृष्टि में नहीं रखना, बल्कि उन सभी वर्ग के पाठकों की सुविधा का ध्यान रखना है, जो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं तथा जिन्हें उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में जाना है। निस्सन्देह संकलपना-मूलक शब्दों के लिए तो हमें भारतीय शब्दों का निर्माण अवश्य कर लेना चाहिए, क्योंकि ऐसे शब्दों की यह विशेषता है कि इन के भीतर पारिभाषिक संकल्पनाएँ निहित रहती हैं। इनका बोध तभी संभव है, जब शब्द भारतीय हों। हाँ, वैज्ञानिक यौगिकों, तत्त्वों, आविष्कारकों के नाम

पर आधारित संज्ञाओं को हम ज्यों का त्यों स्वीकार कर सकते हैं। उससे अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व भी बना रहेगा और अराजकता भी नहीं फैलेगी। जिन तत्त्वों अथवा धातुओं आदि के भारतीय नाम हमारे पास पूर्व-प्रचलित हैं, उनके लिए विदेशी शब्दों की आवश्यकता नहीं, यथा तांबा, सोना, चान्दी, नीला-थोथिया आदि। परन्तु उनके अन्तर्राष्ट्रीय नामों से फिर भी पाठक तथा अनुवादक को परिचित होना जरूरी है। अनुवाद करते समय यथावश्यक नए भारतीय शब्दों के साथ कोष्ठक में अंग्रेजी संज्ञाएं भी लिख देनी चाहिएँ, ताकि दोनों वर्गों के पाठकों को सुविधा रहे। इस प्रकार धीरे-धीरे हम अधिकाधिक भारतीय शब्दों को अपना सकते हैं। डच और जर्मन आदि योरोपीय भाषाएँ जब वैज्ञानिक साहित्य की आरम्भिक अवस्था में थी, तो इन सभी ने ग्रीक और लेटिन शब्दावली पर आधारित तकनीकी शब्दावली को अपना लिया और बाद में धीरे-धीरे उन्हें राष्ट्रीय पर्यायों से बदलते गए। रूसी भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली मे भी प्रायः हर पदार्थ अथवा संकल्पना के लिए दो-दो शब्द हैं—एक योरोपीय भाषा के शब्द का लिप्यंतरण और दूसरा शुद्ध-देशी शब्द। ऐसा लगता है कि कुछ समय तक, इस देश में व्याप्त राष्ट्रीयता की तीव्र भावना के फलस्वरूप देशी शब्द विदेशी पर्यायों पर धीरे-धीरे हावी हो जाएँगे। जिन वैज्ञानिक उपकरणों, सिद्धान्तों तथा मशीनों आदि की संज्ञाएं उनके अनुसन्धानक, अन्वेषक अथवा निर्माता के नाम पर रखी गई हैं, उनका रूसी भाषा में अपने उच्चारण के अनुसार लिप्यन्तरण कर दिया गया है।

वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों में रासायनिक संकेतों, सूत्रों एवं समीकरणों का बहुत महत्त्व है। अतः उनके अनुवाद के रूप का प्रश्न भी विचारणीय है। चूँकि हमने तत्त्वों और यौगिकों आदि के नाम विदेशी रहने दिए हैं, अतः हमें संकेतों, सूत्रों एवं समीकरणों को यथावत् लेना पड़ेगा। उदाहरणतया,

"When Sulphuric Acid acts on Zinc, it produces Zinc Sulphate and Hydrogen.

$$Zn + H_2SO_4 = Zn\,SO_4 + H_2$$

का अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए :

"जब सल्फ्यूरिक अम्ल, जस्त (Zinc) पर क्रिया करता है तो जिक सल्फेट और हाइड्रोजन बनते हैं।

$$Zn + H_2SO_4 = ZnSO_4 + H_2$$

जस्त सल्फ्यूरिक अम्ल जिंक सल्फेट हाइड्रोजन

(Zinc) (Sulphuric Acid) (Zinc Sulphate) (Hydrogen)

विज्ञान के क्षेत्र में हमारे नाप तोल की इकाइयाँ योरोपीय देशों से मिलती-जुलती हैं। जहां उनके परिवर्तन की आवश्यकता नहीं, वहां उनका लिप्यन्तरण कर देना चाहिए अथवा उनको यथावत् उद्धृत कर देना चाहिए। यदि परिवर्तन अभीष्ट हो, तो सरल उपाय यह है कि उन्हें परिवर्तित करने की बजाए पुस्तक के अन्त में परिवर्तन-सारणी दे दी जाए ताकि पाठक यथा-वश्यक उसका प्रयोग कर सकें।

आज का युग मशीनों का युग है। हर काम के लिए मशीनों ने अपने हाथ पसारे हैं। फिर भला, अनुवाद कार्य के लिए मशीनें पीछे कैसे रहतीं। आज वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य का **मशीन द्वारा** अनुवाद कुछ सीमा तक संभव हो गया है। भारत में भी चीनी साहित्य के मशीन द्वारा अनुवाद की व्यवस्था पर विचार किया जायगा, ऐसी सूचना मिली थी। मशीन द्वारा वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद संभव इस लिए है, क्योंकि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की अपनी विशिष्ट सीमित शब्दावलियाँ हैं। अनुवाद की भाषा मे इन शब्दों के निश्चित पर्याय स्थिर किए जा सकते हैं। 'Ferrous' का अनुवाद भौतिकी के हर प्रसंग में, हर वाक्य में 'लोहस' ही होगा। मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है। मूल के शब्दों को पहले विभिन्न संकेतों में परिवर्तित किया जाता है, जो मूल के शब्दों के द्योतक होते हैं। ये संकेत छिद्रित-पत्रक पर अंकित करके मशीन में प्रेषित कर दिए जाते हैं। मशीन इन संकेतों के आधार पर 'अनुवाद के संकेत' दे देती है, जो अनुवाद के शब्दों के द्योतक होते हैं। अनुवाद के ये संकेत तब एक दूर-मुद्रक द्वारा ग्रहण किए जाते हैं, जो इन्हें अनुवाद की भाषा के शब्दों में टाइप कर देता है। टूटे-फूटे वाक्य खण्डों के रूप में प्रस्तुत अनु-वाद तब नियुक्त सम्पादक द्वारा भाषा की प्रकृति के अनुसार परिष्कृत किया जाता है।

मशीनी अनुवाद की अपनी सीमाएं भी हैं। पहली सीमा यह है कि मशीन स्वतन्त्र रूप से अनुवाद नहीं कर सकती। इसे मूल पाठ को संकेतों में परिवर्तित करने के लिए और बाद में प्रस्तुत अनुवाद को अन्तिम रूप देने के लिए सम्पादक की आवश्यकता है। दूसरे, अनुवाद का जो आधारभूत सिद्धान्त है कि 'अनुवाद शब्दों का नहीं विचारों का होना चाहिए', उसकी यहां अवहेलना होती है। इस प्रकार मशीन प्रसंगानुकूल वास्तविक अनुवाद प्रस्तुत नहीं कर सकती। तीसरे, इन मशीनों की शब्द-संग्रहण शक्ति बहुत कम है। इनमें केवल कुछ सहस्र शब्दों को ही स्थान मिल सकता है। परिणामतः एक भाषा के भी पूरे शब्दों के पर्याय नही मिल पाते। मशीनी अनुवाद अभी अपनी शैशवकालीन अवस्था में है। संभव है निकट भविष्य में इसमें पर्याप्त सुधार कर लिया जाए। अब भी, भले ही ये मशीनें अनुवादक का पद ग्रहण न कर सकें पर अपनी सीमाओं के साथ ये अनुवादक की सहायक तो हैं ही।

शैक्षणिक अनुवाद

—चन्द्र मौद्गल्य

"अनुवादक वंचक होते हैं" इटली की बहुत प्रसिद्ध कहावत है। कहावत सच भी हो तो यह तो मानना पड़ेगा कि अनुवादक बड़े ईमानदार वंचक होते हैं कि स्वयं अपनी वंचकता का ढिंढोरा पीटने वाली इस कहावत को भी उन्होंने इतालवी न जानने वालों के लिये सुलभ कर दिया।

"सारा अनुवाद कार्य असमाधेय समस्या का समाधान खोजने का प्रयास मात्र है।" हम्बोल्ट का यह कथन बिल्कुल वैसा ही है जैसा दर्शन-शास्त्र के बारे में कहा जाता है कि "दर्शन-शास्त्र अंधेरी कोठरी में ऐसी काली बिल्ली को खोजने का प्रयास मात्र है, जो वहाँ है ही नही।" स्पष्ट है, जिस प्रकार दूसरी कहावत से दर्शन-शास्त्र का महत्त्व नही घटता उसी तरह पहले कथन से अनुवाद का महत्त्व नही घटता।

बुद्ध भगवान् के एक विदेशी शिष्य ने अपने देश में जाकर अपनी भाषा में उनके उपदेशों का प्रचार करने के लिये अनुमति चाही तो उन्होंने कहा, "वत्स, मेरा उपदेश जिसे ग्रहण करना होगा वह मेरी ही भाषा में उसे ग्रहण करेगा।" स्पष्ट है कि वे मानते थे कि उनका उपदेश दूसरी भाषा में वैसे का वैसा नहीं उतारा जा सकेगा। परंतु इतिहास साक्षी है कि आज जबकि उनकी भाषा पालि जानने वाले विद्वान गिने-चुने रह गये हैं संसार की अनेक भाषाओं में उन का संदेश ऊंचे स्वर से गुंजरित हो रहा है।

थ्योडोर एच० सेवरी का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि "अनुवाद प्रायः उतना ही प्राचीन है जितना मूल लेखन।" सुदूर ऐतिहासिक काल में धर्म-प्रचार तथा ज्ञानार्जन आदि उद्देश्यों को लेकर अनुवाद-कार्य होता चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार में अनुवादों का बहुत योग रहा है। पंचतंत्र की कथाएं अरबी में अनूदित हुई और अरबी से वे पश्चिमी भाषाओं में

रूपांतरित होकर ईसप की कहानियाँ बन गयी। विदेशी यात्री भारत के ग्रंथ रत्नों को अपने साथ ले जाना अपनी दुःसाहसिक यात्राओं का बड़ा उद्देश्य मानते थे। तिब्बत, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि देशों में तो ढेरों व्यक्ति ऐसे होते थे जिनकी वृत्ति ही भारतीय साहित्य, धर्म, ज्योतिष और आयुर्वेद आदि विज्ञानों का अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद करने की होती थी।

आज चक्र उल्टा घूम गया है। अपनी दीर्वकालीन पराधीनता के कारण जिस तरह हम आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र मे पिछड़े वैसे ही विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों और कला-शिल्पों में भी पिछड़ गये। यह सच है, हमारे गौराग प्रभुओं ने हमारी शिक्षा का विकास किया और यह विकास हमारे लिये लाभकारी भी रहा क्योंकि उसी शिक्षा के कारण हम नवजाग्रत पश्चिम की राजनीतिक और व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना से परिचित हुए और अंग्रेजी के माध्यम से हमने एडमंड बर्क, रूसो, डा० जान्सन आदि के विचारों को आत्मसात् किया। यूरोप के प्रगतिवादी और व्यक्ति स्वातंत्र्य मे विश्वास रखने वाले निर्भीक विचारों ने हमारे स्वतंत्रता संग्राम के नेताओ को बहुत प्रभावित किया। तो भी यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी माध्यम से हमें शिक्षा देने का अंग्रेजों का उद्देश्य सस्ते क्लर्क उत्पन्न करना ही था। यही कारण है कि शिक्षा में केवल अंग्रेजी भाषा के ज्ञान पर ही जोर दिया गया। पाँचवीं कक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक विद्यार्थियों का सबसे अधिक ध्यान और समय अंग्रेजी के ज्ञान को पक्का करने में लग जाता था। इसी के परिणामस्वरूप वे या तो अन्य ज्ञान विज्ञानों की शिक्षा से वंचित रह जाते थे या फिर उन पर बहुत ही कम ध्यान दे पाते थे और दुर्भाग्य तो यह है कि उनमे से अधिकाश इतना ध्यान देने पर भी अंग्रेजी पर पूरा अधिकार प्राप्त नहीं कर पाते थे।

शायद महात्मा गांधी ने पहले पहल यह महसूस किया था कि, "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने की पद्धति से अपार हानि होती है"। और "मां के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनाई देते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिये वह विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा लेने से टूट जाता है।" उन्होंने यह भी कहा, "देशी भाषा का अनादर राष्ट्रीय आत्महत्या है।" आज के शिक्षाशास्त्रियों ने अनेक परीक्षण करके यह प्रमाणित

किया है कि मातृ-भाषा में शिक्षा लेने वाला विद्यार्थी विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों से ज्ञान-संचय में ५-६ वर्ष आगे रहता है। विद्यार्थियों की इस कठिनाई के अतिरिक्त अपने लोकतंत्र को सार्थक बनाने और शिक्षित व्यक्तियों तथा जनसाधारण के बीच की खाई को पाटने के लिये यह जरूरी है कि शिक्षा अपनी ही भाषाओं में दी जाये ताकि जनसाधारण देश के प्रशासन में पूरा पूरा सहयोग दे सके।

प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि उनमें विविध समाजशास्त्रीय, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों की अच्छी पाठ्य पुस्तकें नहीं है। वास्तव मे यह एक चक्र है। पाठ्य-पुस्तकें नहीं हैं इसलिये प्रादेशिक भाषाओं में पढ़ाई नहीं होती और पढ़ाई प्रादेशिक भाषाओं में नही होती इसलिये पाठ्य पुस्तकें नहीं बनतीं। इस चक्र को तोडने के लिये ही विभिन्न विश्वविद्यालयों और राज्य सरकारों के शैक्षिक संगठनों द्वारा संदर्भ-ग्रंथों और पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद की योजनाएं बनायी गयी है। और निजी प्रकाशकों को भी वैज्ञानिक विषयों और मानव-विद्याओं सम्बन्धी पुस्तकें, आरंभ में, अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कराकर, प्रकाशित करने के लिये प्रेरित करने के लिये सरकार भी आर्थिक सहायता देगी।

ऐसी पुस्तकों का अनुवाद महत्त्वपूर्ण तो है परन्तु सरल नही है। बल्कि क्वासिमोडो ने तो यहाँ तक लिखा है कि, "कवियों की कृतियों का अनुवाद किया जा सकता है परंतु शिक्षाविदों की कृतियों का अनुवाद करना असंभव है।" इस कथन को अत्युक्तिपूर्ण मान लें तो भी यह ऐसे अनुवाद की कठिनाइयों की ओर संकेत अवश्य करता है।

शैक्षणिक पुस्तकों का अनुवाद करने वालों के लिये यह आवश्यक है कि एक, उन्हें जिस भाषा में अनुवाद करना है उसका पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए और दूसरे जिस भाषा में अनुवाद करना है उसका गम्भीर ज्ञान होना चाहिए, बल्कि यदि वह उसकी मातृ-भाषा हो तो और भी अच्छा है, क्योंकि उन्हें भाषा के संस्कारों और उसकी प्रकृति की तथा उसके शब्दों के अर्थो की विभिन्न छायाओं का सहज ज्ञान होगा जो अनुवाद की उत्कृष्टता को निश्चय ही बढ़ा देगा। तीसरी, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, विषय का ज्ञान। जिस

विषय की पुस्तक है उसमें भी अनुवादक की गहरी पैठ होनी अनिवार्य है। इन तीनों बातों के बिना तो अनुवाद कार्य हो ही नहीं सकता।

शिक्षा ग्रंथों के अनुवाद मे एक और योग्यता का होना अनिवार्य है। यहाँ अनुवादक को शिक्षण का पर्याप्त अनुभव होना चाहिये। अनूदित अथवा अनुकूलित पाठ्य पुस्तकों के ज़रिये से शिक्षा देते समय किन-किन कक्षा-कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इनका जब तक उसे स्वानुभूत अनुभव नहीं होगा तब तक वह अपने कार्य को अपेक्षित स्तर तक लाने में सफल नहीं होगा।

अनुवादक की योग्यताओं के बाद अनुवादक की समस्याएँ आती है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण और जटिल समस्या है पारिभाषिक शब्दावली की। हमारे यहाँ दर्शन-शास्त्र और ज्योतिष आदि को छोड़कर बाकी आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों से संबंधित पारिभाषिक शब्दावली का अभाव है। यहाँ इस कठिनाई पर विस्तार-पूर्वक चर्चा संभव नहीं है। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि अब तक पारिभापिक शब्दावली के निर्माण के संबंध मे किये गये विभिन्न प्रयत्नों में शिक्षा-मंत्रालय के हिन्दी निदेशालय का प्रयत्न सबसे अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि उसमें किसी तरह की रूढ़िवादिता को प्रश्रय न देकर संतुलित दृष्टि-कोण अपनाया गया है, यद्यपि इसमें सुधार की पूरी पूरी गुंजाइश है। इन नये बनाये जाने वाले शब्दों के लिंग का निर्देश भी ऐसे पारिभापिक शब्द-कोषों में अवश्य किया जाना चाहिये, क्योंकि हिन्दी की प्रकृति के अनुसार वाक्य का निर्माण ही लिंग के अनुसार होता है। पारिभाषिक शब्दों की एकरूपता भाषा की अराजकता की संभावना को समाप्त करने के लिये ही नहीं, बल्कि ज्ञान-विज्ञान के विकास के लिये भी आवश्यक है। अतः जहाँ तक हो सके विभिन्न अनुवादकों को एक ही शब्दावली के प्रयोग के लिये प्रवृत्त करना चाहिये। इस संबंध में ध्यान रखना होगा कि यह शब्दावली यथासंभव सरल हो। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर अर्थवत्ता की दृष्टि से यदि सरलता का परित्याग करना पड़े तो ऐसा करना असमीचीन नहीं है। यदि पारिभापिक शब्दावली यथाशक्य सभी प्रादेशिक भाषाओं में एकसी होगी तो अनुवादों में एकरूपता रहेगी तथा ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के प्रसार के लिये भी विशेप रूप से उपयोगी रहेगी।

आरंभ में किये जाने वाले अनुवादों में पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी

रूप भी कोष्ठ मे देना, पढ़ने वालों और पढ़ाने वालों, दोनों के हित में रहेगा और धीरे-धीरे जब हमारे अपने पारिभाषिक शब्द मूल शब्दों के अर्थ की छाया-विशेष को निरंतर प्रयोग द्वारा व्यक्त करने लगें तो कोष्ठ के शब्दों को हटाया जा सकता है। जैसे Reformation या Renaissance जैसे शब्दों के केवल पर्याय दे देने से काम नहीं चलेगा क्योंकि इन शब्दो के पीछे जो इतिहास है उसे एका-एक गढ़े गये पारिभाषिक शब्दों द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। इस प्रकार के शब्दों के अंग्रेजी रूप कोष्ठ में देना आवश्यक होगा।

अनुवाद की एक और सामान्य समस्या है जिसका शैक्षणिक अनुवाद की दृष्टि से और भी महत्त्व है, वह है व्यक्तियों और स्थानों के नामों की समस्या। अभी तक हमारे यहां विदेशी नामों को लिखने के लिये कोई ऐसी प्रणाली नहीं निकाली गयी है जिससे इस संबंध में भी कुछ एकरूपता आ सके। Wellesley शब्द को हिन्दी में वेलज़ली, वेलजली, वेल्जली, वेलसली और वेलेसली इन पांच रूपों मे हिन्दी में अनूदित इतिहास की पुस्तकों में देखा गया है। रूसी का लेव ताल्स्ताय हमारे यहा अंग्रेज़ी के माध्यम से लियो टालसटाय के रूप में आया और अब जब मूल रूसी से हमारा सम्पर्क बढ़ा तो पहला रूप भी प्रचलित हो गया। इस प्रकार ऐसी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को हिन्दी में या दूसरी प्रादेशिक भाषाओ में लिखते समय भी एकरूपता लाने के लिये यदि हो सके तो अधिकृत विद्वानों द्वारा ऐसे शब्द संग्रह निकाले जायें जिनमें इन शब्दों के मूल रूपो के साथ ध्वनिशास्त्र और हमारी भाषा की प्रकृति को ध्यान में रखकर निश्चित किये गये इन शब्दों के अधिकृत हिन्दी रूप दिये जायें। हिन्दी से फिर अन्य प्रादेशिक भाषाओं में उन्हें रूपांतरित करने में कठिनाई नही होगी।

इस लेख में अन्यत्र भी कहा गया है कि शैक्षणिक ग्रन्थों के अनुवादक को स्वयं शिक्षण का अनुभव होना चाहिये। इससे वह कक्षा में पठन-पाठन में होने वाली कठिनाइयों को समझ सकेगा। यह इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि अध्यापक यह फैसला कर सकता है कि अमुक पुस्तक का अनुवाद अमुक स्तर के छात्रों के लिये किया जाना है तो अनुवाद अमुक स्तर का होना चाहिए जिससे कि छात्रों को समझने में कठिनाई न हो। यह शिक्षा का सामान्य सिद्धांत है कि जैसे जैसे छात्रों के ज्ञान का स्तर बढ़ता है वैसे वैसे विषय

की गंभीरता के साथ-साथ भाषा भी उत्तरोत्तर गंभीर होती जाती है। उदाहरणाथ माध्यमिक कक्षा के लिये भौतिक-शास्त्र की किसी पुस्तक की भाषा उच्च कक्षाओं के लिये इसी विषय की पुस्तक से सरल और सुबोध होगी। अतः अनुवाद करते समय अनुवादक को यह बात ध्यान में रखनी होगी कि अनुवाद किसके प्रति उद्दिष्ट है। आरंभिक कक्षाओं के लिये किये गये और बाल साहित्य के अनुवादों मे विषय की गंभीरताओं में न जाकर मोटे तौर से विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों के सिद्धान्तों का अपनी भाषा मे रोचक ढंग से रूपांतर करना होता है। इसी प्रकार प्रौढ़ साहित्य के अनुवाद के लिये किसी पुस्तक का शब्दशः अनुवाद करने की बजाए विषय को सरल ढंग से अपनी भाषा में समझाना उपयुक्त रहता है। उच्च कक्षाओं के लिये किये गये शैक्षणिक पुस्तकों के अनुवादों में भी ज्ञान-विज्ञान के स्तर के अनुरूप भाषा को यथासंभव सरल रखना श्रेयस्कर होगा परतु इस संबंध मे मुख्य लक्ष्य विषय की अभिव्यक्ति होना चाहिये। यदि किसी विशेष पुस्तक मे विषय को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया गया है, पारिभाषिक शब्द अर्थ की सही छाया दे रहे हैं तो फिर केवल अनभ्यास के कारण भाषा को क्लिष्ट नही मानना चाहिये।

इधर शिक्षा का स्कूल कॉलिजों की शिक्षा से अलग एक और क्षेत्र बनता बढ़ता जा रहा है। वह है सामान्य शिक्षा का क्षेत्र। विदेशों में संसार भर के ज्ञान-विज्ञानों, साहित्य-इतिहासों और कला-शिल्पों के बारे में हजारों ऐसी पुस्तकें प्रतिवर्ष प्रकाशित होती रहती हैं जो पढ़े-लिखे लोगों के सामान्य ज्ञान मे वृद्धि करती है। इन पुस्तकों की भाषा पारिभाषिक शब्दों से भरी नहीं होती है। इन में विषय की गहन जटिलताओं को छोड़कर उसके सिद्धान्तों की सरल, सुबोध और मनोरंजक ढंग से व्याख्या की जाती है। अंतरिक्ष यात्रा जैसे जटिल विषय भी इनमें ऐसे सरस ढंग से दिये जाते है कि सामान्य पठित व्यक्ति भी बिना वैज्ञानिक फार्मूलों के चक्कर में पड़े, मोटे तौर से विषय को समझ जाता है। इस प्रकार की पुस्तकों के अनुवाद की आवश्यकता तो स्वतः सिद्ध ही है। समस्या केवल एक है, वह है निश्चय की। कोई भी सशक्त संगठन इस कार्य को उठा ले तो कोई समस्या नहीं है।

शैक्षणिक अनुवाद के संबंध में एक आशंका प्रायः की जाती है वह यह

कि इस प्रकार अनुवाद ग्रंथों पर आधारित रहकर शिक्षा का स्तर गिर जायेगा। परन्तु यह आशंका इसलिये निराधार है कि एक पीढ़ी को तो अवश्य दिक्कत होगी क्योंकि उसे शिक्षा की भाषा की पटरी बदलनी है और उसे (विशेषकर विज्ञान के क्षेत्र में) अंग्रेजी और हिन्दी दोनों पारिभाषिक शब्दों को याद करना होगा। परन्तु उसके बाद स्थिति ठीक ही नहीं हो जायेगी बल्कि अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते समय हमारी शिक्षा का जो स्तर रहा है उससे कहीं ऊँचा स्तर अपनी भाषा में पढ़ने पर हमारी शिक्षा का हो जायेगा।

सूचना साहित्य का अनुवाद

—अशोक जी

इस समय हमारे देश में समाचार अधिकतर अंग्रेजी मे प्राप्त होते हैं और हिन्दी के पत्रों को इनका अनुवाद करना होता है। रेडियो के समाचार विभाग मे भी यही स्थिति है। अक्सर यह शिकायत सुनी जाती है कि हिन्दी के समाचारों की भाषा कठिन होती है। कुछ सीमा तक यह बात ठीक है। भापा की यह कठिनता संस्कृत के शब्दों के कारण नही, वरन् अंग्रेजी का शब्दश: अनुवाद करने के कारण होती है। अर्थात् हिन्दी समाचारों की भापा छाया कलुपित या अंग्रेजी विजड़ित होती है। एक उदाहरण लीजिये। फुटवाल के खेल की रिपोर्ट में एक अखबार ने लिखा—'**खिलाड़ी गोल न करके दुर्भाग्यपूर्ण रहा।**' खिलाड़ी ने ताक कर गेंद मारा या फेंका, पर दुर्भाग्य से गोल न हो सका। इसी प्रकार एक और समाचार में कहा गया कि अमुक टोली ने **शून्य के विरुद्ध तीन गोल कर दिए।** अर्थ यह है कि एक टोली ने तीन गोल मारे, दूसरी एक भी गोल न कर सकी।

अस्तु, समाचार का अनुवाद करते समय ध्यान शब्दों पर नही उनके अर्थ पर रहना चाहिए। अंग्रेजी में सेना को आर्म्ड फोर्सेज कहते है, हमें अनुवाद में सशस्त्र सेना न लिखना चाहिए, केवल सेना। इसी तरह 'तेल' हिन्दी में तिल, सरसों, चमेली, मूंगफली, गरी आदि के तेल को कहते है। वनस्पति कहते है जमाए हुए तेल अर्थात् डालडा आदि को; कुछ दिन पहले इसे घासलेट भी कहते थे। अंग्रेजी में पहली श्रेणी के तेल को वेजीटेबिल आयल (Vegetable oil) कहते हैं और दूसरे को हाइड्रोजेनेटिड आयल (Hydrogenated oil)। हिन्दी अनुवाद में पहली श्रेणी को भूल से वनस्पति तेल लिख देते है। इसी तरह फूड-ग्रेन का अनुवाद केवल 'अनाज' होना चाहिए, खाद्यान्न नहीं। वालंटरी इंस्टीट्यूशन का अनुवाद स्वैच्छिक संगठन न होकर सेवा या सार्वजनिक संस्था होना चाहिए।

अंग्रेजी के वाक्यों में प्रिपोजीशनों का भी अक्सर हिन्दी में आँखें मूँदकर अनुवाद होता है। जैसे अंग्रेजी में कहा जाता है—लैफ्ट फार आगरा—यहाँ फार का अनुवाद 'लिए' करके **'आगरा के लिए रवाना हुए'** नही लिखना चाहिए बल्कि 'आगरा रवाना हुए' या 'आगरे को रवाना हुए' लिखना ठीक है। इसी प्रकार अंग्रेजी मे 'वार अगेन्स्ट चाइना' का अनुवाद 'चीन के विरुद्ध युद्ध' नहीं 'चीन से युद्ध' लिखना ठीक होगा। इसी तरह 'लड़के द्वारा आत्महत्या' नहीं 'लड़के की आत्महत्या' होना चाहिए।

भाषा को सरल बनाने के लिये नीचे कुछ संकेत दिए जाते है :—

प्राप्त किया	के बजाय	पाया
मृत्यु को प्राप्त हुए	,,	मर गए
मत दान दिया	,,	मत दिया
पुरस्कार प्रदान किया	,,	पुरस्कार दिया
मकान निर्माण किया	,,	मकान बनाया
गोलियों का आदान-प्रदान	,,	दोनों ओर से गोलिया चली
अपनी मदद आप	,,	स्वावलंबन
जीवन-स्तर ऊंचा करना	,,	दशा या रहन-सहन सुधारना
किसी भी कीमत पर	,,	चाहे कुछ भी हो जाए
मानवी मूल्य	,,	मनुष्यता का आदर्श
मंत्रिस्तर पर वार्ता	,,	मंत्रियों में बातचीत
परिवार नियोजन	,,	संतति या गर्भ-निरोध
समुद्र पार (ओवरसीज़)		देशान्तर

अक्सर भाषा को शुद्ध बनाने के फेर में संस्कृत या संस्कृताभास शब्दों का ग़लत प्रयोग कर दिया जाता है, जैसे ग्राम को ग्राम्य। ग्राम्य का अर्थ भद्दा या गंवारू है, इसलिए ग्राम्य शिक्षा न लिखकर ग्राम शिक्षा लिखा जाय। धुएं को धूम्र लिखना भी ठीक नहीं। संस्कृत शब्द धूम्र है; धूम्र का अर्थ है धुंआरा या धुएं के रँग का।

अंग्रेजी के समाचार अधिकतर यह मान कर लिखे जाते हैं कि उनके पाठकों को देश का ज्ञान नहीं। जैसे तुलसीदास—द ग्रेट हिन्दी पोएट, बनारस—द

होली सिटी आव हिन्दूज । इन विशेषणों का अनुवाद आवश्यक नहीं । हिन्दी में कुछ आदरसूचक शब्द रूढ हो गए है, जैसे गोस्वामी तुलसीदास, भक्त रैदास, गुरु नानक, श्रीराम, श्रीकृष्ण, सीताजी, गंगाजी । अंग्रेजी में या तो आदरसूचक शब्द लिखे नही जाते या गलत लिखे जाते है । हिन्दी में गोस्वामी के बजाय संत तुलसीदास लिखना ठीक नहीं । क्रिया भी आदरार्थक लगनी चाहिए । राणा प्रताप अकबर से लड़ा नही, लड़े ।

अंग्रेजी मे किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में खबर देते हुए उसकी उम्र और पोशाक का भी उल्लेख कर दिया जाता है—रोचकता लाने के लिए । हिन्दी मे ध्यान रखना चाहिए कि यह उल्लेख तभी हो, जब उसका प्रसंग हो । "लाल साड़ी पहने हुए तीस वर्षीया श्रीमती अमुक ने कहा"— यहाँ लाल साड़ी या तीस वर्ष का कोई महत्त्व नहीं । हां, यदि लंगोटी लगाकर कोई आदमी लड़ने को तैयार हो तब उसका जिक्र किया जा सकता है ।

अंग्रेजी के कुछ शब्द हिन्दी में गलत ढग से लिये जाते हैं, जैसे 'आर्डनेंस' का 'आर्डिनेन्स' । पहले का अर्थ गोला-बारूद और दूसरे का हुक्म या फरमान है । टेकनीक को पता नहीं क्यों हिन्दी में तकनीक लिखा जा रहा है । अंग्रेजी के 'ट' वाले शब्द हिन्दी में ट ही लिखे जाते हैं, यथा, टाइम, टेबुल, ट्राम, टिकट; फिर टेकनीक ही क्यों तुतलाकर बोला जाए ।

विदेशी भाषा के शब्दों के लिंग-निर्णय में भी कठिनाई होती है, जैसे ट्रेन, ट्राम, कम्पनी, बिल्डिंग, बैट, बस, मशीन । कोई इनको पुल्लिग लिखता है, कोई स्त्रीलिंग । साधारणतः इनके हिन्दी पर्याय के अनुसार इनको लिख दिया जाता है, जैसे ट्रेन, रेल, ट्राम, बस, गाड़ी के समान स्त्रीलिंग लिखे जाते है पर मशीन तो यंत्र का पर्याय है, फिर भी स्त्रीलिंग लिखा जाता है । इंजन पुल्लिग है । यहां शायद इसके आकार का ध्यान रखा गया । मशीन छोटी, इंजन बड़ा । बड़ी मशीन भी होती हैं, पर पहले देश में सिलाई की मशीन बहुत प्रचलित हुई, वह छोटी होती थी । अतः मशीन स्त्रीलिंग हो गई । आगे भी नए विदेशी शब्द लिए जाएंगे । उनके लिंग के निर्णय में गड़बड़ ही रहेगी । साधारण नियम यह रखना चाहिए कि बेजान और बड़ी चीजों को पुल्लिग लिखा जाए ।

अनुवाद की भाषा, खासकर समाचारों के अनुवाद की भाषा, अंग्रेजी से बिलकुल अप्रभावित तो नहीं रह सकती, परन्तु अनुवादक यदि इस बात का बराबर ध्यान रखे कि जो कुछ वह लिख रहा है, वह अंग्रेजी न जानने वाले पाठक की समझ में आजाएगा, तो उसकी भाषा काफी साफ और प्रवाह-युक्त रह सकती है।

अखबारी अनुवाद

—उग्रसेन गोस्वामी

आधुनिक युग में समाचार-पत्रों का कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। उसके पन्नों में संसार भर का दर्द समाया रहता है। परन्तु संसार भर के दर्द को अपने सीमित साधनों से समेटना एक समाचार-पत्र के बूते की बात नहीं रही। कुछ महत्त्वपूर्ण स्थानों पर ही वह अपने संवाददाता रख पाता है और शेष संसार के समाचारों के लिए उसे विभिन्न समाचार एजेन्सियों का सहारा लेना पड़ता है। हमारे देश के समाचार-पत्र जिन समाचार-एजेन्सियों से समाचार लेते हैं, वे लगभग सभी की सभी एजेन्सियाँ, एक को छोड़कर, अंग्रेजी में ही समाचार देती हैं, जिनका बाद में समाचार-पत्र की भाषा में अनुवाद किया जाता है। और जो एक समाचार-एजेन्सी हिन्दी में समाचार देती भी है उसकी पहुँच अभी अत्यन्त सीमित है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित होना तो दूर की बात है, अभी वह राष्ट्रीय स्तर पर भी विकसित नहीं हो पाई है। अतः अपनी भाषा में ही मूल समाचार पाने की बात अभी बहुत दूर नजर आती है।

हमारी भाषाओं के कुछ बड़े-बड़े समाचारपत्र ऐसे हैं जिन्हें किसी बड़े अंग्रेजी अखबार के मालिकों ने एक पिच्छलग्गू के तौर पर शुरू किया था। ऐसे अखबारों को न केवल समाचार एजेंसियों के समाचारों का ही अंग्रेजी से अनुवाद करना होता है बल्कि उन्हें अपने बड़े भाई अंग्रेज़ी के अखबार के संवाददाताओं द्वारा अंग्रेजी में भेजे गये समाचारों को भी भारतीय भाषाओं में ढाल कर अपने पन्नों पर छापना होता है। इस कड़वे तथ्य को हमें मानना ही होगा कि भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों की अधिकांश सामग्री अनूदित होती है। और इस स्थिति में, आने वाले काफी समय तक, सुधार होने की कोई गुंजाइश नहीं है। निस्सन्देह यह स्थिति हमारी भाषाओं के पत्रों के विकास में एक बाधा है।

परन्तु मजबूरी है। हाँ, अच्छे अनुवाद से इस स्थिति में काफी हद तक सुधार किया जा सकता है।

'श्री अमुक द्वारा भगाई गई औरतो की सहायता······।' एक बार एक समाचारपत्र में एक समाचार की शुरुआत उपरोक्त वाक्य से हुई थी। कितना हास्यास्पद आरम्भ है। पाठक 'श्री अमुक द्वारा भगाई गई औरतें' इतना पढ़कर एक बार तो ठिठकेगा ही। इसी वाक्य को 'श्री अमुक ने···' से भी शुरू किया जा सकता था। यह तो कोई आवश्यक नहीं कि यदि अंग्रेजी में "by so and so' है तो उसका अनुवाद अवश्य ही 'अमुक द्वारा' ही किया जाये।

हमारे यहाँ अनुवाद में वाक्यविन्यास की बड़ी गड़बड़ी रहती है। अनुवादक महोदय प्रायः अनुवाद करते समय वाक्यविन्यास भी अंग्रेजी का ही अपना लेते हैं। एक उदाहरण देखिये: 'कोलम्बो, १ दिसम्बर, प्रधान मंत्री श्रीमती श्रीमाओ भंडारनायके द्वारा भारत-चीन सीमा विवाद पर एक सम्मेलन में विचार करने के लिए निमंत्रित पाँचों देशों ने उसमें भाग लेना स्वीकार कर लिया है।' कितना बेढंगा वाक्य बन पड़ा है। पहले तो यही आवश्यक नहीं था कि यदि अंग्रेजी समाचार में यह बात एक वाक्य में कही गई है, तो हिन्दी में भी एक ही वाक्य में कही जाये। और यदि अनुवादक महोदय एक ही वाक्य में अनुवाद देना चाहते थे, तो भी इस वाक्य को कहीं अधिक स्पष्ट तरीके से लिखा जा सकता था।

हमारे अधिकांश पत्र, शीर्षकों का भी अंग्रेजी से अनुवाद कर देते हैं, या फिर अंग्रेजी के शीर्षकों के ढर्रे पर ही हिन्दी समाचारों के शीर्षक जड़ देते है। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। समाचार का अनुवाद तो हमें करना ही पड़ता है, वह तो हमारी मजबूरी है। परन्तु शीर्षक तो अपने ही दिये जा सकते हैं, और दिये जाने चाहिएँ।

किसी भी प्रकार का अनुवाद-कार्य करने के लिये सबसे पहली आवश्यकता यही है कि अनुवादक का दोनों भाषाओं पर पूरा अधिकार होना चाहिए, अन्य प्रकार के अनुवाद-कार्य में शायद इस आवश्यकता में थोड़ी बहुत ढील दी भी जा सकती है, परन्तु समाचारपत्र के अनुवादक को तो इस बारे में सामान्य से भी दो कदम आगे होना चाहिए। अखबारी अनुवादक का शब्द-भण्डार बहुत विस्तृत

का जायजा लेता है तथा तथ्यों को देखता-परखता है, फिर उन्हें अपने शब्दों में लिख कर समाचारपत्र को भेज देता है। हो सकता है उन्हीं तथ्यों को लेकर एक दूसरा सम्वाददाता उसी समाचार को एक दूसरे ढंग से लिखता। अतः अधिकांश सामग्री का अनुवाद भावानुवाद ही होगा। शब्दानुवाद नहीं। हाँ, यदि समाचार में किसी व्यक्ति के शब्द उद्धृत किये गये हों, तो उनका अनुवाद शब्दानुवाद ही होगा। उदाहरण के लिये सम्वाददाता ने किसी बड़े नेता के भाषण के सम्बन्ध में समाचार भेजा हो, और उसे अधिक प्रभावी तथा अधिकृत बनाने की दृष्टि से उसने उस नेता के कुछ वाक्यांशों को " " में रख दिया हो, तो ऐसे अंशों का अनुवाद निश्चय ही शब्दानुवाद होगा। इसी प्रकार जब सरकारी विज्ञप्तियों अथवा विधि सम्बन्धी दस्तावेज आदि का मूल पाठ देना हो तो उसका भी शब्दानुवाद किया जाना चाहिये। वैसे सामान्यतः समाचारपत्र के अनुवादक को कहा जा सकता है, 'शब्द आपके अपने हो सकते हैं, वाक्य-विन्यास आपका अपना हो सकता है, परन्तु तथ्य और भाव वही हों जो सम्वाददाता ने घटनास्थल से भेजे है।'

समाचार-पत्र में काम करने वाले अनुवादक का भूगोल-ज्ञान समृद्ध होना चाहिये। कौन कह सकता है कब कहाँ से कोई समाचार आ जाये। कई भौगोलिक स्थानों के नाम अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में भिन्न-भिन्न हैं। अनुवादक को ऐसे शब्दों का सदा ध्यान रखना चाहिये। 'इंडिया' तो 'भारत' बनेगा ही, 'ईजिप्ट' और 'कायरो', 'मिश्र' और 'काहिरा' बन जायेंगे और 'सिलोन' 'श्रीलंका' कहलायेगा। व्यक्तियों के नामों के बारे में भी भारतीय भाषाओं के पत्रकारों को बहुत सतर्क रहना चाहिए। नामों का सही उच्चारण ही दिया जाना चाहिए। चूँकि अंग्रेजी भाषा सभी स्वरों को व्यक्त करने में असमर्थ है, इसलिए उसमें कई शब्दों का बिगड़ा हुआ रूप प्रचलित हो गया है। परन्तु हमारे यहाँ ऐसी कोई कठिनाई नहीं। इसलिए ऐसे शब्दों का सही रूप ही दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिये 'अटलांटिक' 'अतलांतिक' कहलायेगा और 'टास' 'तास' लिखा जायेगा।

हिन्दी के कुछ समाचार-पत्रों ने इस बारे में एक स्वस्थ कदम उठाया है, वे कुछ शब्दों के अंग्रेजी के संक्षेप रूपों के स्थान पर हिन्दी के संक्षेप रूप बना

रहे हैं। जैसे, 'पी० एस० पी०' (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी) के स्थान पर अब 'प्रसोपा' लिखा जाता है और 'नेफा' (नार्थ ईस्ट फ्रन्टियर एजेन्सी) के स्थान पर 'उपूसी' (उत्तर-पूर्वी सीमा) शब्द को प्रचलित किया जा रहा है। यह कदम बहुत स्तुत्य है और भारतीय भाषाओं के प्रत्येक पत्रकार को इस दिशा में अपना योगदान देना चाहिए।

प्रत्येक समाचारपत्र के मालिकों की यही इच्छा होती है कि उनका पत्र अधिक बिके और उनके पत्र की पाठक-संख्या में निरंतर वृद्धि हो। इसके लिये भाषा का विशेष महत्त्व है। अतः पत्रकार को ध्यान रखना चाहिये कि वह ऐसी भाषा का प्रयोग करे जो अधिक-से-अधिक लोगों की समझ में आ सके। 'समाचार-पत्र की भाषा सरल और सर्वग्राह्य होनी चाहिये', यह नियम प्रत्येक समाचारपत्र पर लागू होता है, वह चाहे किसी भी भाषा में क्यों न निकलता हो। अतः जहाँ तक सम्भव हो, भाषा सरल होनी चाहिए, और यदि कभी किसी नये शब्द को प्रचलित करना हो, तो शुरू-शुरू में आम बोलचाल की भाषा में उसके अर्थ देने से, उसके प्रचलन में सुविधा रहती है।

यह मानी हुई बात है कि किसी काम को शीघ्र करने के लिये अधिक सतर्क रहना पड़ता है। अतः समाचारपत्र में, जहाँ घड़ी का शासन चलता है, सतर्कता की बन्दूक सदा अपने पास रखनी पड़ती है। जरा सी असावधानी से ही क्या-क्या गुल खिल सकते है, यह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। अल्जीरिया में फ्रान्सीसी उपनिवेशवाद के विरुद्ध जोरों से युद्ध चल रहा था, प्रायः ही ऐसे समाचार आते थे कि आज इतने राष्ट्रवादी मारे गये, आज इतने मारे गये। एकबार अनुवादक महोदय जल्दी में अनुवाद कर गए 'अल्जीरिया के——नगर में कल जोरों की लड़ाई हुई जिसमें लगभग ढाई सौ राष्ट्रपति मारे गए।' निश्चय ही ऐसा जल्दी में, भूल से लिखा गया था, परन्तु फिर भी इसे क्षम्य नहीं माना जा सकता। अतः अनुवादक को सदा ही सतर्क रहना चाहिए।

समाचारपत्र के लिए अनुवाद करते समय एक और बात का ध्यान भी रखना पड़ता है। एक तो वैसे ही समाचार इतने अधिक होते है कि उन सभी को पूरे ब्योरे के साथ दे पाना किसी भी समाचार-पत्र के लिए सम्भव नहीं

होता और फिर हिन्दी के समाचारपत्रों के सम्बन्ध में तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। इसके दो कारण हैं : एक तो यह कि अंग्रेज़ी समाचारपत्रों की अपेक्षा हिन्दी के समाचार-पत्र मोटा टाइप प्रयोग में लाते हैं, और दूसरे हिन्दी में लिखी एक पंक्ति अंग्रेजी में लिखी पंक्ति से अधिक स्थान घेरती है, क्योंकि हिन्दी के अक्षरों पर ऊपर नीचे लगने वाली मात्राओं के लिए भी स्थान छोड़ना पड़ता है। अतः हिन्दी के समाचारपत्रों में अंग्रेजी के समाचारपत्रों की अपेक्षा स्थान बहुत कम रहता है। अखबार में अधिक-से-अधिक समाचार दिए जा सकें, इसके लिए आवश्यक है कि अधिकांश समाचारों का संक्षेप किया जाए। और यह काम अनुवादक को ही करना पड़ता है। उसे ही समाचार का अनुवाद करते समय सामग्री का संक्षेप भी करना होता है। परन्तु ऐसा करते समय यह ध्यान रखना होगा कि समाचार का महत्त्वपूर्ण पहलू छूट न जाए। स्मरण रहे कि समाचार संक्षिप्त किया जा सकता है, परन्तु वह अधूरा नहीं होना चाहिए। समाचार की आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए ही उसका संक्षिप्तीकरण किया जाए। यदि किसी समाचार के बारे में ऐसा करना सम्भव नहीं है तो बेहतर यही है कि उसका पूरा अनुवाद कर दिया जाए।

समाचारपत्र में समयाभाव और स्थानाभाव की समस्याएँ तो सदा बनी रहती हैं। विषयों की विविधता भी समाचारपत्र के लिए कम सिर दर्द की बात नहीं होती। ऐसी स्थिति में अनुवादकीय ग़लतियाँ होने की सम्भावना काफ़ी रहती है। इसलिए समाचारों के अनुवाद का कुशल सम्पादन नितान्त आवश्यक है। सम्पादक न केवल अनुवाद को ही दुरुस्त करेगा, बल्कि उसे यह भी ध्यान रखना होगा कि सारे समाचारों में स्थानों और व्यक्तियों आदि के नाम एक जैसे ही जाएँ। ऐसा न हो कि एक समाचार में तो रूस के प्रधान मंत्री का नाम 'ख़ुश्चेव' लिखा जा रहा है और दूसरे में उन्हें 'ख़ुशोव' बना दिया गया हो। साथ में यह भी देखना होगा कि समाचार को संक्षिप्त करते समय कहीं उसकी किसी मूलभूत बात को न छोड़ दिया गया हो।

सरकारी अनुवाद

—विश्वदेव शर्मा

दफ्तरी या सरकारी अनुवाद की समस्या वस्तुतः सम्पूर्ण राजभाषा की समस्या है। शासन-तंत्र में प्रयुक्त भाषा प्रशासन का सम्पूर्ण भार वहन करती है और उन सूत्रों का रूप ग्रहण करती है जिन्हें धारण कर देश का प्रशासक राष्ट्र का सूत्रधार बनता है।

सरकारी-भाषा से अभिप्राय प्रायः उस भाषा से मान लिया जाता है जो सरकारी पत्राचार या टिप्पण में काम आती है। किन्तु यह आंशिक रूप से ही सही है। वास्तव में दफ्तरी भाषा का क्षेत्र-विस्तार बहुत अधिक है। उसमें एक ओर संसद्-प्रश्न और संसद् में प्रस्तुत की गयी नियत-कालिक प्रशासनिक रिपोर्टें आ जाती हैं तो दूसरी ओर राज-पत्र में प्रकाशित होने वाली अधिसूचनाएं तथा जन-सामान्य और समाचार-पत्रों के लिए प्रकाशित किये गये प्रेस नोट और प्रेस-विज्ञप्तियां आ जाती हैं। इस प्रकार देखा जाए तो इस भाषा में बड़ा ही वैविध्य मिलता है और इसी से इस भाषा के अनुवाद में भी, स्वभावतः ही वैविध्य पाया जायेगा, या पाया जाना चाहिये। संभवतः ललित-साहित्य (अर्थात् कविता आदि) के अनुवाद की विधा को छोड़ कर दफ्तरी-भाषा के अनुवाद में, अनुवादकला की सारी ही विधाएं आ जाती हैं। एक साधारण दफ्तर के अनुवादक को कम या अधिक मात्रा में लगभग हर एक तरह का अनुवाद करना पड़ता है।

"सरल" या "कठिन"

अनुवाद-सामग्री के वैविध्य को दृष्टिगत रखने से यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि दफ्तरी या सरकारी अनुवाद के लिये कोई एक सधा-बँधा नियम

बना देना कठिन है। उसकी भाषा के लिये "सरल" या "कठिन" का वर्गीकरण कर देना भी सँभव नहीं। वास्तव में हर अनुवाद की भाषा की ही तरह दफ्तरी अनुवाद की भाषा भी विषय, और जिस पाठक वर्ग के लिये अनुवाद तैयार किया जा रहा है उसको, दृष्टि में रखते हुए स्वरूप ग्रहण करेगी। जिस अनुवाद में अधिकाधिक पारिभाषिक शब्द आयेंगे वह स्वभावतः ही "कठिन" या "क्लिष्ट" हो जायेगा। इस विषय में ध्यान देने की बात यह है कि अंग्रेजी मूल भी विषयानुसार सरल या कठिन होता जाता है। चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को वर्दी के बारे में सूचना देने वाले परिपत्र की अंग्रेजी गजट में प्रकाशित होने वाली अधिसूचना किसी विधेयक के मसौदे की अंग्रेजी से कितनी भिन्न होती है इसे एक दृष्टि में देखा जा सकता है। अपेक्षाकृत "कठिनता" या अधिक उपयुक्त शब्द कहा जाय तो "प्राविधिकता" के बावजूद अगर अंग्रेजी किसी को, दोनों ही रूपों में, अधिक बोधगम्य लगती है तो उसका कारण अंग्रेजी भाषा की विशेषता नहीं, हमारी शिक्षा और अभ्यास का प्रतिफल है। यदि उन्हीं दोनों के हिन्दी अनुवादों के बीच हमें 'कठिनता' का बहुत बड़ा अन्तर दीख पड़ता है तो न तो इसका कारण यह है कि दोनों हिन्दियाँ आपस में भिन्न हैं, और न इसका परिहार यह है कि एक के "सरल" शब्द दूसरे में भर कर सरलीकरण का प्रयत्न किया जाय। इसका सही तरीका यह है कि हिन्दी की शिक्षा और अभ्यास को भी अंग्रेजी की शिक्षा और अभ्यास के स्तर तक लाया जाय। अनुभव बतलाता है कि समान स्तर तक अंग्रेजी और हिन्दी पढ़े व्यक्तियों को अंग्रेजी की बनिस्बत हिन्दी अधिक अच्छी तरह समझ में आती है—बशर्ते कि हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली से भी वे उतना परिचय पा लें जितना अंग्रेजी की वैसी ही शब्दावली से। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि बिना हिन्दी पढ़े ही या चौथी, सातवीं या हद से हद दसवीं कक्षा तक हिन्दी पढ़ कर लोग शिकायत यह करते हैं कि हर विषय की हिन्दी उनकी समझ में उतनी सरलता से नहीं आती जितनी कि (उच्चतम कक्षा तक पढ़ने के बाद) अंग्रेजी आती है। उस समय वे यह भी भूल जाते हैं कि अंग्रेजी में बराबर काम करते रहने की उनकी आदत कब से है जब कि हिन्दी की आदत उन्होंने अभी डालनी आरंभ भी नहीं की है। इस विषय में एक मित्र ने बड़ी सुन्दर बात लिखी थी

कि यदि अंग्रेजी समझ में न आये तो पाठक अपने को दोषी मानता है किन्तु यदि हिन्दी समझ में न आये तो लेखक को दोषी समझता है। यह प्रवृत्ति समाप्त होनी चाहिये। नेहरू जी ने भी एक बार शिकायत की थी कि लोग हिन्दी न जानने में गर्व अनुभव करते हैं। यह स्थिति न रहे तो हिन्दी—मूल हो कि अनुवाद—कठिन लगनी बंद हो जायेगी। अस्तु ! इस प्रकार अनुवाद की भाषा के विषय में 'सरल' या 'कठिन' के बारे में सिद्धांत यह बना कि भाषा अपने आप में सरल या कठिन कुछ नहीं होती, वह विषयानुसारिणी होती है, और ऐसा ही उसे होना चाहिये। उसकी कसौटी यह होनी चाहिये कि यदि पाठक का भाषा-ज्ञान उपयुक्त स्तर के अनुरूप है तो उसे व्यक्त विपय सम्यक्-रूपेण समझ में आ जाता है कि नहीं।

अनुवाद : उद्देश्य और अपेक्षाएँ

भाषा का मूल उद्देश्य ही विचार को व्यक्त करना है और अनुवाद का उद्देश्य है 'विचारों अथवा तात्पर्य को भिन्न भाषा में अभिव्यक्त करना' या 'विचारों को एक भाषा से दूसरी में रूपान्तरित करना'। साहित्यिक अनुवादक में यह सम्भव है, और कुछ बार वांछित भी कि वह मूल का शाब्दिक अनुवाद न करके उसका भावानुवाद करे और इस प्रकार कुछ सीमा तक मूल के सौन्दर्य को भी अनूदित कर दे। किन्तु दफ्तरी या सरकारी अनुवाद में 'विचारों को रूपान्तरित करना' और वह भी अधिक से अधिक मूल के निकट रहते हुए करना ही अभिप्रेत होता है, जिससे अधिक मात्रा में, उसे शाब्दिक ही होना होगा।

इस स्थल पर यह जान लेना उपयुक्त होगा कि सरकारी-अपेक्षाएँ सरकारी भाषा के बारे में क्या हैं। मसौदे की भाषा के विषय में, 'केन्द्रीय सचिवालय की कार्यालय-प्रक्रिया की नियम-पुस्तक' में विहित है कि "जारी किये गये आदेशों का बिलकुल सही अभिप्राय मसौदे में व्यक्त होना चाहिए। जो भाषा काम में लायी जाय वह स्पष्ट और संक्षिप्त हो और ऐसी हो कि उसकी रचना बिगाड़ी न जा सके। लम्बे वाक्य, आकस्मिकता, अनावश्यकता, घुमाव, अति-

शयोक्तियाँ और पुनरावृत्तियाँ—चाहे वे शब्दों की हों, अभिव्यक्तियों की हों या विचारों की हों—बचायी जानी चाहिये† ।"

जो अपेक्षाएं मूल-भाषा से की गयी हैं वे अनुवाद के विषय में स्वतः सिद्ध हैं । भाषा के तीन गुण माने गये हैं—ओज, माधुर्य और प्रसाद । इन में से दफ्तरी अनुवाद की भाषा के लिए प्रसाद गुण ही अपेक्षित है । दफ्तर की भाषा तथ्य-परक होती है, उसमें एक विशिष्ट नि:संगता रहती है और यही उसकी शक्ति होती है । इसीलिए उसके अनुवाद में भी उसी का रहना अपेक्षित है । जैसे मूल में ओज की परुषा शैली या माधुर्य की मधुरा पदावली काम्य नहीं उसी प्रकार अनुवाद भी न तो बहुत ओजस्वी बन जाना चाहिए और न उसमें शब्द या वर्ण-मैत्री की प्रवृत्ति होनी चाहिये । ऐसा होना एक ओर या तो उद्वेगजनक और उत्तेजक हो जायगा या दूसरी ओर उपहासास्पद । उसमें तो प्रसाद गुण युक्त यथातथ्य निरूपिणी कोमला भाषा रहनी चाहिए जो बिलकुल ठंडे रूप में अपनी बात कह दे ।

वर्गीकरण

दफ्तरी भाषा के विषय में सामान्यतः इतना कह चुकने के बाद यह समीचीन लगता है कि दफ्तरी-अनुवाद में आने वाले विभिन्न प्रकार के स्वरूपों पर संक्षेप में अलग-अलग विचार कर लिया जाये । जिससे सरकारी-साहित्य का अनुवाद होता है, उसे निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटा जा सकता है :

---

†A draft should convey the exact intention of the orders passed. The language used should be clear, concise and incapable of misconstruction. Lengthy sentences, abruptness, redundancy, circumlocution, superlatives and repetitions whether of words, expressions or ideas, should be avoided. (Chapter IV, para 45, Central Secretariat Manual of Office Procedure, 4th Edition)

१—पत्राचार;
२—प्रचार सामग्री;
३—सरकारी-अभिलेख;
४—अन्य।

पत्राचार

पत्राचार में सरकार की ओर से लिखे जाने वाले पत्र या अन्य पक्षों से प्राप्त पत्रों आदि के उत्तर शामिल होते हैं। इनके विभिन्न स्वरूप स्थिर हैं, जैसे पत्र; कार्यालय-ज्ञापन, ज्ञापन, अर्ध-सरकारी पत्र, गैर-सरकारी हवाले, पृष्ठांकन, तार, तुरत-पत्र, सेविंग्राम आदि। अधिसूचनाएँ और संस्ताव भी इसी में आ जाते हैं क्योंकि वे प्रायः राज-पत्र को प्रकाशनार्थ भेजे गये सरकारी पत्राचार ही होते हैं। स्वभावतः ही पत्राचार की उपर्युक्त विधाओं के अनुवाद कम प्राविधिक और सरल होंगे जब कि अधिसूचनाओं और संस्तावों की भाषा प्रतिपाद्य विषय के अनुसार अधिक प्राविधिक भी हो सकती है। दोनों ही स्वरूपों में अनेक बार सरकारी भाषा का अन्य-पुरुष और कर्मवाच्य वाला स्वरूप रह सकता है और वहाँ सर्वनामों का अनुवाद करते समय अनुवादक को बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। अन्य-पुरुष वाली भाषा में अंग्रेजी में भी स्पष्टता की दृष्टि से कुछ दुहराव अनिवार्य हो जाता है, किन्तु प्रायः 'it', 'he' और 'she' के कारण काफी स्पष्टता आ जाती है, जबकि हिन्दी का 'वह' इन तीनों का ही स्थान ग्रहण करने के कारण कुछ उलझन, और कुछ बार अनर्थ पैदा कर सकता है। ऐसी अवस्था में स्पष्टता को दृष्टि में रखते हुए अनुवादक का कर्तव्य है कि यथावश्यकता वह सर्वनाम के बजाय संज्ञा को दुहरा दे। अन्य पुरुष, कर्मवाच्य और अप्रत्यक्ष-कथन वाली भाषा हिन्दी के अनुकूल नहीं पड़ती। कुछ स्थानों पर "He said that he was going" का अनुवाद 'उसने कहा कि वह जा रहा था' की बजाय 'उसने कहा कि मैं जा रहा हूं' अधिक उपयुक्त, अर्थवान और मुहावरेदार होगा। किन्तु सभी जगह अनुवादक के लिये अप्रत्यक्ष-कथन को प्रत्यक्ष-कथन, कर्मवाच्य को कर्तृवाच्य और अन्यपुरुष को यथावश्यकता उत्तम या मध्यम पुरुष बना देने की स्वतंत्रता नहीं मिलती या मिल सकती।

जब तक हिन्दी मे पत्र लिखे न जाने लगे मूल-स्वरूप अंग्रेजी ही रहेगा। ऐसी अवस्था मे अनुवाद को मूल पुरुष, वाच्य और कथन मे रखते हुए भी इस प्रकार अनुवाद करना चाहिए कि न तो वह भौंडा लगे न अर्थ को दुरूह बनाये। अर्थ की स्पष्टता अनुवाद का मुख्य लक्ष्य रहना चाहिये और इसके लिए आवश्यक हो तो अनुवाद में, एक वाक्य को तोड़ कर अनेक वाक्य भी बनाये जा सकते हैं। स्पष्ट है जहाँ अनुवादक यह अतिरिक्त दायित्व लेगा वहाँ अतिरिक्त सावधानी भी बरतेगा। इस प्रकार के अनुवाद में जहाँ हिन्दी पर्याय के अधिक नवीन या भ्रामक होने का संदेह हो वहाँ ब्रैकेट में अंग्रेजी मूल को देवनागरी में दे देना भी अच्छी नीति है। इससे कुछ बार पाठक को वह शब्द मिल जायेगा जिसे शायद वह पहले से जानता हो, अन्यथा उसे यह पता चल जायेगा कि उक्त अनुवाद किस अंग्रेजी शब्दावली के लिए रखा गया है।

प्रचार-सामग्री

प्रचार-सामग्री में सरकार की ओर से समाचार-पत्रों या जन-सामान्य के लिए प्रकाशित सामग्री आती है। इसमें प्रेस-नोट, प्रेस-विज्ञप्तियाँ, प्रेस-वक्तव्य और अन्य लेख या पुस्तिकाएँ आदि आ जाती हैं। ये सब जन-सामान्य के प्रति उद्दिष्ट होती है, इसलिये न तो मूलतः ही इन्हें बहुत प्राविधिक आडम्बर के साथ लिखा जाता है, न इनके अनुवाद में ही उसका आभास आना चाहिये। यह साधारण भाषा—अखबारी-भाषा—में होना चाहिए। यहाँ सरकारी-पत्राचार की भाषा वाली निःसंगता और शुष्कता असफल रहेगी। इसमें तथ्यों को प्रस्तुत करने के अलावा उन्हें अधिक ग्राह्य और प्रभावी रूप में प्रस्तुत करना भी उद्देश्य रह सकता है, और इसीलिए अनुवाद का स्वरूप भी वही होगा। इसमें प्राविधिक और शाब्दिक अनुवाद के बजाय सरल और मुहावरेदार अनुवाद का अधिक महत्त्व है। यहाँ मूल के अनेक शब्द मूल-रूप में भी रख लिए जा सकते हैं या उनके लिए बोलचाल के ऐसे शब्द भी रखे जा सकते हैं जिन्हें लोग अक्सर काम में लाते हैं, चाहे वे बहुत अधिक सटीक न भी हों। इसी आधार पर कोई अनुवाद करने के बजाय यह कहना ठीक होगा कि 'नगर में नया टेलीफोन-एक्सचेंज खुल गया है' और किसी कपड़ा मिल में 'Weaving Department' का

अनुवाद 'वयन विभाग' की बजाय 'बुनता खाता' करना अधिक समीचीन होगा। ध्यान में रखने की बात यह है कि यहां अनुवाद का उद्देश्य यथातथ्यता बनाये रखना या शिक्षा देना नहीं है, बल्कि अमुक सूचना को हृदयंगम करा देना है।

सरकारी-अभिलेख

इस शीर्षक के नीचे, मैं सरकार के मंत्रालयों या अन्य दफ़्तरों द्वारा समय-समय पर प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट आदि रखना चाहूंगा। इनका उद्देश्य जितना अमुक मंत्रालय या कार्यालय के कार्यकलापों का प्रचार होता है उससे अधिक उनका आलेखन और अभिलेखन होता है। इसी से इनकी शैली में एक विशिष्ट गंभीरता, विशदता, तथ्यपरकता और आधिकारिकता रहती है। इसी लिए इनका अनुवाद भी बहुत सावधानी से होना चाहिए। भावात्मक के बजाय शाब्दिक अनुवाद पर ही इसमें बल देना होगा। इस साहित्य का उद्देश्य भी जिज्ञासु पाठकों या अनुसंधाताओं को सूचना प्रदान करना होता है। इससे यदि यह अधिक प्राविधिक भी हो तो अनुचित न होगा। यहाँ प्रामाणिकता की दृष्टि से सभी प्राविधिक शब्दों के हिन्दी पर्याय दिये जाने चाहिए ताकि वे प्रयोग में आयें और जिज्ञासु पाठक उनसे परिचित हो सकें। नियम भी है और उचित भी, कि हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के साथ अंग्रेजी के मूल शब्द ब्रैकेट में रख दिये जायें। इससे सुविधा के साथ शिक्षण का भी उद्देश्य पूरा होता है। किन्तु अनुभव के बाद मैंने इस योजना का पूरा लाभ इसमें जरा से संशोधन में पाया है। यदि हिन्दी शब्द के आगे रोमन में अंग्रेजी मूल शब्द लिखा जाय तो हम यह मान कर चलते हैं कि पाठक अंग्रेजी जानता है। किन्तु वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से न यह सही है न उचित। हाँ, यह बहुत संभव है कि अंग्रेजी न जानने पर भी पाठक अंग्रेजी शब्द को सुनने या अभ्यास के कारण जानता हो। ऐसी अवस्था में उसकी वास्तविक सहायता तब होगी जब हम देवनागरी में अंग्रेजी मूल शब्द रखें। इस प्रकार, दूर-संचार (टेली-कम्यूनिकेशन्स), दूर-मुद्रक (टेलीप्रिंटर), ऋतु विज्ञान (मीटियरालाजी) आदि लिखना अधिक उपयुक्त होगा। प्रामाणिकता, नियमपालन और अंग्रेजी जानने वाले पाठक की सहायता की दृष्टि से उक्त शब्दों के रोमन-लिपि में लिखे गये अंग्रेजी रूप नीचे पाद-

टिप्पणियों में दिये जाने चाहियें। इससे एक लाभ यह भी होता है कि देवनागरी के बीच बार-बार रोमन लिपि आने से पढ़ने के प्रवाह में भी बाधा नहीं आती।

इस प्रकार के अनुवाद स्वभावतः ही मंत्रालय के कार्य और वर्ण्य विषय के अनुसार 'कठिन' या 'सरल' होंगे। जहाँ अधिक प्राविधिक ब्यौरे देने होते हैं, वहाँ भाषा का यह स्वरूप भी बन सकता है :

नयी दिल्ली से उप-महाद्वीपीय प्रसारण, उच्च शक्ति प्रेषित्रों पर मोर्स और रेडियो टेलीटीपन के जरिये प्रसारित किये गये। मौसम-चार्टों का प्रतिकृति (फैसिमिली) द्वारा प्रयोगात्मक पारेषण सामान्य आधार पर नवम्बर, १९६२ से आरम्भ किया गया। प्रतिदिन तीन चार्ट पारेषित किये गये जिनमें ००-जी० एम० टी० के लिये दो विश्लेषित ऊपरी वायु के चार्ट, और एक आगामी २४ घण्टों के लिये वैध, मौसम-वार्ता (प्रोग्नोस्टिक) चार्ट थे। ये चार्ट, देश में सभी मुख्य मौसम कार्यालयों द्वारा अन्तर्ग्रहीत हुए।

असम में पूर्वानुमान कार्यालयों द्वारा आधार-दित्ता के सन्तोषजनक संग्रहण का सुनिश्चयन करने के लिए असम में नागर विमानन विभाग और डाक एवं तार की आर० टी० टी० सरणियों का उपयोग करने की एक योजना, शीघ्र क्रियान्वित की जाने के लिए अनुमोदित की गयी है।

× × ×

इस वर्ष, फसल मौसम केन्द्रों (क्राप-वेदर सेंटर्स) की संख्या ५७ थी। इनके अलावा, भूमि रक्षण अनुसंधान केन्द्रों (सोयल कंजरवेशन रिसर्च स्टेशन्स) सहित स्थानीय कृषि और तत्सम्बन्धी हितों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ४९ केन्द्रों पर कृषि मौसम विज्ञान (एग्रीकल्चरल मीटीयारालाजी) स्टेशन काम करते रहे। फसल के कीड़ों और बीमारियों के विषय में लगभग १२० स्टेशनों पर गुणात्मक प्रेक्षण (क्वालीटेटिव आब्जरवेशन), और लगभग ३०० स्टेशनो पर चार वृक्षों (अर्थात् आम, नीम, इमली और बबूल) में से एक या अधिक पर ऋतु-जैविकी प्रेक्षणों (फेनोलाजिकल आब्जरवेशन) का अभिलेखन किया गया।

२३ मार्च, १९६२ को द्वितीय विश्व मौसम-विज्ञान दिवस के अवसर पर प्रकाशित की गयी 'वेदर एण्ड दि इण्डियन फार्मर' नामक पुस्तिका का संशोधित संस्करण विभिन्न कृषि और तत्सम्बन्धी विषयों में रुचि रखने वाले क्षेत्रों में वितरित किया गया। १९५७-५८ के वर्ष के लिये फसल-मौसम आरेख (क्राप वेदर डायग्राम) छापे गये और विभिन्न कृषि सम्बन्धी रुचि वाले क्षेत्रों में वितरित किये गये और १९५७-५८ से आगे के वर्षों के लिए आरेख तैयार करने का काम हाथ में है। तृतीय पंचवर्षीय आयोजन के दौरान, कृषि मौसम विज्ञान सम्बन्धी विकास कार्यों के अन्तर्गत, मंजूर हुई इन दो योजनाओं का कार्य प्रगति कर रहा है :—(१) भारत की कृषि-जलवायु-सम्बन्धी मानचित्रावली (एग्रोक्लाइमेटिक एटलस) तैयार करना, (२) वाष्पोत्सर्जन (एवेपोट्रांसपाइरेशन) का मापन।

और जहाँ वर्ण्य विषय दुरूह न हो भाषा इस प्रकार की हो सकती है—

निजी उपभोक्ताओं के लिए किराए के आधार पर पट्टे पर दी हुई टेलीप्रिण्टर सरणियां, जोकि १९५७ में शुरू की गयी थीं, और आगे बढ़ा दी गयीं। आजकल व्यावसायिक संस्थाओं और सरकार द्वारा इस प्रकार की २१ सरणियां प्रयोग में लायी जा रही हैं। यह सुविधा सीधे दो पक्षों के बीच तार संचार की व्यवस्था करती है।

× × ×

दूरसंचार के क्षेत्र में आधुनिक प्रविधियों को अपनाने में यह सेवा दूसरे उन्नत देशों के समकक्ष रही है। अनेक बड़े वायरलेस तार परिपथों पर गलतियों को अपने आप सुधारने की आधुनिकतम इलेक्ट्रानिक पद्धतियां शुरू की गयी हैं। इन सुविधाओं को दूसरे परिपथों पर देने और अन्य परिचालन सम्बन्धी पक्षों के आधुनिकीकरण की योजना प्रगति पर है।

भारत राष्ट्रमण्डल दूरसंचार बोर्ड का सदस्य है। विदेशी संचार सेवा द्वारा राष्ट्रमण्डल दूरसंचार बोर्ड को, कार्यालय सम्बन्धी खर्चों के लिए, १९६१-६२ और १९६२-६३ में दिया गया अंशदान क्रमशः ३६,००० रु० और ५८,००० रु० है।

अन्य

इसी शीर्षक के नीचे संसदीय प्रश्नोत्तरों, विधेयकों, अधिनियमों आदि को रखा जा सकता है। इनके अनुवाद प्रायः विधि अनुवादों के क्षेत्रों में आ जाने के कारण बहुत ही सटीक, प्रामाणिक और प्राविधिक होते हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से अनुवादों का द्वैभाषिक रूप सभी जगह सहायक है किन्तु यहाँ तो अनिवार्य ही हो जाता है। इसीसे विधि मंत्रालय प्रायः सभी अधिनियमों के द्विभाषीय रूप निकाल रहा है जिनमें एक पृष्ठ पर अंग्रेजी मूल होता है, तो सामने हिन्दी अनुवाद। एकार्थता और स्पष्टता विधि सम्बन्धी भाषा के प्रमुख गुण हैं। इसीलिए इसमें पुनरावृत्ति भी दोष के बजाय उचित और प्रायः अनिवार्य मानी जाती है। इसमें अर्थ को स्पष्ट करने के लिए किसी शब्द का छोड़ना या बढ़ाना भी बड़े दायित्व का काम है।

पारिभाषिक शब्दावली

यहाँ पारिभाषिक शब्दावली के विषय में दो शब्द कह देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा। लम्बे समय तक ज्ञान-विज्ञान और प्रशासन से बहिष्कृत रहने के कारण, यह सच है कि एतद्विषयक शब्दावली का हिन्दी में यथोचित विकास नहीं हुआ। किन्तु दस-पन्द्रह साल पहले के इस अभाव की, बिना समझे-बूझे आज भी दुहाई दिए जाना अज्ञान का ही द्योतक होगा।

पिछले डेढ़-दो दशकों में हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली को विकसित और समृद्ध करने के लिये सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्रों में गंभीरतापूर्वक कार्य हुआ है। निजी कार्यों में डा० रघुवीर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, ज्ञान मण्डल आदि का कार्य उल्लेखनीय है। हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारों के अलावा केन्द्रीय सरकार ने भी इस ओर ठोस कार्य किया है।

केन्द्रीय सरकार के दो अभिकरण पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण और अनुवाद के लिए उत्तरदायी हैं। विधि से भिन्न वैज्ञानिक और प्राविधिक शब्दावली और अनुवाद का कार्य केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

को सौंपा गया है। इस विषय में अंतिम रूप देने के लिए "वैज्ञानिक और प्राविधिक शब्दावली आयोग" की भी स्थापना हो चुकी है।

विधि विषयक शब्दावली और अनुवाद के लिए केन्द्रीय विधि मंत्रालय उत्तरदायी है और इसके लिए भी एक आयोग की स्थापना हो चुकी है।

इस प्रकार आज हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में पारिभाषिक शब्द उपलब्ध हैं, और साधारणतया, हर प्रकार का अनुवाद हिन्दी में हो तो सकता ही है, अनेक स्थानों पर हो भी रहा है।

इस विषय में एक मनोरंजक स्थिति का उल्लेख भी उचित होगा। अकसर जो लोग हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली न होने की शिकायत करते हैं वे ही नए पारिभाषिक शब्दों की दुरूहता की शिकायत करते हैं। किसी भाषा के वर्तमान शब्द सभी विचार प्रकट नहीं कर पाते तभी तो नए शब्द बनाने या ग्रहण करने की जरूरत पड़ती है। अब आप एक ओर शब्द न होने का तर्क दें और दूसरी ओर नए शब्द न स्वीकार कर "बोल-चाल की आम फहम, बाजार में समझी जाने वाली भाषा" में हर प्राविधिक विषय व्यक्त करने की शर्त लगायें तो कैसे काम चलेगा ?

अनुवादक के लिए स्पष्ट ही निरापद मार्ग यह है कि विधि सम्बन्धी विषयों के लिए विधि मंत्रालय की शब्दावली काम में लाए, और इतर विषयों के लिए शिक्षा मंत्रालय की। जो शब्द इनमें उपलब्ध न हों उन्हें अन्य स्रोतों से लिया जा सकता है या मूल अंग्रेजी शब्द ही देवनागरी-लिपि में लिख दिया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिक शब्दों को ज्यों-का त्यों स्वीकारने के विषय में भी निश्चय हो चुका है।

सरकारी अनुवादों और प्रकाशनों में अंकों के प्रयोग के विषय में यह स्पष्ट नियम विहित है कि उद्दिष्ट पाठक वर्ग को ध्यान में रखते हुए देवनागरी या अरबी (रोमन) अंकों का प्रयोग हो सकता है किन्तु पत्राचार और रिपोर्टों और बजट-साहित्य आदि में अनिवार्य रूप से अरबी अंकों का ही प्रयोग होना चाहिए। अनुवादक के लिए इस नियम का ध्यान रखना भी उचित होगा।

आवश्यक सावधानी

इस प्रकार हम देखते है कि दफ्तरी भाषा के अनेक रूप है और उसी के अनुसार अनुवाद का स्वरूप भी कुछ बदलता चलता है। विभेद के बावजूद अनुवाद के सामान्य-नियम समान ही हैं। सबका उद्देश्य मूल विचार को दूसरी भाषा में यथावत् व्यक्त करना रहता है। यथावत् व्यक्त करने के साथ-साथ यह भी ध्यान रखने की बात है कि अनुवादक को मात्र मशीन नहीं बन जाना है। "मक्षिका स्थाने मक्षिका" रख देना अनुवाद नहीं है। आवश्यक है कि अनुवादक मूल विषय और उचित प्रसंगों को भी समझे। कितने ही शब्द साधारणतया जो अर्थ रखते है विशिष्ट प्रसंगों या विषयों में वही अर्थ नहीं रखते। "लास्ट लेग आफ ए जर्नी" किसी "यात्रा की अंतिम टॉग" नही होती और न ही "डाग ईयरिंग आफ ए बुक" का अर्थ "किताब में कुत्ते के कान निकल आना" होता है। मैने एक स्थान पर "दि शिप हैड नो कलर" का अनुवाद देखा है "जहाज पर कोई रंग नही था" जब कि अनुवादक को ज्ञात होना चाहिए था कि 'कलर" का अर्थ झण्डा भी होता है और जहाज के प्रसंग में वही उचित है। इसीलिए "फ्लाइंग कलर्स" का अनुवाद "रंग उड़ाते हुए" नहीं होना चाहिए। मूल को सावधानी से समझना भी आवश्यक है। शायद इसके अभाव के कारण ही एक कोश में "डेडली स्नेक्स" का अर्थ किया गया है "मरे हुए सांप।"

अनुवाद करते समय यदि मूल में कोई स्पष्ट गलती नजर आए तो अनुवादक का कर्त्तव्य है कि वह उसकी जाँच करे। जाँच करने का दायित्व वह न ले तब भी उसकी ओर संकेत करना उसका कर्त्तव्य है। मूल का अन्धानुवाद अनुवादक की प्रतिष्ठा नही बढ़ाएगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि अनुवाद स्वयं में एक कठिन कार्य है और दफ्तरी-अनुवाद अपने वैविध्य और प्रामाणिकता के कारण और कठिन काम है। वर्ण्य विषय और उद्दिष्ट पाठक-समाज के साथ समुचित न्याय करके ही इसमें सफलता पायी जा सकती है।

पारिभाषिक शब्द और उनकी रचना
तथा
हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली

—गोपाल शर्मा

सामान्य रूप से शब्द वाक्य के अंग माने जाते हैं। हमारे वैयाकरणों ने वाक्य को ही सत्य और नित्य माना है। वह एक स्वतंत्र सत्ता है; शब्द उसके अंग हैं। फिर भी पृथक् विश्लेषणात्मक विचार के लिए शब्दों का भी अपना महत्त्व है। शास्त्रीय चिन्तन में शब्द आधार का काम देता है। शब्द के इसी महत्त्व के विषय में तुलसीदास जी ने लिखा है :

"अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभासी।"

शब्द, सगुण, दृश्यमान और निर्गुण इन्द्रियातीत के बीच दुभाषिये की तरह उपयोगी सिद्ध होता है। भर्तृहरि ने ज्ञान में शब्द के प्राधान्य का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।"

"अरणिस्थं यथा ज्योतिः प्रकाशान्तरकारणम् तद्वच्छब्दोऽपि बुद्धिस्थः..."

शब्द, जब पारिभाषिक बन जाता है तो उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। अमरीकी पत्र "साइंस" के सम्पादक डा० रोलर लिखते है—

"The role of language in Science is of utmost importance, for not only is communication of ideas indispensable if we are to have any Science, but the symbology and frame-

work of language used in this communication are also the very tools with which we think. We do not think first and then aftorwards translate the results into words, instead clear thinking and correct use of words are essentially the same process."

पारिभाषिक शब्द यदि इतना महत्त्वपूर्ण है तो इस बात की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि आखिर पारिभाषिक शब्द है क्या ? **पारिभाषिक शब्द वह शब्द है जो कि किसी विशेष ज्ञान के क्षेत्र में एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता हो तथा जिसका अर्थ एक परिभाषा द्वारा स्थिर किया गया हो।** सामान्य रूप से किसी पारिभाषिक शब्दावली में तीन प्रकार के शब्द मिलते हैं।

(१) पूर्ण पारिभाषिक, (२) मध्यस्थ, और (३) सामान्य। इस वर्गीकरण का ठीक-ठीक लाक्षणिक विवेचन करना तो कठिन है पर मोटे तौर पर पूर्ण पारिभाषिक शब्द असामान्य ही होते हैं, जैसे—प्रकरी, प्रव्रज्या, बीजगणित त्रिज्या, पैनिसिलिन, थोरियम, टॉटालोजी, सिल्लाजिज़्म इत्यादि। सामान्य अभिव्यक्ति की शब्दावली में इनका बहुत कम प्रयोग होता है। दर्शन और सामाजिक विज्ञानों के शब्द ही बहुधा सामान्य भाषा में प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि उनका **भावक्षेत्र से संबंध होता** है, जैसे मोक्ष, संन्यास, पूँजीवाद, अहिंसा। ये शब्द नितान्त पारिभाषिक हैं फिर भी इनका पारिभाषिक अर्थ सामान्य लोग कुछ हद तक समझ लेते हैं।

शब्दों का एक वर्ग ऐसा होता है जो पारिभाषिक अर्थों में भी प्रयोग में आता है और सामान्य अर्थों में भी—जैसे, अटैचमैंट, ऑपरेशन, दावा, अनुमोदन, आपत्ति। इन्हें मध्यस्थ कहा जा सकता है। यह शब्द-समूह भाषा के स्वरूप का अभिन्न अंग होता है, साथ ही अधिकांश शास्त्रीय चिन्तन का आधार भी। इस प्रकार के शब्दों के अनेक विशेषार्थ हो सकते हैं और प्रकरण एवं आचार्यों द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार ये उन्हें प्रकट करते हैं। यदि भाषा और साहित्य में शब्दों की इस प्रकार की अर्थ-परंपरा कायम नही हो जाती तो जनता और शिष्ट समुदाय में उनके विषय में बड़ा खण्डन-मण्डन या विवाद चलता रहता है। आज यरि फँक्शन के लिए "भिन्न" शब्द बनाया जाता या कम्पाउंड

इंटेरेस्ट का अनुवाद 'चक्रवृद्धि व्याज' किया जाता तो लोग हम पर बड़ी छीटाकशी करते क्योंकि फ्रैक्शन का अनुवाद 'खंड' और कम्पाउंड इंटेरेस्ट का अनुवाद 'यौगिक व्याज' होना चाहिए। परन्तु शास्त्रीय परम्परा ने आविष्कर्ता के प्रयोग को कायम रखा है इसलिये कोई कठिनाई नहीं होती। वृद्धि, गुण, उत्सर्ग और अपवाद आदि शब्दों के मूल अर्थ भिन्न होते हुए भी पाणिनि ने व्याकरण में इनका विशेष अर्थों में प्रयोग किया है। इसीलिए कहा जाता है—आचार्यात् संज्ञा सिद्धिः। आचार्य ने अमुक अर्थ में, अमुक प्रकरण में इसका प्रयोग किया है। अतएव इसका वही अर्थ है।

मध्यस्थ शब्द-समूह सामान्य और शास्त्रीय भाषा में आता जाता रहता है। उसका पारिभाषिक स्वरूप व्याख्या, प्रकरण, प्रयोग तथा आवाप एवं उद्धार क्रियाओं से निश्चित किया जाता है। शास्त्रीय तथा आधुनिक विज्ञानों के क्षेत्र में प्रकरण और प्रयोग को अच्छी पद्धति नहीं समझा जाता। व्याख्या या परिभाषा द्वारा 'आवापोद्धार' को अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस पद्धति का अनुसरण करने से भाषा को कृत्रिम और अपरिचित शब्दों के भार से बचाया जा सकता है। शब्दावली के निर्माण और पुनरीक्षण में हमें यह विचार करना पड़ता है कि कितने 'आवापोद्धारक' शब्दों का निर्माण किया जा सकता है ताकि वैज्ञानिक और साहित्यिक अथवा सामान्य भापा के रूपों के बीच गहरी खाई न बन पाए।

आवाप और उद्धार क्रियाएँ क्या हैं? वाक्य प्रदीप के टीकाकार पुण्यराज के अनुसार अर्थ या अभिधेय अठारह प्रकार का होता है। शास्त्रीय अभिधेय वेद और शास्त्रों में प्रतिपादित अर्थ हुआ करता है। इसके लिए शब्द के एक अर्थ को निकाल कर अर्थान्तर के आक्षेप का विधान है। उदाहरण के लिए मनोविश्लेषण (Psychoanalysis-Freudian), प्रवेशिनी (Cannula-medicine), संचार (Communication), अभियोग (Accusation-Law) इस तरह के शब्द सामाजिक विज्ञानों, विधि, प्रशासन, भौतिक विज्ञानों तथा जीवविज्ञानों में बहुतायत से उपलब्ध होते हैं। ये प्रक्रियाओं के द्योतक होते हैं।

इनके अतिरिक्त जन सामान्य की दैनिक भाषा के अनेक शब्द, शास्त्रों में प्रयुक्त होते है; उनके रूप एवं अर्थ में बहुत कम भेद होता है, जैसे, वृक्ष, पुष्प,

चाँदी, पीड़ा, सूजन, जोड़, ऋण इत्यादि। अतः यह स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्द भी अन्य शब्दों की तरह प्रवृत्ति-चतुष्टयी वाला जाति, गुण, आख्यात, यदृच्छा-शब्द होता है। शास्त्रीय प्रसंग में उस में अर्थ और रूप का नियत और नित्य संबंध होता हैं। शब्दावली का निर्माण करते समय जब हम परिभाषा द्वारा पारिभाषिक शब्द की प्रकृति का अनुवाद कर रहे हैं उसकी प्रकृति समझ लेना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। फिर भारतीय भाषाओं में शब्द चुनते या निर्माण करते समय यह निश्चित करना आवश्यक है कि रूपार्थ-निश्चय किस प्रक्रिया से किया जाए।

१. धातु में प्रत्यय-उपसर्ग आदि जोड़ कर(अभिग्रहण=अभि+ग्रह्+ल्युट् acquisition; धारिता=धृ+णिनि+ता Capacity)
२. दो धातुओं को मिलाकर (जाँच=उड़ान Test-flying)
३. सामासिक पद बनाकर(सर्वेक्षण surveying; साक्षात्कार interview)
४. निपात द्वारा-अथवा नामधातु बनाकर (दाबित-pressurised वोल्टता Voltage; आक्सीकरण Oxidization);
५. यदृच्छा शब्दों का निर्माण कर (रमन-प्रभाव Raman Effect; X-ray एक्सरे)

इनके अतिरिक्त शब्दावली-निर्माण के दो और प्रधान सिद्धान्त हैं जिनका उल्लेख आगे किया गया है। वैसे अत्यन्त पारिभाषिक शब्द अभिधामूलक ही होते हैं फिर भी पारिभाषिक अर्थ-प्रसंग पर भी आश्रित होता है। भाषा में शब्दों की अनावश्यक वृद्धि को रोकने के लिए इसे आवश्यक माना गया है। भाषा विषयक अल्प-साध्यता की वृत्ति शास्त्रों में प्रकरण और प्रसंग के अनुसार अभिधार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों को ही पारिभाषिकता प्रदान करती है। आज विज्ञानों में सैद्धान्तिक आदान-प्रदान भी बहुत होता है; डार्विन, लमार्क आदि ने सामाजिक विज्ञानों को बहुत प्रभावित किया है। इन प्रभावों के फलस्वरूप एक विज्ञान की शब्दावली दूसरे विज्ञान में प्रवेश पा गई है वहाँ उसका लक्ष्यार्थ पारिभाषिक होता है, जैसे—

Modulation मूर्छना (संगीत)
अधिमिश्रण (भौतिकी)

Incubation सेवन, सेना (अण्डे इत्यादि का, जीव-विज्ञान)
अन्तर्मनन (मनोविज्ञान)

यहाँ केवल परिभाषा दे देने से ही काम नहीं चलता। यह जानना आवश्यक है कि भाषा शास्त्री की दृष्टि से अंग्रेजी शब्द किस रूप में पारिभाषिक माना गया है ? अंग्रेजी में अनेक ऐसे योगरूढ़ शब्द हैं जो शास्त्रों में पारिभाषिक रूपों में प्रयुक्त होते हैं। इनका यौगिक अर्थ कुछ और होता हैं, जैसे, (Anatomy) इसकी व्युत्पत्ति होती है ana=up और temneiu=cutting परन्तु वैज्ञानिकों और साहित्यिकों ने इसका अर्थ ही बदल दिया है। इस शब्द का उपयोग उन वस्तुओं के लिए होता है जो कि anatomy से उपलब्ध होती है, जैसे, शरीर काटने के अस्थि-पंजर। फिलॉसफी (Philosophy) भी इसी तरह का शब्द है Philos=I love तथा sophyia=knowledge किन्तु आज इसका अर्थ 'दर्शन' हो गया है। यह निश्चित होने पर कि अंग्रेजी शब्द, रूढ़, लक्षक, योगरूढ़ या यौगिक रूप में पारिभापिक है, यह विचार करना पड़ता है कि उसके लिए व्युत्पत्ति के आधार पर या उसी जैसी लक्षरण के आधार पर शब्द-निर्माण कैसे किया जाये।

योगरूढ़ के लिए योगरूढ़ पर्याय और यौगिक के लिए यौगिक पर्याय ही बनाए जाएँ ? क्या शब्द-निर्माण में हमारी संस्कृति और शास्त्रों में उपलब्ध 'समानार्थी' शब्द का संस्कार करके या बिना सस्कार किए ही प्रयोग किया जा सकता है ? विकासमान भाषा की प्रकृति को आघात पहुँचाए बिना क्या व्याकरण की सम्भावनाएँ बढ़ाई जा सकती हैं ? क्या बोलियों और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रकृति-प्रत्ययों का आवश्यकता के अनुसार प्रयोग किया जा सकता है ?

इन प्रश्नों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया जाता तो पर्याय ठीक नहीं बन पाते। शब्दावली निर्माण का प्रथम दौर समाप्त होने के पश्चात् इन समस्याओं पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो जायेगा। जिन दो सिद्धान्तों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है उनकी व्याख्या 'चैम्बर्स टैक्निकल डिक्शनरी' की भूमिका से एक उद्धरण देकर की जा रही है :—

"What, it may be asked is a technical term. It may be

defined as a word or expression which has special significance and value to a person learned or dexteraus in a branch of knowledge relating to some particular human activity or to some particular aspect of nature...Technical words are in fact symbols **adopted, adapted or invented** by specialists and technicians to facilitate the precise recording of their ideas. Without them they would find themselves hindered in their mental process."

इस उद्धरण में एडॉप्टेड (adopted), एडेप्टेड (adapted) अथवा इन्वेण्टेड (invented) शब्द ध्यान देने योग्य हैं। नव शब्द-निर्माण के सम्बन्ध में तो लिखा जा चुका है, अब हमे दो सिद्धान्तों पर विचार करना है। प्रथम सिद्धान्त है—Principle of adoption शब्द-ग्रहण का सिद्धान्त। प्रत्येक भाषा में जातियों के सम्पर्क से, सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक कारणों से और कभी-कभी प्रयत्न से भी अन्य भाषा के शब्द प्रविष्ट हो जाते हैं। यह भाषाओं के विकास की स्वाभाविक गति है। यद्यपि भारत में आयुर्वेद, ज्योतिष, नाट्यशास्त्र, गणित, स्थापत्य आदि की अपनी पारिभाषिक शब्दावली है फिर भी गणित और ज्योतिष की शब्दावली इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि प्राचीन आचार्यों ने बाह्य प्रभावों को उदारतापूर्वक स्वीकार किया। संस्कृत में सेण्टर (centre) के लिए 'मध्य' शब्द ही उपलब्ध था परन्तु यवन संस्कृति के प्रभाव से हमने 'केन्द्र' शब्द ग्रहण कर लिया। इसी तरह के अनेक शब्द हैं—होरा (hour), दीनार (Dinar), द्रक्म (Drachme), हेलि (sun), ज्यामित्र, पणफर, मनऊ, मुन्था इत्यादि।

वैज्ञानिक या शास्त्रीय ज्ञान के आदान-प्रदान का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण भाषा की सीमाओं के बन्धन भी शिथिल होते जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कही जाने वाली शब्दावली में एक भाषा-मण्डल के अनेक शब्द है। मारियो पाइ ने अपनी पुस्तक "द स्टोरी ऑफ लेंग्वेज" में लिखा है—

"The language of Science is truly international, because

all languages have unlocked the treasure chest of their vocabularies to Science."

इस कथन के प्रमाण में उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण दिए हैं:—

Greek —Mania, phobia (medical psychology), therapy, antibiotic (medicine) isotope.

Latin —Capillaries, supersonic, post-mortem.

Arabic — Zenith (astronomy), algebra, cipher, alchohol, alkali.

French —Ampere, nicotine.

Italian —Influenza, malaria.

Japanese—Migozai, Isunami,

Chinese—Typhoon.

इसमें हम एनिलीन (संस्कृत—नील से) और ज़िन्ज़ीबर (संस्कृत-शृंगवेर से) जैसे शब्द भी जोड़ सकते हैं।

भारतीय दर्शन के भी अनेक शब्द अब अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली में शामिल हो गए हैं। रूस में जब वहाँ की अनेक भाषाओं की शब्दावली बनाई गई तो उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को भी उचित महत्त्व दिया, जैसा कि निम्न उद्धरण से स्पष्ट है—

The following ways of adding these and other terms to the vocabulary of the new written languages were employed in the first stage;

(a) by drawing on the store of words of the given language and its word-formation possibilities,
(b) by drawing on the dilects,
(c) by using international terms,
(d) by using terms borrowed from the Russian and other languages.

(Development of non-Russian languages in the USSR)

इस तथ्य को निर्लिप्त भाव से स्वीकार करना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों का संसार की किसी भी वैज्ञानिक भाषा में बहुत महत्त्व है। शास्त्रीय भाषा में शब्दों का आदान-प्रदान दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है।

नई शब्दावली के निर्माण का दूसरा सिद्धान्त है Principle of adaptation) अर्थात् शब्दानुकूलन का सिद्धान्त। जब किसी अन्य भाषा से अपनी भाषाओं में शब्द लिये जाते है तो उनके दो तरह के संस्कार किए जाते है। प्रथम है, उस शब्द को ग्रहण करने वाली भाषा की ध्वनि-पद्धति में ढालना तथा दूसरा है उस शब्द या उसके किसी अंग को धातु मानकर व्याकरण के अनुसार नए शब्दों का निर्माण करना। मिश्र, तुर्किस्तान और फ़ारस की शास्त्रीय शब्दावली में अनेक शब्दों को अपनी-अपनी भाषाओं की ध्वनि-पद्धति में ढाल कर स्वीकार कर लिया गया है। अकादमी, फलसफ़ा, जुगराफ़िया, तलगराफ (Telegraph), मैसिलियूम (mycelium)।

हिन्दी में पहले बड़े पैमाने पर तो ऐसा नहीं किया गया परन्तु अलमारी, कलट्टर, बरंडा, इंजन, मशीन, टिकिट, किताब, काग़ज जैसे अनेक शब्द मिलते हैं। संस्कृत में भी इस प्रकार के अनुकूलन के उदाहरण उपलब्ध हैं—यवन (आयोजियन से), असुर (असीरियन से), पातशाह (बादशाह से)। शास्त्रीय शब्दावली में भी द्रक्म (drachme), होर (hour) आदि ऐसे ही शब्द हैं। इसके अतिरिक्त लगभग तीन दशाब्दी पूर्व जब भारत में पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण आरम्भ हुआ, विज्ञान के क्षेत्र में भी लोगों ने अनुकूलन-सिद्धान्त का अनुसरण किया। ऑक्सीजन को आरम्भ में ओषजन, नाइट्रोजन को नत्रजन कहा जाता था किन्तु बाद में यह पद्धति छोड़ दी गई।

शब्दानुकूलन की दूसरी पद्धति है नामधातु बनाकर अपने व्याकरण की सहायता से अन्य शब्दों की रचना करना। भारत में नई शब्दावली के निर्माण में जहाँ सैद्धान्तिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को स्वीकार किया गया है, वहाँ इस तरह की शब्द-रचना का बाहुल्य है। उदाहरणार्थ :—

Amoniated	ऐमोनीकृत
Carbonisation	कार्बनीकरण
Voltage	वोल्टता

Appelate अपीलीय (संविधान)
(पारिभाषिक शब्द संग्रह—शिक्षा मंत्रालय)

इस प्रसंग में जापानी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली के कुछ उदाहरण देना युक्ति-संगत होगा :—

Amidation अमीनो—का
Alkalimetry अरुकरी—टेकिढाई
Alkalinity अरुकरी—दो
alkylation अरुकीरू—का
Oxysalt आकिसी-एन

(Japanese Scientific Terms—Japan)

विदेशी शब्दों से सामासिक शब्द भी काफी संख्या में बनाए गए हैं। यदि हम संस्कृत व्याकरण का आग्रह छोड़ देते तो कुछ अन्य साधनों का भी अनुकूलन हो सकता था जिनके अभाव में कभी-कभी कठिनाई का सामना करना पड़ता है—जैसे anti-coagulant के लिये प्रत्यातंचक तथा semi-legal के लिए अर्धविधिक शब्द बनाने पड़े हैं ('सेमी' शब्द वैसे आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार संस्कृत 'सम' का ही प्रतिरूप है)। इसके अतिरिक्त भी कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका अनुकूलन उपयोगी हो सकता था, जैसे आत्म auto ; पालि साहित्य में अत्त, अत्तो शब्द आत्म के लिए प्रयुक्त होते हैं। जैसे-जैसे शब्दावली-कार्य में प्रौढ़ता आएगी, सम्भवतः इस प्रकार के साधन उपलब्ध करने का विचार भी किया जाने लगेगा।

अमरीकी भाषा-वैज्ञानिक बैन्जामिन वार्फ ने अपने अनुसंधान से सिद्ध किया है कि किसी जाति की भाषा भी उस जाति के दृष्टिकोणों की जनक बन जाती है। भारोपीय भाषाओं में द्वन्द्वों का अधिक प्रभाव है—सुख-दुःख, प्रकाश-अंधकार, गुण-दोष, पाप-पुण्य इत्यादि। इन दो के बीच की जो स्थितियाँ हैं या जो बातें इनसे निरपेक्ष हैं उन्हें बताने वाले साधन भाषा और व्याकरण में कम हैं, क्योंकि उन स्थितियों को हम मान्यता नहीं देते थे। आधुनिक विचारों ने इनकी स्थिति का ज्ञान तो हमें करा दिया है, पर इनको व्यक्त करने के लिये भाषा-साधनों का समवर्ती विकास नहीं हो पाया। अतएव हमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते अपनाने

पड़ते हैं। हमारी अभिव्यक्ति में आधुनिक सहजता की सृष्टि तभी हो सकती है जब नए भाषा-साधनों का विकास या अनुकूलन किया जाए। क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन मात्र द्वन्द्वों को स्वीकार नहीं करता अतएव उसके लिए भाषा भी बहुमूल्यक (multi-valued) होनी चाहिए—मोटाई और पतलापन, ऊँचाई और निचाई—इनके बीच की अनेक स्थितियों को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द चाहिएँ—इस विषय पर विचार तो स्वतन्त्र निबन्ध में ही किया जा सकता है, क्योंकि यह आइन्स्टीन के सापेक्षता-सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादित भाषा की सापेक्षता के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। आशय यही है कि पारिभाषिक शब्दों की गहन प्रकृति ही हमें कुछ समय में नामधातु बनाने के अतिरिक्त व्याकरण के अन्य साधनों का अनुकूलन करने को बाध्य करेगी।

भारतीय भाषाओं में दार्शनिक चिन्तन की सूक्ष्मता के लिए पर्याप्त शब्दावली है, परन्तु उन्हें वैज्ञानिक तथा आधुनिक जटिल चिन्तन के लिए सक्षम बनाने के उद्देश्य से पहले हमें उस चिन्तन का सूक्ष्म विश्लेषण करना होगा तथा मात्र साहित्यिक साधनों पर आश्रित न रह कर अपने साधनों में विविधता और गहनता लानी होगी। उनका पुनर्गठन करना होगा। संस्कृत इसमें सहायक सिद्ध होती है, परन्तु यदि उसकी क्षमता कहीं सीमित प्रतीत हो तो आग्रह छोड़कर प्रगतिशील तरीके अपनाना ही श्रेयस्कर है।

'हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली' जैसे विषय के विवेचन में शब्द-निर्माण संबंधी समस्याओं और विचारधाराओं, शब्दनिर्माण की पद्धतियों तथा निर्मित शब्दों की चर्चा और इन सबकी एक संक्षिप्त समीक्षा समान्यतः सम्मिलित होती है। हिन्दी में पारिभाषिक शब्द-निर्माण के कार्य को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उनका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी में विज्ञान की भाषा की कोई परम्परा नहीं है और आधुनिक भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने का कोई संगठित प्रयास भी नहीं किया गया। भाषाविदों और साहित्यिकों, राजनीतिज्ञों तथा राजनयज्ञों, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने अपने-अपने विचारों, कृतियों तथा उक्तियों से इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है। वैज्ञानिक समझता है कि उसके क्षेत्र में भाषाविद् का प्रवेश दुराग्रह तथा अनधिकार चेष्टा मात्र है। भाषाविद् भारतीय वैज्ञानिक पर

यह आक्षेप करता है कि वह इस कार्य के प्रति निराशावादी और उदासीन है। राजनीतिज्ञ जन-साधारण को सभी मामलों की कसौटी बनाना चाहता है। किन्तु यह कसौटी अनिश्चित और भ्रांतिजनक है।

बोलचाल की भाषा, साहित्यिक भाषा तथा विज्ञान की भाषा में सदा ही अन्तर रहा है। साहित्यिक भाषा तथा तकनीकी भापा में जिस प्रकार का अंतर आ गया है वह पाश्चात्य देशों में भी, जहाँ इन दोनों ही क्षेत्रों में बँधी हुई परम्पराएँ हैं, चिन्ता का विषय रहा है।

भाषा का विकास उस गति से नहीं होता जिस गति से समाज में नए विचारों को व्यक्त करने की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। वैज्ञानिक जब अपनी भाषा में लिखते हैं तो वे अपनी भाषा की शब्दावली तथा सामग्री को परिपुष्ट और विस्तृत बनाते जाते हैं। परन्तु भारत में ऐसा नहीं हुआ। भारतीय भाषाओं के प्रति वैज्ञानिकों की उदासीनता के कारण इस क्षेत्र में कुछ भाषा-प्रेमियों ने प्रवेश किया और एक विशाल शब्द-भंडार की रचना अपनी उन धारणाओं तथा सिद्धान्तों के अनुसार की, जिन्हें वे सही समझते हैं।

जी० के० चस्टर्टन ने एक बार कहा था कि मकान मालकिन (लैंड लेडी) को अपने भावी किराएदार के जीवन-दर्शन की जानकारी अवश्य होनी चाहिए, ठीक यही बात उस आदमी पर भी लागू होती है जो भारत में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के कार्यो का सिंहावलोकन करना चाहता है, क्योंकि भाषा संबंधी दृष्टिकोण न केवल उस नींव का द्योतक है जिस पर पारिभाषिक शब्दावली के भवन का निर्माण हुआ है अपितु व्याकरण-संबंधी उस कौशल का भी द्योतक है जिसका प्रयोग शब्दावली के निर्माण में किया गया है। भारत में इस समय जो पारिभाषिक शब्दावलियाँ मिलती है उन्हें सामान्य रूप से चार वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(१) पुनरुद्धारवादियों द्वारा तैयार की गई शब्दावली ;
(२) शब्दग्रहणवादियों द्वारा तैयार की गई शब्दावली ;
(३) प्रयोगवादियों द्वारा तैयार की गई शब्दावली ;
(४) मध्यममार्गियों द्वारा तैयार की गई शब्दावली।

सम्भवतः इस क्षेत्र में सबसे पहले **पुनरुद्धारवादियों** ने ही प्रवेश किया।

उन्होंने वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से शब्द और धातुएँ लीं और नए शब्द गढ़ने में संस्कृत व्याकरण का सभी सम्भव तरीकों से उपयोग किया। वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों, स्मृतियों, पुराणों, दर्शनों, काव्यों से लेकर सत्रहवीं शताब्दी अर्थात् महान् पंडित जगन्नाथ के समय तक की रचनाओं से तथा बौद्ध और जैन साहित्य, गणित, आयुर्वेद तथा खगोलविद्या जैसे विज्ञानों का पूरा लाभ उठाया। उनका दृष्टिकोण यह रहा कि राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से आर्य और द्रविड़ भाषाओं में समान रूप से मिलने वाले उन तत्त्वों के प्रति कहीं अधिक रुचि होनी चाहिए जिनके कारण अखिल भारतीय स्तर पर विविधता में एकता के दर्शन होते हैं।

इस दृष्टिकोण से किए गए कार्य की कार्य-पद्धति वही हो सकती है जो किसी व्याकरणाचार्य की होती है। धातुओं में मात्र उपसर्ग और प्रत्यय जोड़ कर यह मान लिया गया है कि कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो गया है।

इस प्रकार की मनोवृत्ति से सामुदायिक जीवन की निरंतर प्रवहमान धारा की उपेक्षा की ही आशा की जा सकती है। यह न केवल इतिहास की ही उपेक्षा करती है अपितु सम्यक् चिंतन और औचित्य की भी उपेक्षा करती है। स्वयं व्याकरणाचार्य पाणिनि का आदेश है—"योगाद् रूढिर्बलीयसी।" और इस प्रकार के शब्द गढ़े गए हैं :—

Quarter Master General

महाभक्त पात्रिक

Convergent Series

अभिसारी श्रेणी। (जबकि साहित्य में अभिसार शब्द का अर्थ है प्रेयसी का प्रिय से मिलने के लिए संकेत-स्थल पर जाना)

Arsenic

नेपाली (जब कि प्रचलित शब्द संखिया है)

Alabamine

लावणी (मराठी में लावणी एक विशेष छन्द के काव्य-रूप को कहते हैं)

इस कार्य-पद्धति का परिणाम है अंग्रेजी से शाब्दिक अनुवाद। इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि भारतीय भाषाओं में अनेक तद्भव धातुएँ,

उपसर्ग और प्रत्यय विकसित हो चुके हैं जो न केवल समय के प्रभाव के द्योतक हैं वरन् अन्य ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों के समाहार के भी द्योतक हैं। पुनरुद्धारवादी दृष्टिकोण के अनुसार ये अशिष्ट एवं दूषित प्रभावों के प्रतीक हैं जब कि सामाजिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये भाषा के स्वाभाविक और स्वस्थ विकास के लक्षण हैं। लिखित भाषा के रूप में संस्कृत का अन्त हो जाने के बाद से अब तक यदि निरन्तर संस्कृत के आधार पर शब्द-निर्माण की परम्परा रहती तो इस कार्य को एक जीवित परम्परा का अंश मानने में कोई कठिनाई न होती। लैटिन पर आधारित शब्दावली के समान ही संस्कृत से पारिभाषिक शब्द बनाने के प्रयास का समर्थन भारत के प्रसंग में मात्र खींचातानी करके ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस कार्य में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली की पूर्ण उपेक्षा की गई है जो वैज्ञानिक विचार-विनिमय के लिए संसार-भर में आधार का काम देती है। इस शब्दावली के बहिष्कार से एक और महत्त्वपूर्ण बात ज्ञात होती है वह यह कि महान् वैज्ञानिकों ने इस कार्य में बहुत थोड़ा योग दिया है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बहुत ही विशाल कार्य किया गया है और उसका महत्त्व कम नहीं है। अधिक काल-संगत और व्यावहारिक तरीकों से काम करने के लिए उन्होंने मार्ग प्रशस्त किया है और भारतीय भाषाओं की शक्ति में हमारे विश्वास को सुदृढ़ किया है।

इस क्षेत्र में पुनरुद्धारवादी दृष्टिकोण से एक और कार्य किया गया है जो इस कार्य से कुछ भिन्न है। इस कार्य में यंत्रवत् शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति नहीं मिलती। उसमें एक-एक अंग्रेजी शब्द के कई कई पर्याय दिये गये हैं और इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि जो शब्द पहले से विद्यमान हैं वे ग्रहण कर लिए जाएँ और ऐसे शब्द न गढ़े जायें जो शब्दों के परम्परागत अर्थ और प्रयोग के विरुद्ध हों। परन्तु जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली की उपेक्षा का संबंध है यह दोष इस कार्य में भी है।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अंतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली नामक एक ऐसा शब्द-समूह है जिसकी कोई निश्चित सीमा या रूपरेखा नहीं है। किन शब्दों को अन्तर्राष्ट्रीय माना जाए—इस विषय में भारत के वैज्ञानिकों और विज्ञान-अध्यापकों में काफी मत-भेद है। जो लोग इस विषय पर गंभीरतापूर्वक

विचार नहीं करते और केवल 'प्रचलित शब्दों' के नारे से प्रभावित हैं उनकी प्रायः यह धारणा होती है कि बेसिक अंग्रेजी में समाविष्ट शब्दों को छोड़कर अन्य सभी शब्द अन्तर्राष्ट्रीय हैं। इस मत के समर्थकों में से जो लोग इस सम्बन्ध में पूरी तौर से निश्चित धारणा नहीं बना सके हैं, उनमें से कुछ का विचार है कि विशुद्ध रूप से विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले शब्दों और ललित-साहित्य तथा बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में भेद करना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि 'कैपेसिटी' (Capacity) शब्द का तो अनुवाद होना चाहिए किन्तु 'कैपेसिटेंस' (Capacitance) को अन्तर्राष्ट्रीय शब्द मानना चाहिए। इसी प्रकार 'जेनरेट' (Generate) शब्द तो साहित्य में प्रयुक्त होने वाला शब्द है किन्तु 'जैनरेटर' (Ganerator) अन्तर्राष्ट्रीय शब्द मानना चाहिए। यह बहुत ही मनमाना विभाजन है जिसकी पुष्टि तर्क द्वारा संभव नहीं। ऐसे व्यक्तियों को शब्दग्रहणवादी कहना उचित होगा। साहित्य, विज्ञान तथा पत्रकारिता के क्षेत्रों में अंग्रेजी के अधिकांश प्रेमियों का संबंध इसी विचार-सम्प्रदाय से है। वे फिल्टर को 'फिल्टर', 'टम्प्रेचर' को 'टम्प्रेचर', 'सैंटर' को 'सैंटर','टैस्ट ट्यूब' को 'टैस्ट ट्यूब' ही रखना चाहेगे। ऐसा दृष्टिकोण भाषा के लिए किसी भी तरह लाभदायक नहीं होता।

भाषाविद् इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि जीवित भाषाओं की अन्य भाषाओं से शब्द लेकर वृद्धि करनी चाहिए और विशेषतः हिन्दी को अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को आत्मसात् कर आगे बढ़ना चाहिए। परन्तु 'प्रचलन' एक ऐसा मापदंड है जिस में स्थिरता नहीं। ऐसे बहुत से शब्द जो समाज के तथा-कथित वर्ग में प्रचलित हैं भारत के अधिकांश लोगों के लिए सर्वथा अपरिचित हो सकते हैं। इस प्रकार के शब्द भाषा के विकास में सहायक नहीं होते। इसके विपरीत वे भाषा की सहज प्रकृति को विकृत करते हैं और जनसाधारण की देशीय शब्दावली पर हावी हो जाते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली के निर्माताओं का दूसरा महत्त्वपूर्ण वर्ग **प्रयोग-वादियों** का है। प्रयोगवादियों ने इस क्षेत्र में जो कार्य किया है उसके अनेक प्रकार हैं किन्तु इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास उस्मानियां विश्वविद्यालय ने किया है। पुनरुद्धारवादियों ने जिन ऐतिहासिक प्रभावों की उपेक्षा की है उन्हें

प्रयोगवादियों ने असाधारण मान्यता प्रदान की है—असाधारण इस दृष्टि से कि उन्होंने पर्यायों में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव और विदेशी शब्द रखने पर विशेष रूप से बल दिया है, जैसे 'Acknowledgement' के लिए 'रसीदियाना, स्वीकार करना'; 'adjure' के लिए 'हल्फ उठाना, आग्रह करना'; 'Impartial' के लिए 'निष्पक्ष','बेपछ';'reminder' के लिए, 'स्मारक, याद दिलाई'; 'stimulus' के लिए 'उत्तेजना', 'उकसावा', 'extermination' के लिए 'मूलनाश','जड़-उखाड़ी'। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के शब्द भी ले लिए गए हैं, जैसे आर्डिनेंस, आर्डर, साइकिक, स्टेंजा, स्टेचू, स्टीमर, मेगेजीन, मेनी-फोल्ड इत्यादि।

इस शब्द-निर्माण की पद्धति की विस्तृत व्याख्या करने से पहले इस प्रकार के कार्य के दृष्टिकोण और उसमें निहित विचारधारा की समीक्षा कर लेना आवश्यक होगा। यहाँ मैंने 'प्रयोगवादी' विचारधारा कहा है। सच्चा प्रयोग-वादी शाश्वत उद्देश्यों या गतिहीन लक्ष्यों की तुलना में स्थितिजन्य ध्येयों को महत्त्वपूर्ण मानता है। उसका सिद्धान्त है कि विकास एक निरंतर होने वाली प्रक्रिया है, जिससे मनुष्य के व्यवहार और उसके वातावरण में परस्पर संशोधन होता रहता है। इस सिद्धान्त को भाषा के क्षेत्र में घटित करने पर हम देखते हैं कि भाषा संबंधी विरासत अर्थात्, वर्तमान शब्दावली और प्रचलित व्याकरण की शब्द-निर्माण की पद्धतियाँ विकास में निरंतर सहायक होती हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप उनमें स्वयं भी कुछ संशोधन होता चलता है और वे समन्वित होकर भाषा के एक सार्थक चिर-विकासशील स्वरूप की सृष्टि करती हैं जिसे हम भाषा की सहज प्रकृति कहते हैं। जो तत्त्व भाषा की इस प्रकृति से मेल नहीं खाते वे अलग हो जाते हैं। उस्मानिया विश्वविद्यालय द्वारा तैयार की गई शब्दावली बहुत हद तक इस सिद्धान्त की आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसमें हिन्दी और हिन्दुस्तानी दोनों की ही वर्तमान शब्दावली और शब्द-निर्माण प्रवृत्ति का उपयोग किया गया है। संस्कृत शब्दों में दूसरी भाषाओं के उपसर्ग और प्रत्यय जोड़े गए हैं और साथ ही मूलतः अंग्रेजी शब्दों में भी संस्कृत तथा दूसरी भाषाओं के उपसर्गों और प्रत्ययों का प्रयोग निःसंकोच किया गया है। इस प्रकार तैयार किए गए शब्दों के कुछ उदाहरण आगे दिए जाते हैं:—

Governmental	शासनिया
Sanitary	सफाईकारी
Escort (to)	एस्कोर्टना
Derailment	त्रिरेलन

देशज शब्दों के आधार पर भी शब्द गढ़े गए हैं :

Recurrance	फिर लौटाव
Presumption	मान लेना
Adjustment	बैठ-बैठाव

इस अद्‌भुत जादूगरी से जो कुछ बना है वह इतना अद्‌भुत है कि वह कौतूहल का विषय बन गया है। वर्तमान के महत्त्व को स्वीकार करते समय उन्होंने भाषा की प्रवृत्ति को आँकने में अपनी धारणाओं को प्राधान्य दिया। जो निष्कर्ष निकाले, उनकी ग्राह्‌यता को परखे बिना ही उन्हें लागू कर दिया। परन्तु इस कार्य का मूल्य इसके व्याकरण-संबंधी नये प्रयोगों और सरलता की सच्ची इच्छा मे निहित है। तटस्थता के साथ देखें तो हम कहेंगे कि इसने शब्द-रचना का नया द्वारा खोल दिया है और भारतीय भाषाओं को यह आश्वासन दिया है कि यदि उनके वर्तमान साधनों का संयत और उचित रूप से उपयोग किया जाए तो वे भी काफी शक्तिशाली है और अपनी नई समस्याओं को सुलझाने में समर्थ भी। मुझे पोप और वड्‌सवर्थ के समय में काव्य-भाषा के संबंध में उठे विवाद का स्मरण हो आता है। पोप ने सरलता की नवजागरण-युगीन प्रवृत्ति पर कलात्मक ढंग से कटाक्ष किया है—

"Ten low words off creep into one dull line."

परन्तु इन विचारों के होते हुए भी अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में वड्‌सवर्थ और बर्न्स का महत्त्व कम न हुआ।

अन्त में एक ऐसी कार्य-पद्धति का वर्णन करूँगा जिसने और प्रयोगवादियों के अनुभवों से लाभ उठाया। इस पद्धति का अनुसरण करने वालों ने अपना कार्य अधिक व्यवस्थित रीति से किया। उन्होंने अरस्तू द्वारा निर्दिष्ट अनतिवाद का अनुसरण किया। आदर्शपरायणता के प्रति उनका दृष्टिकोण गतिशील और

नवरचनात्मक है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारणी सभा और शिक्षा मंत्रालय के कार्य इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

मैं मुख्यत: शिक्षा मंत्रालय द्वारा किए गए कार्य का पर्यवलोकन कर रहा हूँ। शिक्षा मंत्रालय का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को आमंत्रित करना, ताकि वे भाषाविदों के साथ बैठ कर स्थिति का विश्लेषण करें और कार्य-पद्धति निश्चित करे। इस वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना १९५० में हुई। इसने मुख्य रूप से इन समस्याओं पर विचार किया : (१) कौन-कौन से शब्द अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के अन्तर्गत माने जाएँ। (२) भारत के संविधान के अनुच्छेद ३५१ में परिकल्पित हिन्दी के विकास के लिए किस पद्धति का उपयोग किया जाए। (३) शब्दावली को अखिल-भारतीय स्वरूप कैसे दिया जाए और अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति को आघात पहुँचाए बिना भाव-मूलक शब्दों की एकरूपता का कहाँ तक प्रयत्न किया जाये।

अंतर्राष्ट्रीय शब्द की किसी प्रामाणिक परिभाषा के अभाव में यह निश्चय किया गया कि यदि तीन यूरोपीय भाषाओं में एक शब्द का प्रयोग लगभग एक ही रूप में किया जा रहा हो, तो उसे अंतर्राष्ट्रीय शब्द मान लिया जाए। इकाइयाँ, तोल और माप, जैसे मीटर, ग्राम, कैलरी, आविष्कर्ताओं के नाम पर आधारित शब्द जैसे वोल्ट, एम्पियर, नए तत्त्वो के नाम जैसे बैरियम, आक्सीजन, और प्राणिविज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान के द्विनाम-पद्धति पर बने शब्दों को देवनागरी लिपि में ज्यों-का-त्यों ले लिया जाए। इस नीति का अनुसरण बराबर किया गया है।

शब्द निश्चित करते समय मुख्यत: संस्कृत और गौणत: दूसरी भारतीय भाषाओं की सहायता ली गई है। हिन्दी की सहज प्रकृति को क्षति पहुँचाए बिना भारत की सामासिक संस्कृति की विरासत का पूरा-पूरा उपयोग किया गया है। संकल्पनामूलक शब्दों को बनाने में बड़ी सावधानी से काम लिया गया है और अनेक भारतीय भाषाओं में सामान रूप से व्यवहृत धातुओं को ग्रहण करके अधिक एकरूपता लाने का प्रयत्न किया गया है, जैसे:—

१. अंशन

२. प्रकाशिकी

३. मानक
४. वसीयती
५. अपीलीय
६. चुम्बकत्व

प्राचीन तथा प्रचलित शब्दों को उचित स्थान दिया गया है तथा अन्य भारतीय भाषाओं से भी शब्द ले लिए गए हैं—

१. निवल	Net	(कन्नड़)
२. भल	Silt	(पंजाबी)
३. बेंगची	Tadpole	(बंगाली)
५. सिब्बंदी	Establishment	(कन्नड़)

इस प्रक्रिया में प्रयोगवादियों की सी अराजकता नही है। यह प्रगतिशीलता मिश्रित आदर्शपरायणता की द्योतक है। व्याकरण की सहायता लेने में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि ऐसे रूप ग्रहण किये जाएँ जो अधिक भाषाओं में समान रूप से मिलते हों। अखिल भारतीय शब्दावली का निर्माण भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३५१ को ध्यान में रखकर किया गया है। इस कार्य की मुख्य विशेषता उन शब्दों को बनाए रखना है जो वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय है, और इस प्रकार अखिल भारतीय भावमूलक शब्दावली का निर्माण करना है, जो इस देश की शब्दावली संबंधी एकता की दृष्टि से अनिवार्य है। जब कभी भी स्वाभाविक रूप से आवश्यक हो, प्रादेशिक भाषाओं के भावमूलक-देशज शब्दों के निर्माण के लिए भी इसमें काफी गुंजाइश रखी गई है।

अब तक एक ओर शास्त्रीय ग्रंथों के अनुवाद और दूसरी ओर लोकप्रिय ग्रंथमालाओं के अनुवाद की योजनाओं के द्वारा इस शब्दावली का प्रयोग करके इसकी प्रयोगार्हता और उपयुक्तता की परीक्षा की जा रही है। मैं यह नहीं कहता कि यह काम हर प्रकार से पूर्ण है। यह प्रगतिमान है। यह अनेक बातों में आदर्श तक नहीं पहुँच पाता और इसे अब भी ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है जो सुलझाई नहीं जा सकी हैं। पर चूँकि यह प्रयत्न एक व्यवस्थित रीति से किया जा रहा है, अतएव आशा की जाती है कि समय आने पर आवश्यक फेर-बदल के साथ यह हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को

वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों के लिए भी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य प्रदान कर सकेगा।

यह सौभाग्य की बात है कि इस अनुष्ठान से भारतीय वैज्ञानिकों का निकट सम्पर्क रहा है। विख्यात भौतिकीविद्, डाक्टर कोठारी न केवल इस शब्दावली की प्रगति मे सक्रिय योग दे रहे हैं, अपितु इस अनुष्ठान से संबधित अनेक समस्याओं को उपयुक्त और समुचित रूप से हल करने में गंभीरता से संलग्न है।

यह देश में हिन्दी शब्दावली सवधी कार्य का एक सिंहावलोकन है। आशा है कि अगले दस वर्षो के भीतर हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं में विज्ञान तथा टैक्नालोजी की अनेक पुस्तकें प्रकाशित होंगी और विश्वविद्यालयों मे शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ हो जाएँगी।

मशीनों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी अनुवाद

—विद्यासागर नन्दा

१७८४ की औद्योगिक क्रांति के बाद मशीनों का जो युग आरंभ हुआ, उसमे तब से लेकर अब तक इतनी अधिक मशीने बन चुकी है कि अब यह कल्पना करना भी कठिन हो गया है कि आरम्भ में मशीनों का निर्माण मनुष्य के काम को अधिक सरल बनाने और उसका परिश्रम कम करने के लिये किया गया था। बल्कि आज मशीन हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक अग में इतनी गहरी पैठ चुकी है कि कभी-कभी मानव अपने आप को मशीन का दास मानने लगता है। परन्तु जो भी हो, मशीन युग के इस पहिये को अब वापस नहीं मोड़ा जा सकता।

मशीनों पर विचार करते हुए इस तथ्य को भुला नहीं देना चाहिए कि मशीनों का उद्गम और विकास यूरोप में और दूसरे बाहरी देशों में हुआ और इसलिए स्वभावतः मशीनों से सम्बन्ध रखने वाले शब्द भी विदेशों में ही बने और उनका साहित्य भी आरम्भ में विदेशी भाषाओं में ही लिखा गया।

वैदिक युग और रामायण-महाभारत के काल में भारत में यंत्र-विद्या विकसित रूप में रही होगी और यदि ऐसा मान लिया जाये तो यह भी मानना होगा कि तत्कालीन यंत्रों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द भी उस काल में पर्याप्त विकसित रूप में और प्रचुर मात्रा में रहे होंगे। परन्तु मशीनों सम्बन्धी साहित्य और उनसे सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द जिस रूप में आज हमारे सामने है, वह और उनका मूल विदेशी है। इसलिए मशीनों से सम्बन्धित साहित्य का अनुवाद करते समय हिन्दी में मशीनों और उनकी प्रक्रियाओं से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का अभाव स्वभावतः सबसे अधिक रहा है।

अनेक पर्याय : मशीनों से सम्बन्ध रखने वाला बहुत-सा साहित्य अब तक

हिन्दी में मौलिक रूप से भी लिखा जा चुका है और अनूदित भी हो चुका है। इसके अलावा सरकारी और प्रमुख गैर-सरकारी अभिकरणों ने भी ऐसे पारिभाषिक शब्दों के पर्याय निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। किन्तु इन सब में एक बड़ी समस्या है पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता का न होना। यह समस्या केवल इस रूप मे नही है कि अंग्रेजी के एक पारिभापिक शब्द के लिए एक से अधिक पारिभाषिक शब्द बन गए हों, बल्कि इस रूप मे भी है कि भिन्न-भिन्न अभिकरणों ने हिन्दी के एक ही शब्द को अपने-अपने विचार से अंग्रेजी के अलग अलग पारिभाषिक शब्दों का पर्याय बना दिया है।

पर्याय निर्धारण : मशीनों से सम्बन्धित शब्दों के हिन्दी पर्याय कैसे निर्धारित किये जायें, इस बात पर विचार करने से पहले यह समझ लेना आवश्यक होगा कि ऐसे पारिभाषिक शब्दों का विदेशों मे मोटे तौर पर क्या स्वरूप रहा है और भारत में अब तक उन्हें किस रूप मे अपनाया गया है। मशीनों सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों की किसी भी सूची को सरसरी दृष्टि से देख जाने पर स्पष्ट हो जायेगा कि ऐसे शब्द प्राय: दो रूपों में मिलते हैं—(१) नामवाचक, तथा (२) प्रक्रियावाचक। उदाहरण के लिये Engine, Plate, Key, Bar, Shaft, Ring, Board, Frame, Wheel ऐसे शब्द हैं जिन्हें नामवाचक कहा जा सकता है। इसी तरह Tiller, Harvestor, Spacer, Separator, Flywheel, Escalator आदि ऐसे शब्द है जिन्हें प्रक्रियावाचक शब्द कहा जा सकता है क्योंकि मूलतः किसी-न-किसी रूप में इनके साथ कोई प्रक्रिया जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए Tiller यंत्र खेती करने के काम आता है। Harvestor फसल काटता है और Flywheel में स्वतंत्र रूप से घूमने की प्रक्रिया निहित है।

पारिभाषिक शब्दों के साथ भारतीय कर्मकार का परिचय : यह तो स्पष्ट है कि प्रक्रियावाचक शब्दों का नामकरण प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी प्रक्रिया के आधार पर ही हुआ है। नामवाचक शब्दों का वैसा नामकरण क्या किन्ही विशेष सिद्धान्तों के आधार पर हुआ और यदि हाँ, तो क्या वे नियम और सिद्धान्त किसी सजग प्रयत्न के आधार पर निर्धारित किये गये थे, इन सब प्रश्नों का उत्तर यहाँ देना संभव नहीं होगा। फिर भी इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि मशीनों के साथ और परिणामतः उनसे सम्बन्धित शब्दों के साथ

भारतीय कारीगर का संसर्ग अब तक शताब्दियों पुराना हो चुका है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय अफसरों के जरिए या हिन्दी पढ़े विदेशियों के माध्यम से उसने ऐसे शब्दों के साथ परिचय प्राप्त किया है और उन्हें अपनाया है।

मशीनों के साथ कारीगर का सीधा सम्बन्ध होता है। वह उस समय की प्रतीक्षा नहीं कर सकता था, जब कोई भाषाविद् अथवा व्याकरण शास्त्री अथवा साहित्यिक जन मिल-जुल कर उसके लिए विदेशी शब्दों के भारतीय पर्याय निर्धारित करते और वह उन्हें अपनाने में समर्थ होता। उसकी समस्या तात्कालिक और क्रियात्मक थी और उसके लिए तात्कालिक हल ही अपेक्षित था। फलतः उसने अपने विवेक के अनुसार इन शब्दों को कहीं थोड़ा और कहीं अधिक बदला और कहीं मूल रूप में ही ग्रहण कर लिया। इसी विवेक का ही परिणाम है कि Machine (मैशीन) बदल कर 'मशीन' बना और Sentry बिगड़कर 'सन्तरी' बन गया, जबकि Tractor 'ट्रैक्टर' ही बना रह गया। इसी तरह Drill 'बरमा' बन गई, परन्तु Drill Chuck 'ड्रिल चक' ही बना रहा।

यह तो स्पष्ट ही है कि भारतीय श्रमिक अथवा कारीगर ने किसी संगठित अथवा सजग प्रयत्न के माध्यम से इन शब्दों को बदलने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि अधिकांश में अनजाने में अथवा व्यावहारिक कठिनाई को दूर करने के लिए ही उसने ऐसा किया। परन्तु यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि उसके हाथों में पड़कर विदेशी पारिभाषिक शब्दों ने जो रूप ग्रहण किया वह पूर्णतः हिन्दी की आत्मा के अनुरूप था। किसी देश के पारिभाषिक शब्द दूसरे देश की संस्कृति से प्रभावित होकर कैसे बदल जाते हैं, इसका एक उदाहरण इन शब्दों में मिल जाता है।

हिन्दी में पर्याय-निर्धारण : मशीनों से सम्बन्धित जो साहित्य अब तक अनूदित हो चुका है, उसका विश्लेषण करने पर पता लगेगा कि हिन्दी में ऐसे शब्दों के पर्याय पाँच प्रकार से स्थिर किये गये हैं :—

(१) संस्कृत के मूल धातु रूपों के आधार पर नये शब्द गढ़ कर;

(२) अंग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं से यथा रूप ले कर;

(३) शब्द के उच्चारण में थोड़ा या अधिक भेद कर के उसे हिन्दी की वर्तनी के अनुरूप बना कर;

अंग्रेजी शब्द	परिवर्तित उच्चारण वाले रूप
Cylinder	सिलंडर
Gear Box	गीयर बक्स
Pressure	परेशर
Shock Absorber	शाकर
Carburettor	कारबोरेटर
Piston rings	पिस्टन रिंग
Shuttering	शैटरिंग
Shaft	शाफ्ट
Tank	टंकी
Valve	वाल
Bicycle	साइकल, सैकल
Adjustable wrinch	रिंच

चौथे वर्ग के शब्दों में नीचे लिखे शब्द उदाहरण रूप में गिने जा सकते है :—

अंग्रेजी शब्द	हिन्दी व्याख्या
Mould Board Plough	मिट्टी पलट हल
Escalator	विजली की सीढ़ी
Seed Box	वीज रखने का बक्स
Broadcaster	छिट्टा करने की मशीन
Luggage Boot	मोटर में सामान रखने की जगह
Earth Mover	धरती धकेल
Wind-Screen	मोटर में आगे का शीशा

पाँचवें प्रकार के शब्दों में भारतीय कारीगर की विवेक-बुद्धि का परिचय विशेष रूप से मिलता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिए गए है :—

अंग्रेजी शब्द	नवीन पर्याय
Lathe	खराद (फारसी-खर्राद)
Turner	खरादिया
Tractor hood	ट्रैक्टर की छत
Plier	प्लास

अंग्रेजी शब्द	नवीन पर्याय
Angle Iron	हिंगलैन
Railway Crossing	रेल का फाटक
Nozzle	टोंटी
Tube Well	नलकूप
Foresight (in Rifle)	मक्खी
Sappers and Miners	सफर मैना
Siren	भोंपू
Under-pinning	एंडल पिलिंग (भवन निर्माण मे)
Trigger	घोड़ा

विचारणीय प्रश्न यह है कि विदेशी पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी में अनुवाद करते हुए उपरोक्त में से किस विधि को अधिक श्रेयस्कर माना जाये। संस्कृत हिन्दी भाषा की जननी मानी जाती है और उसकी शब्द योजना भी बहुत कुछ संस्कृत से प्रभावित है। इसलिये यदि संस्कृत के मूल धातु रूपों में प्रत्यय उपसर्ग आदि लगाकर नये शब्द बनाये जायें तो सैद्धांतिक रूप से कोई आपत्ति होने का कारण नहीं हो सकता। परन्तु यह तर्क अवश्य ही विचारणीय है कि ऐसे रूप हिन्दी को सर्वदा ग्रहण नहीं होंगे। हिन्दी ने इस बीच अनेक अन्य भाषाओं के बहुत से नये शब्द ग्रहण किये है और धीरे-धीरे वह इस स्थिति में आ गई है जब उसकी जड़ अवश्य संस्कृत में मानी जा सकती है परन्तु उसका रूप बहुत कुछ स्वतन्त्र हो गया है। दूसरे, संस्कृत मे प्रेरणा लेने पर बहुधा हिन्दी पर्याय के दुरूह होने का भय होगा और यह तर्क अवश्य ही विचारणीय है कि यदि शब्द अधिक दुरूह होगा तो उसे व्यावहारिक रूप में ग्रहण किये जाने में कठिनाई हो सकती है। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत का माध्यम उपयोगी अवश्य हो सकता है, परन्तु सर्वदा और पूर्णतः नहीं।

अंग्रेजी से यथारूप शब्द ले लेने में भी सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वह शब्द हमेशा हिन्दी की वर्तनी के अनुरूप नहीं होगे और इसलिए उन्हें व्यवहार रूप में वैसे ही ले लेने पर हिन्दी का रूप बिगड़ने का भय रहेगा। अतः इस माध्यम का उपयोग अन्तिम विकल्प के रूप में ही किया जा सकता है।

उच्चारण परिवर्तन : अंग्रेजी शब्दों को यथारूप लेने की बजाय उनके उच्चारण को थोड़ा या अधिक बदल लेने का तरीका अधिक श्रेयस्कर तथा व्यावहारिक है। अध्ययन करने पर पता चलता है कि व्यवहार रूप में उच्चारण बदलकर जो शब्द अब तक अपनाये गये हैं उनकी संख्या यथारूप लिये गये शब्दों के मुकाबले कही अधिक रही है।

व्याख्या करके अपनाये गये शब्दों की संख्या शायद सबसे कम रही है जिस का एक कारण संभवतः यह था कि भारतीय कारीगर अधिकतर अंग्रेजी से अनभिज्ञ था और उसने किसी शब्द की व्याख्या करने की बजाय उसे उच्चारण बदलकर अपना लेना ही अधिक अच्छा समझा। इसी व्यावहारिक कठिनाई के कारण ही इस माध्यम का उपयोग भी अधिक सीमा तक नही किया जा सकता।

एकदम नये शब्द बनाने की विधि का उपयोग भी अवश्य ही बहुत लाभ के साथ किया जा सकता है। बल्कि यदि इस विधि का ठीक-ठीक और विवेकपूर्ण उपयोग किया जाये तो इससे अधिक अच्छा उपाय नहीं हो सकता क्योंकि ऐसे शब्द निश्चय ही हिन्दी की वर्तनी के अनुकूल होंगे। दूसरे, किसी भी पर्याय की परख की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह हिन्दी में ग्राह्य हो और उसकी वर्तनी के अनुकूल हो। इसलिए यथास्थान मशीनों पर काम करने वाला व्यक्ति ऐसे शब्द देने में सर्वाधिक सहायक और समर्थ हो सकता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि पर्याय निर्धारित करते समय इन सभी विधियों का समन्वय किया जाये और जहां जो विधि अधिक उपयुक्त हो, उसे अपनाया जाय क्योंकि पर्यायों का निर्धारण अपने आपमें कोई लक्ष्य नहीं है बल्कि एक दूसरे लक्ष्य की पूर्ति का साधन है और वह लक्ष्य है—भाषा की समृद्धि।